ग्राम-साहित्य

पहला भाग

[सोहर, अन्नप्राशन, मुण्डन, जनेऊ, नहछू और विवाह के गीत]

सम्पादक
रामनरेश त्रिपाठी

प्रकाशक
हिन्दी मन्दिर, प्रयाग

मिलने का पता
हिन्दी मन्दिर (शाखा)
सुलतानपुर (अवध)

पहला संस्करण } जनवरी १९४१

प्रकाशक
वसंतकुमार
हिन्दी मन्दिर (शाखा)
सुलतानपुर (अवध)

लोकमान्य प्रेस, दरियागज, देहली में मुद्रित।

भूमिका

ग्राम-साहित्य इतना विशाल है कि उसके सामने शिक्षितों का साहित्य दाल में नमक के बराबर भी नहीं। यह कठस्थ-साहित्य देश के सब प्रान्तों, भाषाओं और छोटी-छोटी बोलियों में भी अपरम्पार भरा हुआ है।

मैंने सन् १९२५ से इसका संग्रह शुरू किया था और उसमें से कुछ चुने हुए ग्राम-गीत शिक्षितों के सामने नमूने के तौर पर रखने के लिये कविता-कौमुदी के पाँचवें भाग में पुस्तकाकार प्रकाशित भी कराया था। सन् १९४२ से मैंने लेखन और प्रकाशन-कार्य से छुट्टी लेली थी, इससे उक्त पुस्तक भी अप्राप्य हो गई थी। इधर ग्राम-साहित्य की ओर जनता की अभिरुचि दिनोंदिन बढ़ रही है, इससे मेरे मित्रों का आग्रह था कि मैं ग्राम-साहित्य का जो कुछ संग्रह मेरे पास है, उसे जनता के लिये सुलभ कर दूं। अपने साहित्यिक कार्यों में मैं स्वयं भी इस काम को ज्यादा महत्त्व देता हूँ, इससे मैं फिर इस ओर प्रवृत्त हुआ हूँ।

ग्राम-गीत (कविता-कौमुदी, पाँचवाँ भाग) के मैंने दो भाग कर दिये। दोनों की भूमिका भी बढ़ा दी। शेष भाग संग्रह में से नये बढ़ा दिये।

आशा है, इनसे ग्राम-साहित्य से रुचि रखनेवाले सज्जनों को प्रसन्नता प्राप्त होगी और साहित्यकारों को लोकोपकारी साहित्य के सृजन में प्रोत्साहन मिलेगा।

वसन्त-निवास
सुलतानपुर (अवध)
१-१-१९५१

रामनरेश त्रिपाठी

विषय-सूची

ग्राम-साहित्य

पहला भाग

गीत-यात्रा

एक विचित्र प्रकार की शिक्षा के प्रभाव से हम लोग अपने देश से बहुत दूर हो गये हैं। हम अपनी भाषा के थोड़े से शब्दों की परिधि में कैद हैं। न हम उस परिधि से बाहर आना चाहते हैं और न वे शब्द देश के अन्तर्नाद को हमारी सीमा में प्रवेश करने देते हैं। हम अपने देश में रहते हुए भी विदेशी-जैसे हैं।

वह देश कहाँ है? जहाँ वाल्मीकि, व्यास, कालिदास और भवभूति की आत्माएँ निवास करती हैं। वह देश कौन-सा है? जिसके घर-घर में तुलसीदास बोल रहे हैं। सूरदास बालकों का रूप धरकर कहाँ खेल रहे हैं? कबीर कहाँ अपनी आत्मा निचोड़कर अमृत-रस बाँट रहे हैं?

गंगा की उज्ज्वल किन्तु चञ्चल, यमुना की श्यामल किन्तु गम्भीर अजस्र धारा के साथ जिनकी जीवन-धारा गीतों के रूप में प्रवाहित है, क्या हम उनसे दूर हुये जा रहे हैं?

अरे! ढाक के घने जङ्गल में, आम, महुवे, पीपल, इमली और नीम की घनी और शीतल छाया में, नालों के कलरव के साथ, तुलसी के चबूतरे के निकट, चमेली, माधवी, कामिनी और मालती के फूलों की सुगंध में, बंशी की ध्वनि में, कोकिल के आलाप में, लहराती हुई पुरवा

हवा में और लहलहाते हुये खेतों के किनारे जीवन का जो प्रवाह अनादि काल से प्रवाहित है, क्या हम उस प्रवाह से अलग हो गये हैं ?

क्या हमारी एक विचित्र रहन-सहन हमें उस देश में जाने नहीं देती ? क्या अल्पज्ञान का विशाल अभिमान उस देश की शान्ति-दायिनी ध्वनि को हमारे समीप पहुँचने नहीं देता ? क्या एक नव-निर्मित भाषा हमारे और उस देश के बीच में लोहे की दीवार की तरह खड़ी है ? इतनी आसानी से हमें इतनी दूर कौन उठा ले गया ?

पास बैठे हैं मगर दूर नजर आते हैं।

आओ, एक बार चलकर हम अपने उस पुराने देश को देखें तो सही, जो नालों के किनारे, आम के घने बागों के बीच में बसा हुआ है। जिस देश में घर-घर में चंदन के वृक्ष और दरवाजों में चंदन के किवाड़े लगे हैं। जहाँ सब लोग सोने के थालों में भोजन करते हैं, सोने के बरतनों मे पानी पीते हैं। जहाँ घर-घर में चित्रशालाएँ है। जहाँ की सब स्त्रियाँ चित्र-कला में निपुण हैं और सब पुरुष चित्रों की सुन्दरता पर मुग्ध होने का हृदय रखते है। जहाँ घरों के पिछवाड़े घनी बँसवाड़ी है। आम और महुवे के पेड़ों की छाया जहाँ रास्तों को शीतल और सुखद बनाये रखती है। जहाँ प्रत्येक कंठ से गान निकलता है। जहाँ की चौपालों में राजनीति के जटिल प्रश्न एक-एक वाक्य से सुलझाये जाते हैं। जहाँ मनुष्यमात्र के जीवन का निर्दिष्ट लक्ष्य और निश्चित पथ है। जहाँ धर्म के बंधन में सब प्रकार की स्वतन्त्रता है। जहाँ प्रेम का नशा और आनन्द का उन्माद है। जहाँ के पशु-पक्षी, वृक्ष-लता, सूर्य-चन्द्र और मेघ भी मनुष्य-जीवन के सहचर हैं। जहाँ घटायें पतियों को घर बुला लाती हैं। जहाँ कोयलें विरहिणियों के संदेश ले जाती हैं कि 'फागुन आ गया है। जहाँ कन्याएँ अपने लिये स्वयं वर चुनती हैं। जहाँ वर अपने लिये वधू पसन्द कर सकते हैं। जहाँ विवाह वासना-तृप्ति के लिये नहीं, बल्कि लोक-सेवा

के लिये उत्तम सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा से प्रेरित होकर किया जाता है। जहाँ माता के अकृत्रिम स्नेह की नदी, स्त्री के अखण्ड अनुराग की तरङ्गिणी, बहन के अपार प्रेम की सरिता और प्रकृति के शाश्वत शृङ्गार की धारा सदा प्रवाहित है।

आओ, उस देश को चलें।

क्या वह देश कहीं दूर है? नहीं, इतना समीप है, जितना समीप कोई दूसरा देश हो नहीं सकता। सिर्फ़ आँखों का चश्मा उतार डालना होगा, और एक बार अपनी आत्मा का स्मरण कर लेना होगा।

घटनायें जीवन की सीढ़ियाँ हैं। एक दिन एक घटना ने मेरे लिए उस देश का द्वार खोल दिया।

शाम हो रही थी। सूरज के डूबने में १०-५ मिनट की देर थी। जौनपुर से बदलापुर की सड़क पर उस दिन का वही शायद आख़िरी इक्का था। इससे सड़क के किनारे बैठी हुई एक बुढ़िया को अपनी घास के लिये बड़ी ही चिन्ता थी। वह घबराई हुई आँखों से डूबते हुए सूर्य को भी देख लिया करती थी और इधर घास ले लेने के लिये इक्केवाले की खुशामद भी करती जाती थी। अंत में बुढ़िया दो आने से उतर कर चार पैसे पर कुल घास देने को राजी हो गई। पर इक्केवाले को घास की ज़रूरत ही नहीं थी। वह बातों में ही टाल-मटोल कर रहा था।

मुझे अवकाश था; क्योंकि पहिये की कील निकल गई थी, और इक्केवान उसे दुरुस्त करने में लगा था। मैं बुढ़िया की ओर आकर्षित हुआ। मैंने देखा—बुढ़िया की अवस्था साठ से कम न होगी। शरीर सूखकर हड्डी का ढाँचा-मात्र रह गया था। चेहरे पर असंख्य झुर्रियां थीं। आँखें धुँधली हो गई थीं। बुढ़िया जो धोती पहने थी, वह सैकड़ों स्थानों पर मोटे डोरे से भद्दे तौर पर सिली हुई थी। फिर भी धोती के किनारे कई जगह से फटे थे और उनके कोने लटक रहे थे। मैं

बुढ़िया से देहाती बोली में बातें करने लगा। वह भी अपनी बोली में जवाब देने लगी। जिसका भावार्थ यह है—

मैंने पूछा—बुढ़िया, सच-सच बताओ, यह घास कितने को दोगी ?

बुढ़िया ने कहा—एक आना पैसा मिल जाता तो मेरा काम चल जाता।

मैंने पूछा—आज क्या तुम्हें एक आने पैसे की बड़ी ज़रूरत है ? बुढ़िया ने मेरी ओर कृतज्ञता से भरी हुई एक दृष्टि डाली। मानो इतना पूछकर मैंने उस पर कोई बड़ा उपकार किया था। वह एक साँस खींचकर कहने लगी—हाँ, इसमें से दो पैसा तो मैं बनिये को देती। एक महीना हुआ उससे नमक उधार ले गई थी। कई दिन से नमक चुका है। एक पैसे का आज नमक ले जाती। मेरे एक नाती है, उसके लिये एक पैसे का गुड़ ले जाती। कई महीने से उसको गुड़ देने का वादा कर रक्खा है। कल शाम से ही वह गुड़गुड़ चिल्ला रहा है। आज मैं बड़े तड़के यह सोच कर उठी थी कि जल्दी घास बेंचकर पैसे मिल जायँगे तो नाती के लिए गुड़ भी लेती जाऊँगी। आते वक्त मैं उस से वादा कर भी आई थी। वह मेरी राह देखता खड़ा होगा। देर हो जायगी, तो वह सो जायगा।

यह कहते-कहते बुढ़िया की आँखें भर आईं। उसके मन की वेदना मैं अब समझने लगा। मैंने पूछा—बुढ़िया ! अगर यह घास तीन ही पैसे को बिकी, तब क्या-क्या खरीदोगी ?

बुढ़िया का संतोष बातों से नहीं हो सकता था। उसका मन तो नाती से किये हुए वादे में विकल था। उसने कहा—भैया ! आपको लेना तो है नहीं।

मैंने कहा—मैं तुम्हारी घास खरीद लूँगा। तुम मुझसे बातें करो।

बुढ़िया कहने लगी—तीन ही पैसे मिलेंगे, तो दो बनिये को दूँगी।

क्योंकि उसका उधार बहुत पुराना हो गया है। उसके डर से मेरी उधर की राह बन्द है। एक पैसे का गुड़ ले जाऊँगी।

मैंने पूछा—और नमक?

बुढ़िया ने कहा—जैसे चार रोज़ से अलोना खा रही हूँ, वैसे एक रोज़ और खा लूँगी। कल फिर तड़के उठकर घास करूँगी। उससे कुछ पैसे मिल जायेंगे, सो नमक ले जाऊँगी।

मैंने पूछा—आज तुमने दिन भर कुछ खाया नहीं?

बुढ़िया ने कहा—जंगल में खाती क्या? पहर रात रहे उठी हूँ। तब से पहर दिन रहे तक घास करती रही हूँ। कहीं घास रह भी नहीं गई है। और बाबूजी! अब पौरुष भी थक गया है। इतनी देर में यही इतनी-सी घास मिली है। सोचा था कि सड़क पर आते ही वह बिक जायगी, मैं जल्दी ही घर लौट जाऊँगी और नाती को गुड़ खिलाकर तब मैं पानी पीऊँगी।

मैंने पूछा—दिन में तुमको भूख नहीं लगती?

बुढ़िया ने कहा—लगती क्यों नहीं? पर खाऊँ क्या? बहुत ज़ोर की भूख लगती है तो पानी पी लेती हूँ।

मैंने पूछा—बुढ़िया! तुम्हारी यह धोती कितनी पुरानी है?

बुढ़िया ने कहा—यह तीसरा बरस चल रहा है।

मैंने पूछा—नई धोती नहीं ख़रीदी?

बुढ़िया ने कहा—बेटा! कहाँ से ख़रीदूँ? पहले जब शरीर में दम था, तब कुछ काम ज्यादा करती थी और जो पैसे मिलते थे, उनमें से काट-कपट कर कुछ जमा करती जाती थी। बरस डेढ़ बरस में डेढ़-दो रुपये जमा हो जाते थे, उनसे मैं एक धोती ले लेती थी। अब खाने ही भर को नहीं अँटता, तो पैसे बचाऊँ कहाँ से?

मैंने पूछा—तुम्हारे के लड़के हैं?

बुढ़िया ने कहा—एक।

मैंने पूछा—क्या वह तुमको खाने को नहीं देता?

बुढ़िया ने कहा—यही तो अकेला घर में कमाने वाला है। वह है, उसकी स्त्री है और एक मेरा नाती है। बहू को जब से लड़का हुआ है, तब से वह बीमार ही रहती है। वह कमा सकती ही नहीं। अकेला मेरा लड़का दिन भर मजदूरी करके जो कुछ लाता है, वह उन्हीं तीनों के लिये पूरा नहीं पड़ता। मुझे कहाँ से दे? मैं जो दो-चार पैसे कमा लेती हूँ, उतने ही की रोटी मैं भी बहू से बनवा लेती हूँ। जिस दिन नहीं कमाती, उस दिन उपवास कर लेती हूँ।

मैंने पूछा—उस दिन क्या तुम्हारा बेटा खाने को नहीं पूछता?

बुढ़िया ने कहा—पूछता है। लाकर सामने रख देता है। पर बेटा! मैं उसका हिस्सा क्यों खाऊँ? मैं भी खाऊँ, तो वह भूखा ही रह जायगा। फिर अगले दिन कमायेगा कैसे? वह न कमायेगा तो वे तीन प्राणी तकलीफ पायेंगे न? मैं तो बुढ़िया ठहरी। भूखी रहकर पड़े-पड़े दिन काट दूँगी।

बुढ़िया की करुण-कहानी सुन कर मैं तो डूबने-उतराने लगा। कहाँ तो काव्य के नवरसों की मिथ्या और अस्वाभाविक कल्पना! और कहाँ साक्षात् मूर्तिमान करुण रस का दर्शन! मैं निस्तब्ध हो गया।

इक्केवाला चलने की जल्दी कर रहा था। बुढ़िया को अपने नाती के लिये गुड़ की चिन्ता सता रही थी। मैंने दो आने में उसकी घास खरीद कर वहीं सड़क पर छोड़ दी और जो कुछ हो सका, सहायता-स्वरूप उसे कुछ और भी देकर अपनी राह ली।

इसी घटना के साथ मैंने पहले-पहल उस देश की सीमा में पैर रक्खा। सीमा में प्रवेश करते ही मैं सोचने लगा—अरे! क्या यही वह देश है? जहाँ के लोग सोने के बरतनों में खाते-पीते थे। यही क्या वह देश है? जहाँ घर-घर में चन्दन के वृक्ष थे। यहाँ तो सुख नाम का कोई पदार्थ कहीं दिखाई ही नहीं पड़ता।

यहाँ तो चारों ओर दुःख ही दुःख है। एक ग़रीब व्यक्ति बहुतसी टोकरियाँ एक लाठी से लटकाये गाँव की ओर जा रहा है। टोकरियों का जितना बोझ उसके कंधे पर है, उससे कहीं अधिक बोझ उसके मन पर कुटुम्बियों की उन लालसाओं का है जो टोकरियों की बिक्री से प्राप्त हुये पैसों से पूर्ण होंगी। उस घासवाली बुढ़िया की तरह वह भी अपने पुत्र, पौत्र, स्त्री, छोटे भाई या अन्य कुटुम्बी से किसी न किसी चीज का वादा करके घर से चला है।

बहुत से किसान नाजों की गठरियाँ पीठ पर, सिर पर, कन्धे पर या काँख में लिये बाज़ार की ओर जा रहे हैं। प्रत्येक के मन में नाज की बिक्री के पैसों से कोई न कोई चीज खरीद कर किसी न किसी को संतुष्ट करने की तरंगे उठ रही हैं। आज कितने पैसों की ज़रूरत है? और नाज की बिक्री से कितने पैसे आयेंगे? और वह किन-किन जरूरतों में व्यय होंगे? किसान बार-बार इन गुत्थियों के सुलझाने में व्यस्त हैं।

कितने ही घर ग़रीबों के हैं। जिनमें कोई चहल-पहल नहीं है। एक घर की दशा कवि के शब्दों में सुनिये। कोई व्यक्ति अपना मानसिक कष्ट इस प्रकार कह रहा है—

क्षुत्क्षामाः शिशवः शवा इव भृशं मन्दाशया बान्धवा।
लिप्ता जर्जरकर्करी जतुलवैर्नो मां तथा बाधते॥
गेहिन्या त्रुटितांशुकं घटयितु कृत्वा सकाकु स्मितं।
कुप्यन्ती प्रतिवेशिलोकगृहिणी सूचीं यथा याचिता॥

'लड़के भूख से व्याकुल होकर मुर्दे के समान हो गये हैं। बाँधव विमुख हो गये हैं। हाँडी के मुँह पर मकड़ी ने जाला तन दिया है। ये सब मुझे उतना कष्ट नहीं देते, जितना कष्ट पड़ोसिन का यह व्यवहार देता है, कि जब अपनी फटी धोती को सीने के लिये मेरी स्त्री उससे सूई माँगती है, तब वह ताने से हँसकर क्रोध करती है।'

किसी ग़रीब के पास एक ही वस्त्र है। वह उसके विषय में कहता है—

अयं पटो मे पितुरङ्गभूषणं पितामहाद्यै रुपभुक्तयौवनः।
अलङ्करिष्यत्यथपुत्र पौत्रकान् मयाऽधुना पुष्पवतेव धार्यते ॥

'यह वस्त्र मेरे पिता के शरीर का भूषण रहा है । जब यह नया था, तब पितामह ने इसका उपयोग किया था। अब यह मेरे पुत्र और पौत्रों को अलंकृत करेगा। मैं इसे फूल की तरह ही सँभालकर रखता हूँ।'

कोई पुरुष झंख रहा है—

अये लाजानुच्चैः पथिवचनमाकर्ण्य गृहिणी।
शिशोः कर्णौ यत्नात्सुपिहितवती दीनवदना ॥
मयि क्षीणोपाये यदकृत दृशावश्रुशबले।
तदन्तःशल्यं मे त्वमिह पुनरुद्धर्तुमुचित. ॥

रास्ते में किसी ने ज़ोर से 'लावा' कहा। गृहिणी ने उदास मुख से बच्चे के कान यत्नपूर्वक बंद कर दिये। जिससे भूखा बच्चा लावा का नाम न सुन सके। नहीं तो वह माँगने लगेगा। मैं निरुपाय था। यह जानकर गृहिणी की आँखें भर आईं। यही मेरे हृदय का काँटा है। हे भगवान्, तुम्हीं उसे निकालने में समर्थ हो।'

किसी घर में यह दृश्य उपस्थित है—

मा रोदीश्चिरमेहि वस्त्र रहितान्दृष्ट्वाद्य बालानिमा—
नायातस्तव वत्स दास्यति पिता ग्रैवेयक वाससी।
श्रुत्वैवं गृहिणी वचांसि निकटे कुड्यस्य निष्किञ्चनो।
नि श्वस्याश्रुजललवप्लुतमुखः पान्थ. पुनः प्रस्थित ॥

'हे बेटा! मत रोओ। तुम्हारे पिता जब आवेंगे और तुमको वस्त्र-रहित देखेंगे तो तुमको वस्त्र और माला देंगे।' ग़रीब पति झोपड़ी

के पास खड़ा था। स्त्री का ऐसा वचन सुनकर उसने दुःख की साँस ली। आँसू से उसका मुख भीग गया और वह फिर लौट गया।'

किसी घर में यह दृश्य उपस्थित है—

कंथाखण्डमिदं प्रयच्छ यदि वा स्वाङ्के गृहाणार्भकं।
रिक्तं भूतलमत्र नाथ भवतः पृष्ठे पलालोच्चयः।
दम्पत्योरिति जल्पतोर्निशि यदा चोरः प्रविष्टस्तदा।
लब्धं कर्पटमन्यतस्तदुपरि क्षिप्त्वा रुदन्निर्गतः॥

'हे नाथ! गुदड़ी का एक टुकड़ा मुझे दो। या इस बालक को तुम्हीं गोद में ले लो। आपके नीचे पयाल है, यहाँ की ज़मीन खाली है।' इस प्रकार स्त्री-पुरुष रात में बातें कर रहे थे। उसी समय वहाँ कोई चोर घुसा था। बातें सुनकर दूसरी जगह से चोरी करके लाये हुये वस्त्र को वह उनके ऊपर फेंककर रोता हुआ घर से बाहर निकल गया।'

कहीं यह दृश्य उपस्थित है—

वृद्धोऽन्धः पतिरेष मञ्चकगतः स्थूणावशेषं गृहं।
कालोऽभ्यर्णजलागम कुशलिनी वत्सस्य वार्तापि नो।
यत्नात्सचिततैलबिन्दुघटिका भग्नेति पर्याकुला।
दृष्ट्वा गर्भभरालसां निजवधूं श्वश्रूश्चिरं रोदिति॥

'वृद्ध और अंधा पति खाट पर पड़ा है। छप्पर में थून ही थून शेष हैं। चौमासा सिर पर है। परदेश गये हुये पुत्र का कुशल-समाचार भी नहीं मिल रहा है। बहुत यत्न से एक-एक बून्द करके एकत्र किये हुये तेल की कुल्हिया भी फूट गई है! इस प्रकार से आकुल-व्याकुल हो कर चिन्ता करती हुई और अपनी पुत्र-वधू को गर्भ के भार से मन्द देख कर सास देर तक रोती रही।'

कोई कह रहा है—

मद्‌गेहे मुसलीव मूषकवधूर्मूषीव मार्जारिका।
मार्जारीव शुनी शुनीव गृहिणी वाच्यः किमन्यो जनः॥

इत्यापन्नशिशूनसून्विजहतो दृष्ट्वा तु झिल्लीरवै—
लूँता तन्तुवितानसंवृतमुखी चुल्ली चिरं रोदिति ॥

'मेरे घर में (आहार न मिलने से) नन्हीं चुहिया-जैसी तो मूषिका, मूषिका-जैसी बिल्ली, बिल्ली-जैसी कुतिया और कुतिया-जैसी मेरी स्त्री है। औरों की तो बात ही क्या ? इस प्रकार प्राण छोड़ते हुये बच्चों को देखकर मकड़ी के जाले से ढके हुये मुँह वाली चूल्हीं झींगुर के स्वर से रो रही है।,

कोई कह रहा है—

पीठाः कच्छपवत्तरन्ति सलिले संमार्जनी मीनवत्।
दर्वी सर्पविचेष्टितानि कुरुते संत्रासयन्ती शिशून्।
शूर्पार्धावृतमस्तका च गृहिणी भित्ति' प्रपातोन्मुखी।
रात्रौ पूर्णतड़ागसन्निभमभूद्राजन्मदीयं गृहम् ॥

'हे राजन् ! रात में मेरा घर जल से पूर्ण तालाब की तरह हो जाता है। उसमें पीढ़े तो कछुवों की तरह और झाड़ू मछली की तरह तैरने लगते हैं। कलछी साँप की तरह चेष्टा करके बच्चों को भयभीत करती है। स्त्री सूप से आधा सिर ढक लेती है और दीवार गिरने वाली है।'

गाँवों की फटी हुई दीवारें, एक बार पानी बरस जाने पर घंटों रोने वाले, चिथड़े जैसे छप्पर, सड़ी हुई गलियाँ, अस्थि-चर्मावशेष नर-नारी भयानक हाहाकार कर रहे हैं, जो कानों से नहीं, आँखों से सुनाई पड़ता है। यहाँ तो घर-घर में उस घासवाली बुढ़िया के जीवन से कहीं अधिक भयानक दृश्य उपस्थित है। देहात के लोग तरह-तरह की रूढ़ियों में जकड़े हुये अधःपतन की ओर जा रहे हैं। उनमें धर्म की भिन्न-भिन्न व्याख्यायें प्रचलित हैं।

मैंने उस घासवाली बुढ़िया को कुछ पैसे देकर सन्तोष लाभ किया था। पर क्या वह सच्चा सन्तोष था ? नहीं। आत्मा जगने वाली थी। मैंने उसे थपकी मारकर फिर सुला दिया था। थोड़े पैसों से क्या ?

यहाँ तो समूचे जीवन-दान की आवश्यकता है। मैं सोचने लगा—ईश्वर ने इस देश को गरीब बनाकर शिक्षितों को अपनी मनुष्यता के विकास के लिये कितना लम्बा-चौड़ा मैदान दे दिया है। शिक्षितों को अपने गाँवों के नीरव हाहाकार को, जो जीवन-साफल्य के लिये ईश्वर की पुकार है, सुनना चाहिये।

गाँवों की दशा देखकर बार-बार मन को विक्षोभ और आँखों को जल-रेखाएँ घेर लेती थीं।

तन और मन की आँखें तो खुली ही थीं। मैंने कान भी खोल दिये। मैं गाँवों में गया। गाँवों का बाह्य सौन्दर्य बड़ा ही आकर्षक होता है। गरमी के तीन-चार महीने छोड़कर बाक़ी प्रायः सब महीनों में गाँवों के चारोंओर हरियाली ही हरियाली दिखाई पड़ती है। तालाब और कुएँ बनवा देना और आम के बाग लगवा देना देहात में बड़े पुण्य और प्रतिष्ठा का काम समझा जाता है। जिसके पास कुछ भी धन बचता है, वह ये तीन काम अवश्य करता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि चारोंओर आम के बाग ही बाग नज़र आते हैं। पहले इन बागों के फल भी लोगों को मुफ्त मिला करते थे। पर पैसे की आवश्यकता बढ़ जाने से अब इनके फल नीलाम होने लगे हैं। पहले ज़मींदार लोग ऊसर और जंगल गायों के लिये छोड़ देते थे। पर अब उनका ज़ाती खर्च इतना बढ़ गया है कि वे एक-एक बीता ज़मीन बेंचकर पैसे बना रहे हैं, फिर भी क़र्ज़दार बने रहते हैं। ज़मींदारों ने नदी-नालों तक के पेट बेंच लिये हैं। उन्हें मनुष्यों के पेट की चिन्ता क्या है?

जैसे गाँव का बाह्य सौन्दर्य नयनाभिराम होता है वैसे ही उसके भीतर का दृश्य नरक से कम वीभत्स नहीं होता। बरसात में सारे रास्ते पानी और कीचड़ से भर जाते हैं। कई सौ वर्ष पहले बेनी कवि ने

लखनऊ का जो चित्र खींचा था, वही बरसात में आजकल प्रत्येक गाँव में प्रत्यक्ष दिखाई देता है। बेनी कवि लिख गये हैं—

"गड़ि जात बाजी औ गयन्द गन अड़ि जात
सुतुर अकड़ि जात मुसकिल गऊ की।
दामन उठाय पाय धोखे जो धरत होत
आप गरकाप रहि जात पाग मऊ की॥
बेनी कवि कहै देखि थर थर काँपै गात
रथन के पथ ना विपद बरदऊ की।
बार बार कहत पुकार करतार तोसों
मीच है कबूल पै न कीच लखनऊ की॥

गाँव के लोग घर के पास ही घूर लगाते हैं। पानी बरस जाने से वह सड़ने लगता है। जगह की कमी से वे गायें, भैंसें, खेती के बैल अपने रहने के घरों ही में बाँधते हैं। इससे हरवक्त पशुओं के गोबर और मूत की दुर्गन्ध बनी रहती है। अधिकांश लोग गरीब होते हैं, जो पुरानी और सड़ी-गली कच्ची दीवारों से घिरे हुए घर में, चूते हुए खपरैल या फूस के छप्पर के नीचे रहते हैं। जब सावन में घटा घिर आती है, तब उनके चेहरों पर घर गिरने के भय और खाने-पीने और पहनने की चीजों के भीग जाने की चिन्ता के बादल घिर आते हैं। जब पानी बरसने लगता है, तब उनकी आँखें चूने लगती हैं। बरसती हुई रात में रात-रात भर बेचारे सो नहीं सकते। या तो किसी कोने में ठकरू मुकरू बैठकर रात बिता देते हैं, या किसी जगह, जहाँ चूता न हो, खड़े-खड़े आँखों में रात निकाल देते हैं और सबेरा होते ही फिर दिनभर पेट के धंधे में लगे रहते हैं।

यह सब होते हुये भी गाँवों के हृदय में सुख का प्रकाश है। वह सुख आँख से नहीं, कान से दिखाई पड़ता है। यदि वह सुख न होता तो अनन्त दुःखों का भार गाँव के लोग कैसे उठा सकते थे? बरसात

के महीनों में गाँव में जाकर रहिये, तो देखियेगा कि जो व्यक्ति भूख की ज्वाला से जल रहा है, वह भी गा रहा है—

धै देत्यो राम—हमारे मन धिरजा।
सब के महलिया रामा दिअना बरतु हैं
हरि लेत्यो हमरो अँधेर। हमारे० ॥ १ ॥
सब के महलिया रामा जेवना बनतु हैं
हरि लेत्यो हमरी भूख। हमारे० ॥ २ ॥
सब के महलिया रामा सेजिया लगतु हैं
हमरो हरि लेत्यो नींद। हमारे० ॥ ३ ॥

सावन की घटा जवानी की तरह उमड़ती चली आ रही है। पुरवा हवा अत्यन्त प्रिय व्यक्ति के कर-स्पर्श की भाँति सुहावनी लग रही है। ऐसे समय में वह चरवाहा, जिसे पेट भर खाने को नहीं मिलता, ओढ़ने-बिछौने की तो बात ही क्या? जिसके पास आराम से सोने भर के लिए भी जगह नही—ऊँचे स्वर से बिरहे गा-गा कर संसार के समस्त दुखों को तुच्छ समझ रहा है—

मन तोरा अदहन तन तोरा चाउर, नयन मूँग कै दालि।
अपने बलम के जेंवना जेंवतिउ, बिनु लकड़ी बिनु आगि॥

× × ×

सकल चिरैया उड़ि उड़ि जैहैं, अपनी अपनी जून।
मैं तौ पापिनि परिउँ पिंजड़वा, मरउँ बिसूर बिसूर॥

× × ×

जोबन गया तो क्या हुआ रे, तन से गई बलाय।
जने जने को रूठना रे, हम से सहा न जाय॥

किसान दिनभर खेतों में काम करके थकान से चूर शाम को घर लौट रहा है। वह गाता आ रहा है—

बेला फूलै आधी रात, गजरा मैं केके गरे डालूँ।

स्त्रियाँ खेत में काम कर रही हैं। कपड़े सब के मैले और फटे पुराने हैं। कई ऐसी होंगी, जिन्हें रात में भरपेट भोजन नहीं मिला होगा। कई ऐसी होंगी, जिन्हें अकारण क्रोधी पति ने पीटा होगा। फिर भी वे गा रही हैं—

सॅवलिया रे काहे मारै नजरिया।
मारै नजरिया जगावै पिरितिया। सॅवलिया रे ॥
जैसे दूध में पानी मिलतु हैं,
वैसे मिलौं तोरे साथ। सॅवलिया रे ॥
जैसे अकास पै चिड़िया उड़तु हैं,
वैसे उड़ौं तोरे साथ। सॅवलिया रे ॥

सावन में गाँव-गाँव में हिंडोले पड़ जाते हैं। जिन पर दिन में और रात में लड़कियाँ और बहुएँ झूलती और गाती हैं। किसी को ठीक-ठीक भोजन-वस्त्र नहीं मिलता। किसी की सास कर्कशा है और वह नरक-यंत्रणा भोग रही है। फिर भी सब प्रसन्न मन से गाती हैं—

प्रेम पिरित रस बिरवा रे तुम पिय चलेहु लगाय।
सींचन की सुधि लीजो देखेउ मुरझि न जाय ॥
प्रेम पिरित रस बिरवा ॥

सावन का महीना है। बहुओं का मन नैहर के लिये तड़पने लगता है। हिंडोले के गीतों में अपनी यह तड़प वे गा-गाकर सुना रही हैं—

ठाढ़ी झरोखवाँ मैं चितवउँ नैहरे से केउ नाहीं आइ।
ओहि रे मयरिया कैसन बपई जेकर ससुरे में सावन होइ ॥

कहार लोग बहुओं को पालकी या डोली में नैहर की ओर लिये जा रहे हैं। कंधे पर बोझा है। आँखें रास्ते पर लगी हैं। डोली ढोने ही की जीविका है। आमदनी कम है। घर में खानेवाले बहुत हैं। हरवक्त चिन्ता सिर पर सवार है। फिर भी वे गाते जाते हैं—

सोच मन काहे क करी।
मोरे मालिक सिरी भगवान ॥सोच०॥

बरसात में मेले बहुत होते हैं। स्त्रियाँ झुंड की झुंड मेलों में जाती हैं। दुखी-सुखी सब घरों की स्त्रियाँ साथ गाती हुई चलती हैं। मेले के गीत प्रायः शान्त और शृङ्गार-रस ही के होते हैं। उत्तेजक नहीं होते। स्त्रियाँ गाती चलती हैं—

रघुवर सँग जाब, हम न अवध माँ रहबै।
जौ रघुवर रथ पर जइहैं, भुँइऐ चली जाब। हम० ॥१॥
जौ रघुवर बन फल खइहैं, फोकली बिनि खाब। हम० ॥२॥
जौ रघुवर पात बिछैहैं, भुइयाँ परि जाब। हम० ॥३॥

गाँवों में कहीं कहीं मंदिर होते हैं, या साधु की कुटी होती है। कुछ लोग शाम को वहाँ जमा होते हैं। कोई संतानहीन होता है, कोई भाइयों से लड़-झगड़ कर आता है। किसी की अपनी स्त्री से नहीं पटती। कोई नितान्त दरिद्र है। पर गीत की दुनियाँ में सब अपना दुख भूल जाते हैं—

कुटी में कुछ लोग गा रहे हैं। बाकी लोग बैठे सुन रहे हैं—

संतो नदी बहै इक धारा।
जैसे जल में पुरइन उपजै जल ही में करै पसारा।
वाके पानि पात नहिं भीजै ढुरुकि परै जैसे पारा॥
जैसे सती चढ़ी सत ऊपर पिय को वचन नहिं टारा।
आप तरै औरन को तारै तारै कुल परिवारा॥
जैसे सूर चढ़ै लड़ने को पग पीछे नहि टारा।
जिनकी सुरति भई लड़ने को प्रेम मगन ललकारा॥
भवसागर एक नदी बहत है लख चौरासी धारा।
धर्मी-धर्मी पार उतरिगे पापी बूड़े मँझधारा॥

ऐसे गीत सुनकर बहुत से पापी पाप कम करने लगते हैं। बहुत

से सत्य छोड़नेवाले सँभल जाते हैं। बहुत सी कर्कशा स्त्रियाँ पति की आज्ञाकारिणी हो जाती हैं। ऐसे गीत सामाजिक जीवन के मल को धोते रहते हैं।

कोई युवक अपनी जवानी की उमंग में है। वह अकेला गाता जा रहा है—

चितै दे मेरी ओर, करक मिटि जाय रे।
मैं चितवत तू चितवत नाहीं, नेह सिरानो जाय॥

दूर से आता हुआ पथिक थका-माँदा है। फिर भी वह गा रहा है—

भूला किन हारो रे अमरैयाँ।
रैनि अँधेरी ताल किनारे बुनिया परै पुइयाँ फुइयाँ॥

गाँवों की चौपाल मनोरंजक स्थान है। फुरसत के वक्त महल्ले के लोग चौपाल में आ बैठते हैं। कोई कुछ कहता है, कोई कुछ। बीच-बीच में कहावतें भी चलती रहती हैं। अच्छे से अच्छे रसभरे महावरे आनन्द बढ़ाया करते हैं। चौपाल में घाघ और भड्डरी भी मौजूद रहते हैं। कोई कह रहा है—

लरिका ठाकुर बूढ़ दिवान।
ममिला बिगरै साँझ बिहान॥

'राजा बालक हो और उसका दीवान पुराना हो तो उन दोनों में नहीं पटेगी।'

कोई कह रहा है :—

आलस नींद किसानै नासै, चोरै नासै खाँसी।
अँखिया लीबर बेसवै नासै, बाबै नासै दासी॥

'आलस्य और नींद से किसान, खाँसी से चोर, कीचड़वाली आँखों से वेश्या और दासी की संगति से बाबा (साधू) का नाश होता है।'

कोई कह रहा है —

'जबरा की मेहरारू, गाँव भर की काकी।
अबरा की मेहरारू, गाँव भर की भौजी॥

'ज़बरदस्त की स्त्री को सब काकी कहते हैं। पर निर्बल की स्त्री को सब भौजाई समझते हैं'।

कोई कह रहा है :—

बिन बैलन खेती करै, बिन भैयन के रार।
बिन मेहरारू घर करै, चौदह साख लबार॥

'जो कोई कहे कि बैल रक्खे बिना मैं खेती करता हूँ, भाइयों के सहयोग बिना मैं दूसरों से लड़ाई ठानता हूँ और बिना स्त्री गृहस्थी चलाता हूँ, वह चौदह पुश्त का झूठा है।

इसी प्रकार की हज़ारों अनुभव की बातें गाँवों में हरवक्त होती रहती हैं।

एक बार जाड़ों में गाँव की सैर कर आइये। रात के पिछले पहर में कोल्हू और जाँत के गीत सुनकर आप का मन मुग्ध हो जायगा।

गर्मी के दिनों में विवाह की धूम रहती है। महल्ले की स्त्रियाँ वर और कन्या के घरों पर जमा होकर विवाह के गीत गाया करती हैं।

/देहात के जीवन में मुझे गीतों की प्रधानता पद-पद पर प्रतीत होने लगी। भयानक दुःखों से ओत प्रोत जीवन में ये गीत कैसे उत्पन्न हुये? जैसे कीचड़ में कमल। मैं गाँवों की यह छटा देखकर मन ही मन मुग्ध हो गया। पर गीतों के संग्रह की ओर मेरी प्रवृत्ति बहुत दिनों तक नहीं हुई थी। केवल मैं मन ही मन उसका रसानुभव किया करता था। ग्राम-गीतों के लिये ज़मीन तैयार न थी। एक घटना-विशेष ने एक दिन उसमें बीज डाल दिया। घटना इस प्रकार से संघटित हुई थी—

सन् १९२४ के आस-पास की बात है, मैं जौनपुर से प्रयाग आ रहा था। एक स्टेशन पर कुछ स्त्रियाँ, जो संभवतः अहीर या चमार जाति की थीं कुछ मर्दों को, जो कलकत्ते जा रहे थे, पहुँचाने आई थीं और रो रही थीं। ट्रेन स्त्रियों को रोती हुई छोड़कर चल दी। कलकत्ते

जाने वाले मर्द संयोग से थर्ड-क्लास के उसी डब्बे में आ बैठे थे, जिसमें मैं था। उनके साथ दो-तीन स्त्रियाँ भी थीं, जो अपने परदेशी पतियों के साथ या पास कलकत्ते जा रही थीं। उसकी एक ही कड़ी मुझे याद है। वह यह है—

'रेलिया सवति मोर पिया लइके भागी।'

रेल की तुलना सौत से होती हुई सुनकर मैं यकायक चौंक उठा। यह तो एक बिल्कुल नई उपमा है। किसी स्त्री ने ही यह गीत रचा होगा। नहीं तो, ऐसी मर्म की बात कहने की इस जमाने में फुरसत ही किसको? क्या स्त्रियाँ भी कवितामय हृदय रखती हैं? मैं उस कड़ी के साथ ही ये बातें सोचने लगा। कई सौ वर्ष पहले रहीम ने स्त्रियों की तरफ से एक बरवा कहा था। जिसमें सौत की तुलना हंसिनी से की गई है। उस कड़ी के सुनने के साथ ही मुझे वह बरवा याद आया था—

पिय सन अस मन मिलयूँ, जस पय पानि।
हंसिनि भई सवतिया, लइ बिलगानि॥

इसमें हंस-हंसिनी के एक विशेष गुण—सो भी कवियों के कथनानुसार, पक्षी-विद्या-विशारदों के कथनानुसार नहीं—मिले हुये दूध और पानी को अलग कर देने पर लक्ष्य करके विचार बाँधा गया है। हंसिनी के इस कल्पित गुण को जानने वाले सहृदय रसिकजन ही इस बरवे को सुनकर सिर हिला सकते हैं। पर रेल तो प्रत्यक्ष सौत का सा कार्य करती है। वह पति को लेकर भाग जाती है। भागना धर्म दोनों का एक-सा है। मुझे गीत रचनेवाली के हृदय की सरसता बड़ी ही मधुर जान पड़ी। बस, इसी घटना के याद से मैं ग्राम-गीतों की ओर आकर्षित हुआ हूँ।

इसके बाद एक दिन एक मेले में देहाती स्त्रियों के मुख से एक यह कड़ी भी सुनकर मैंने अनुभव किया कि उगे हुए अंकुर को किसी ने सींच दिया—

हम चितवत तुम चितवत नाहीं,
तोरी चितवन में मन लागो पिया।

इस गीत के भाव ने भी हृदय में आकर्षण पैदा किया था।

एक दिन सुलतानपुर ज़िले के एक गाँव में मैं जा रहा था। एक अहीर का लड़का गोरू चराते-चराते यह बिरहा गा रहा था—

बिरहा गावउँ बाघ की नाईं दल बादल घहराय।
सुनि के गोरिया उचकि उठि धावै बिरहा क सबद ओनाय॥

जिन्हें 'ओनाय' शब्द का देहाती भाव मालूम है, वही इसका रस ले सकते हैं। पहले ऐसे बिरहे मैंने सैकड़ों सुने होंगे, पर एक भी याद नहीं रहा। अब जब कि मैं अलंकार, नायिकाभेद और नखसिख से परिचित हुआ, यह बिरहा मुझे बहुत सरस जान पड़ा।

एक दिन एक अहीर ने कहीं राह चलते-चलते—मुझे याद नहीं है, कहाँ—यह बिरहा गाया था—

महँगी के मारे बिरहा बिसरिगा भूलि गइ कजरी कबीर।
देखि क गोरी क मोहिनी सुरति अब उठै न करेजवा मँ पीर॥

भूख के प्रभाव का ऐसा सच्चा और सजीव वर्णन तो शायद ही कोई कवि कर सके। भूख के मारे बिरहा बनाने या गानेवाले के कलेजे में गोरी की मोहिनी सूरत देखकर चाहे पीर न पैदा हुई हो, पर बिरहा सुनकर ग्राम-गीतों के लिए प्रबल भूख की पीर मेरे हृदय में अवश्य पैदा हो गई।

शेख़ सादी ने भी ऐसी ही कल्पना की थी—

चुनाँ कहतशाले शुदन दर दमिश्क।
कि याराँ फ़रामोश करदंद इश्क॥

अर्थात् दमिश्क में ऐसा अकाल पड़ा कि यारों ने इश्क को भुला दिया। पर अहीर के बिरहे में शायर की कल्पना से कहीं अधिक हृदय की सच्ची अनुभूति और सरसता मुझे जान पड़ी।

सन् १९२५ में सब से पहले जाँत के दो गीत मुझे सुलतानपुर में मिले। मैंने उन्हें अर्थ सहित 'सरस्वती' में प्रकाशित कराया। जिन जिन लोगों की दृष्टि से वे गीत गुज़रे, उनमें से बहुतों ने उन्हें पसंद किया और कइयों ने मुझे पत्र लिखकर अपनी प्रसन्नता प्रकट भी की। इससे मैं उत्साहित हुआ।

यहीं से मेरे उद्योग का श्रीगणेश समझना चाहिये।

संग्रह का काम बहुत कठिन था। इतने बड़े देश में, जिसमें सैकड़ों बोलियाँ बोली जाती हैं, मैं अकेला कहाँ कहाँ जा सकता था? और यदि जाता भी, तो राह-ख़र्च के लिये आवश्यक धन कहाँ से आता? और बिना अपने किये चिट्ठी-पत्री और समाचार-पत्रों द्वारा संग्रह का काम हो नहीं सकता था। ये सब चिन्ता की बातें मेरे दिमाग़ में घूमने लगीं।

यह काम चिट्ठी-पत्री से नहीं हो सकता था। इसके लिये स्वयं जाकर मिलना और प्रभावशाली लोगों का इन्फ्लुएंस डालना आवश्यक था। सम्भव है, एक एक व्यक्ति की 'हाज़िरी' में कई-कई दिन लग जायँ। इसलिये निजी कामकाज से हाथ खींचकर, केवल इसी काम में पूरा समय लगाने की ज़रूरत महसूस हुई। ख़ैर, समय तो अपने अधीन था। पर धन कहाँ से आयेगा? ऐसी संस्थायें तो इस देश में हैं नहीं, जो ऐसे आवश्यक और नये काम करनेवाले के लिये सब प्रकार की सुविधायें कर देतीं। पर गीतों के संग्रह का काम मैं बहुत ही आवश्यक समझने लग गया था और उसके लिये ऐसी सच्ची लगन मन में जाग उठी थी कि सब कठिनाइयों के मुक़ाबले में मुझे उतर पड़ना अनिवार्य हो गया। इसलिये ईश्वर का नाम लेकर, सन् १९२६ के सितम्बर महीने से, मैंने गीत-यात्रा शुरू कर दी। पहले मैं प्रयाग और उसके आस-पास के जिलों—जौनपुर, प्रतापगढ़, रायबरेली, मिर्ज़ापुर, सुलतानपुर आदि—के देहातों में जाने-आने लगा।

देहात में जाने से गीत-संग्रह की नई-नई कठिनाइयाँ सामने आने लगीं।

सबसे बड़ी कठिनाई स्त्रियों से गीत लेने में पड़ती थी। स्त्रियाँ गीत बोलकर लिखा ही नहीं सकतीं। बोलकर लिखाते समय उनको गीत याद ही नहीं आते। वे गाती जायँ और कोई लिखता जाय, तभी काम हो सकता है। सो भी कई स्त्रियाँ एक साथ बैठकर गावें, तभी उनके दिमाग़ में गीत की कड़ियाँ फूल की पंखड़ियों की तरह खुलती रहती हैं। अकेली गाने में शायद ही कोई स्त्री पूरा गीत गा सके। युवती स्त्रियों से गीत लेने में तो और भी कठिनाई है। एक तो परदा। दूसरे पर पुरुष के सामने गाने के लिये लज्जावश उनका कण्ठ ही नहीं फूटता। कन्यायें तो बहुत ही कम ऐसी मिलती हैं, जो पूरा गीत जानती हों। कारण यह जान पड़ता है कि गीत याद करने का काम तो स्त्रियों का जन्म-भर के लिये है। दस-पाँच जब मिलकर गाती हैं, तब किसी को कोई कड़ी याद आ जाती है, किसी को कोई। इस तरह सबका सहारा पाकर गीत का गोबर्द्धन किसी तरह उठा लिया जाता है। कन्यायें छोटी उम्र की होने के कारण गीत की प्राइमरी क्लास में रहती हैं, इससे पूरा नहीं जानतीं।

स्त्रियों से गीत लेने में उनकी स्मरण-शक्तिवाली यह कठिनाई कम नहीं है। मेरे तो धैर्य्य की परीक्षा हो जाया करती थी। कभी-कभी तो एक-एक गीत के लिये पूरा एक दिन लग गया है। फिर भी शाम होने तक उसकी एक-दो कड़ियाँ संदिग्ध ही थीं। कभी-कभी एक गीत एक गाँव में अधूरा ही प्रचलित मिलता। उसकी पूर्ति दूसरे गाँव में होती। इस प्रकार एक-एक गीत के पीछे पड़े बिना सच्चा काम नहीं हो सकता था।

गीत संग्रह करने में मुझे जो-जो तकलीफ़ें भोगनी पड़ी हैं, मेरा

शरीर और मन उनके लिये असमर्थ था। केवल गीतों के लिये सच्ची लगन ही मुझे उन तकलीफ़ों से पार लगाने में समर्थ हुई है।

ज़रा ध्यान में यह दृश्य देखिये तो—सावन का महीना है। घटा घिरी हुई है। कभी झींसे पड़ रहे हैं। कभी लहरे पर लहरे आ रहे हैं। पुरवा हवा के झोंके चल रहे हैं। धान के खेत में, घुटने तक पानी में खड़ी चमारिनें खेत में उगे हुये घास-पात को खोंटकर—नोचकर निकाल रही हैं। वे गा भी रही हैं। शरीर तो उनका धान के खेत में काम कर रहा है, और मन गीत की दुनिया में है। मैं धान के मेंड़ पर बैठा गीत सुनता जाता हूँ और लिखता जाता हूँ। जिन्होंने धान के मेंड़ देखे होंगे, वे समझ सकते हैं कि धान के मेंड़ पर बैठना तलवार की धार पर बैठने के समान है। किसानों की एक अजीब आदत होती है—वे हर साल मेंड़ को काटते रहते हैं। कटते-कटते मेंड़ इतने पतले हो जाते हैं कि उन पर पैर रखकर चलना कठिन हो जाता है। बैठना तो असंभव ही समझिये। धान के मेंड़ों से तो ईश्वर ही बचावे। क्योंकि तलवार की धार की तरह पतले मेंड़ के दोनों ओर के खेत लबालब पानी से भरे रहते हैं। ज़रा सी दृष्टि चूकी, या ध्यान बँटा कि धड़ाम से पानी और कीचड़ के अंदर। कितनी ही बार मैं इस विपत्ति को भोग चुका हूँ।

कई बार सुबह से लेकर दोपहर तक बरसते हुये पानी में, छाते के नीचे खड़े-खड़े मैंने चमारिनों के गीत सुने और लिखे हैं। कहीं बैठने की जगह ही नहीं मिली।

जो गीत मैंने चमारिनों के घरों पर जाकर लिखे हैं, उनके लिखने में मुझे अपने मन को बड़ी कड़ी परीक्षा में बैठाना पड़ा है। ध्यान में देखिये—गाँव से बिल्कुल बाहर चमार का घर है, जिसकी दीवारें लोनी से गल गई हैं। दीवारों के अन्दर के कंकड़ खीस काढ़े हैं। दीवारों में सैकड़ों दरारें, छेद, बिल और गुफायें हैं, जिनमें छिपकलियों, मकड़ियों, चींटियों, चूहों और झींगुरों के सैकड़ों परिवार निवास कर रहे हैं। दीवारों पर बीसों

स्थान से फटा हुआ, सहस्रों नेत्रोंवाला, एक सड़ा-गला छप्पर रक्खा है। एक ही घर है। उसी में खाना भी पकता है, उसी में चक्की भी है, उसी में सैकड़ों स्थानों पर सिले हुये मैले-कुचैले कपड़े भी पड़े हैं। घर में छोटा बच्चा है तो एक किनारे उसका पाखाना भी पड़ा है। चमार-चमारिन को पेटके धंधे ही से फुरसत नहीं मिलती, पाखाना कौन उठाता ? एक किनारे मड़ुवा, साँवाँ या धान पड़ा हुआ है। यही उनका आहार है। एक तरफ घास की चटाई लपेटी रक्खी है, जिसे घर के लोग जाड़ों में ओढ़ते और बरसात में बिछाते हैं। गरमी में ओढ़ने-बिछाने की ज्यादा ज़रूरत ही नहीं पड़ती। जमीन पर सो गये, आसमान ओढ लिया, किसी तरह रात कट गई। झोपड़ी के आस-पास सुअर और उनके छौने घूम रहे हैं। छौने कभी-कभी अंदर भी घुस आते हैं। घर के आस-पास खेत हैं, जो सुअर के गू से भरे हुये हैं। पानी बरस जाने से गू सड़कर जमीन पर फैल रहा है। उसकी बू से लवेंडर सूँघने वाली शहर की नाक फटी जा रही है। एक किनारे चूल्हे पर मरी हुई गाय का मांस पक रहा है। मैं उसी झोपड़े के द्वार पर दीवार से पीठ टेके, रूमाल पर बैठा हुआ, एक साठ बरस की बुड्ढी चमारिन से गीत लिख रहा हूँ। बुड्ढी की धोती में जुलाहे से अधिक सीनेवाले को मेहनत करनी पड़ी है। वह उसी धोती को कई बरस से पहन रही है और एक ही धोती होने के कारण वह धोती धो भी नहीं सकती और नहाती भी कम है। इससे उसके शरीर और धोती की बदबू नाक-भौं को सिकोड़ने के लिये काफी है। बताइये, ऐसे स्थानों से गीत-संग्रह का काम बड़े साहस का है या नहीं ?

शारीरिक कष्ट का यह हाल कि गाँवों में न धर्मशाले हैं, न सरायें। बाहर से जानेवाले लोग ठहरें तो कहाँ ठहरें ? मैं दोपहर-दोपहर तक धान के मेंड़ों पर या चमारों के घरों पर बैठा गीत लिखा करता था दोपहर को खेत में काम करने वालों या वालियों को छुट्टी मिलती, तो मैं भी वहाँ से उठकर गाँव किसी ब्राह्मण या ठाकुर के द्वार पर डेरा डालता।

चना-चबैना और गुड़ ही पर दिन बिताना पड़ता था। कभी-कभी तो आलस्य और रसोई बनाने की असुविधा के कारण रात भी लाई-चने की शरण में बितानी पड़ती थी। गुड़ तो मेरा खास साथी ही था। उसे तो मैंने गत गीत-यात्रा के चार वर्षों में इतना खाया कि आज वह डायबिटीज़ के नाम से स्वास्थ्य का शत्रु बन बैठा है और उसका अंत ही नहीं दिखाई पड़ता।

अब एक समाजिक कठिनाई का ज़िक्र सुनिये—देहात के लोग बहुत बेकार रहते हैं। काम के दिनों में भी दोपहर के बाद का उनका सारा वक्त किसी चौपाल में बैठकर गप्पें हाँकने, एक दूसरे की निंदा करने और तम्बाकू खाने और पीने में जाता है। मैं भी उन्हीं में जा बैठता। पर मेल मिलता नहीं था। वे बेचारे एक मैली-सी धोती पहने नङ्ग धड़ङ्ग बैठते थे। उनके बीच में मैं सफेद धोती-कुरता और टोपी पहनकर बैठता था। काम भी क्या? गीत-संग्रह, जो बहुत से शिक्षित कहे जानेवालों की दृष्टि में पागलपन समझा जाता है, गाँव के गँवारों की दृष्टि में तो वह एक मज़ाक के सिवा और कुछ हई नहीं। मेरे काम का महत्त्व समझना उनकी बुद्धि से बहुत दूर था। इसलिये मन में पैदा हुये कौतूहल की पूर्ति के लिये उनको नई-नई कल्पनायें करनी पड़ती थीं। कोई कहता—बाबूजी किसी और मतलब से देहात में आये हैं। कोई कहता—अरे, यह खुफिया पुलिस का कोई दारोगा है। किसी बदमाश की टोह लेने आया है। कोई कहता—बाबू साहब औरत की तलाश में आये हैं। कोई खूब सूरत लड़की या औरत देखेंगे तो ले भागेंगे। कोई कहता—अरे! ये शहर में कोई क़ुसूर करके भगे हैं। देहात में हज़रत छिपे-छिपे फिर रहे हैं। इसी प्रकार के तीरों का निशाना बनकर मैं गाँवों में रहता था।

सन् १९२६, २७, २८, के बरसात के महीनों में मैंने गाँवों में जा-जाकर निरवाही और हिंडोले के गीत और जाड़े के महीनों में जाँत और कोल्हू के गीत लिखे थे। सोहर और गर्मी के गीत—जैसे विवाह

और जनेऊ के गीतों के लिये मैं गाँवों में नहीं जा सका। गीतों के संग्रह में देर होती देखकर मैंने कुछ देहाती पढ़े-लिखे लोगों को वेतन देकर गीत जमा करने के लिये रक्खा। इनमें से अधिकांश ने मुझे खूबही ठगा। कई तो प्रयाग आकर मुझ से काफी रुपये ले गये और ऐसे बैठे कि उन्होंने फिर साँस ही डकार न ली। कइयों ने कुछ गीत भेजे और फिर गीत सिखानेवाली बुढ़ियों को देने के लिये रुपये तलब किये, जो गीतों के लोभवश मुझे देने पड़े। पर वे रुपये गीत की सूरत में फिर कभी नहीं लौटे। इससे कितने ही गीत तो दो-दो तीन-तीन रुपये फ़ी गीत की लागत के पड़ गये हैं।

बिहार के गीत मुझे डाक-द्वारा इतने काफी मिल गये कि मुझे उधर जाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। बिहार की स्त्रियों में युक्त-प्रांत की स्त्रियों से अधिक शिक्षा का प्रचार जान पड़ता है। बिहार की स्त्रियों में गीत लिख रखने की प्रथा है, जो युक्त-प्रांत में मेरे देखने में बहुत कम आई। बिहार से बहुत सी हस्त-लिखित कापियाँ मेरे पास आई थीं, जिनसे मैंने गीत नक़ल करके उन्हें वापस भेजा।

इस प्रकार उत्तर भारत में गीत-संग्रह का चक्र चलाकर मैं अन्य प्रांतों के गीतों का अध्ययन करने के लिये, ८ नवम्बर ,१६२७,को प्रयाग से बम्बई के लिये चल पड़ा। बम्बई में मैंने मराठी और गुजराती लोक-गीतों की छपी पुस्तकें ख़रीदीं। कुछ व्यक्तियों से भी मिला और उनसे गीतों का तुलनात्मक ज्ञान प्राप्त किया।

१६ नवम्बर, १६२७ को मैं प्रातःकाल ६॥ बजे, नेत्रवती जहाज से द्वारका के लिये रवाना हुआ। मेरा इरादा द्वारका से प्रवेश कर के काठियावाड़ और गुजरात का भ्रमण करने का था। अतएव ता० १७ नवम्बर १६२७ को ६॥ बजे सवेरे मैं द्वारका पहुँचा। द्वारका और बेट द्वारका में मैं तीन दिन रहा। वहीं मैंने काठियावाड़ में दौरा करने का प्रोग्राम तैयार किया और उसके अनुसार जामनगर, राजकोट, पोरबन्दर,

सोमनाथ, जूनागढ़, गिरनार, गोंडल, मोरवी, वाँकानेर, ध्रांगध्रा, पालिताना, वढवान और लिमडी की यात्रायें कीं। यात्रा में मैं अकेला था। इसलिये खाने की तकलीफ़ें और यात्रा की अन्य असुविधायें भी बहुत भोगनी पड़ीं।

मैं काम-चलाऊ गुजराती भाषा जानता हूँ। काठियावाड़ की यात्रा के मेरे अनुभव बड़े मधुर हैं। काठियावाड़ और गुजरात के लोग बड़े सहृदय होते हैं। मुझे गुजरात स्वभाव ही से प्रिय है। काठियावाड़ के दौरे में वह प्रियता और भी बढ़ गई।

गुजरात और काठियावाड़ में रास नाम का नाच प्रायः प्रत्येक गाँव में,प्रत्येक पूर्णिमा की रात में होता है। संध्या के भोजनोपरांत महल्ले की स्त्रियाँ किसी स्थान विशेष पर एकत्र होकर रास नाचती हैं। गुजरात की पूर्णिमा स्त्रियों के इस आनन्दोत्सव से कैसी सुहावनी हो जाती होगी, जरा कल्पना कीजिये।

गर्बा एक खास तरह का गीत है। इसे गाते समय स्त्रियाँ एक गोल चक्कर में घूमती हुई हाथों से बड़ा श्रवण-सुखद ताल देती हैं। घूमते समय कभी आगे की तरफ झुक जाती हैं, कभी बगल की तरफ़ और कभी सीधी खड़ी हो जाती है। यह दृश्य बड़ा ही नयन-मनोहर होता है। गुजरात का यह सुप्रसिद्ध नृत्य देखकर और गान सुनकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ।

काठियावाड़ की बहुत-सी सुखद स्मृतियाँ साथ लेकर मैं अजमेर आया। अजमेर में भी गीत-संग्रह के लिये कुछ मित्र तैयार करके तथा कुछ गीत प्राप्त करके मैं जोधपुर गया। जोधपुर में मेरे कितने ही पत्र परिचित मित्र प्रत्यक्ष हुये। गीत-संग्रह के लम्बे-चौड़े वादे लेकर, और कुछ गीत प्राप्त भी करके, मैं फिर अजमेर वापस आया, और वहाँ से उदयपुर, नाथद्वारा और चित्तौरगढ़ गया। महाराणा प्रतापसिंह के साथी भीलों के गीत प्राप्त करने का प्रबन्ध किया और वहाँ की

अच्छी तरह सैर करके फिर अजमेर वापस आया। अजमेर से फिर जयपुर गया। वहाँ से सीकर, सीकर से फतहपुर (शेखावाटी), फतहपुर से पिलानी गया। पिलानी बिड़ला-परिवार का मूलस्थान है। श्रीयुक्त जुगलकिशोर जी, श्रीयुक्त घनश्यामदास जी, श्रीयुक्त रामेश्वरदास जी बिड़ला-बंधु उन दिनों वहीं थे। मैं श्रीयुक्त घनश्यामदास जी के पास ठहरा। गीत-संग्रह के लिये श्रीयुक्त घनश्यामदासजी ने मुझे पहले भी दो हजार रुपये की आर्थिक सहायता दी थी, पिलानी में भी दी। बिड़ला-बंधु चार भाई हैं। चौथे भाई श्रीयुक्त ब्रजमोहनजी उन दिनों कलकत्ते में थे। उनसे मिलने का अवसर मुझे अगले वर्ष काश्मीर में मिला। काश्मीर में उन्होंने काश्मीरी गीतों के लिये मुझे आर्थिक सहायता दी थी। चारों भाइयों का मानसिक विकास बड़ाही सुन्दर हुआ है। सब को स्वदेश और हिन्दू-जाति के कल्याण और शिक्षा-सदाचार की वृद्धि के लिये आन्तरिक अनुराग है। श्रीयुक्त जुगलकिशोरजी को हिन्दू-जाति की उन्नति के लिये गहरा प्रेम है। श्रीयुक्त घनश्यामदास जी को और श्रीयुत रामेश्वरदासजी को संगीत का भी शौक है। दोनों भाई सरोद अच्छा बजाना जानते भी हैं।

राजपूताने के लिये हमारा अनुमान था कि वहाँ मुझे अच्छे गीत नहीं मिलेंगे। पर वह ग़लत साबित हुआ और मारवाड़ ऐसे रूखे-सूखे प्रान्त में भी मुझे प्रेम और करुणरस के झरने प्रवाहित मिले। वहाँ भी ग्राम-कविता का विकास उसी उन्माद के साथ हुआ है, जैसा भारत के अन्य प्रान्तों में। वहाँ भी पाबूजी जैसे वीरों की कथाएँ देहात में उसी तरह प्रचलित हैं, जैसे युक्तप्रान्त में आल्हा। संयोग वियोग शृङ्गार की तो बात ही अलग है, इस विषय में तो कोई प्रान्त पिछड़ा हुआ नहीं है। वहाँ युक्तप्रांत के घाघ और भड्डरी की तरह राजिया, किसनिया,केलिया, ईंलिया, छोटिया, दानिया, नाथिया, पुसिया, राघजी, बीझरा, भेरिया, मोतिया और सगतिया आदि देहाती कवि हुये

हैं, जिन्होंने ग्रामीणों में नीति और सदाचार के भाव अबतक बना रक्खे हैं। मानों ये समाज के पहरेदार हैं।

राजपूताना तो कभी वीरों का प्रान्त था। इससे वीररस के भी गीत उधर खूब प्रचलित हैं। भीलों के गीत प्रायः वीररसपूर्ण हैं।

पिलानी में मैं कई दिन रहा। गीत संग्रह के काम की कुछ व्यवस्था हो जाने पर मैं वहाँ से पंजाब के लिए रवाना हो गया। और लाहौर, अमृतसर और लुधियाना होता हुआ मैं प्रयाग लौट आया।

इस लम्बी यात्रा से लौटकर मैंने युक्तप्रांत के गाँवों की यात्रा फिर शुरू की। यदि ओढ़ना-बिछौना ढोने की कोई असुविधा न हो, तो जाड़े के महीने यात्रा के लिए बड़े अच्छे होते हैं।

सन् १९२८ की मई में मैंने गीतों के लिए काश्मीर की यात्रा की। वहाँ मैं ढाई महीने के लगभग रहा। काश्मीर के गीत काश्मीर ही की तरह सुन्दर हैं। काश्मीर में स्व० लाला लाजपतराय ने मेरे गीत सुने थे और मेरे काम से बड़ी सहानुभूति प्रगट की थी। चमारिनों के गीत सुनकर उनके हृदय की आर्द्रता आँखों में उमड़ आई थी। अछूतों के लिये उनके हृदय में सचमुच बड़ा ही अनुराग था। उन्होंने एक पत्र लिखकर सब शिक्षितों और अशिक्षितों से मेरे काम में सहायक होने की अपील की थी।

काश्मीर से लौट कर मैं बीमार हो गया। फिर भी १९२८ की बरसात में मैंने गीत-यात्रा जारी रक्खी। सन् १९२६—२७—२८ में कुल मिलाकर लगभग ९ १० हज़ार मील की यात्रा मैंने पैदल और रेल से की। और गीत-संग्रह में सब प्रकार के ख़र्च मिलाकर कुल ३८—३९ सौ रुपये ख़र्च किये। समय, धन और स्वास्थ्य तीनों को अपनी शक्ति से अधिक ख़र्च करके मैंने पाया क्या? १०-१२ हज़ार गीत और ग्राम्य जीवन के अनमोल अनुभव।

ग्राम गीतों के संग्रह से देश या समाज को क्या लाभ पहुँचेगा?

यह एक प्रश्न है, जिसका उत्तर पाने के लिये बहुत से लोग लालायित होंगे।

सबसे पहला लाभ तो यह है कि हम एक कंठस्थ साहित्य को लिपिबद्ध करके उसे सुरक्षित कर लेंगे।

दूसरा लाभ इन गीतों के संग्रह से यह होगा कि हमको स्त्रियों के मस्तिष्क की महिमा देखने को मिलेगी। जिनको हमने मूर्ख समझ रखा है, उनके मस्तिष्क से ऐसे ऐसे कवित्वपूर्ण गीत निकले हैं कि उन पर हिन्दी के कितने ही कवियों की रचनायें निछावर की जा सकती हैं। सुप्रसिद्ध विद्वान् बाबू भगवानदास के शब्दों में 'उनमें रस की मात्रा व्यास, वाल्मीकि, कालिदास और भवभूति से भी तथा तुलसीदास, सूरदास से भी अधिक है।' क्या यह एक आश्चर्य की बात नहीं है? अतएव ऐसी आश्चर्य की वस्तु का संग्रह क्या आवश्यक नहीं है?

तीसरा लाभ इन गीतों से यह होगा कि हिन्दी की प्राचीन और नवीन कविता की शैली पर इनका प्रभाव पड़ेगा। गीतों की रचना प्राकृतिक शैली पर हुई है। उनमें कल्पित नहीं, बल्कि स्वाभाविक रस का विकास हुआ है। अतएव उसका प्रभाव भी शीघ्र और स्थायी होता है। मुझे आशा है, कि गीतों का अध्ययन करके हमारे वर्तमान कवि-गण अपनी शैली में परिवर्तन करेंगे।

चौथे, हम गीतों में वर्णित अपने देश के भिन्न-भिन्न रस्म-रिवाजों और रहन-सहन से जानकार हो जायँगे। इस जानकारी से देश के नेता, और समाज-सुधारक सभी लाभ उठा सकते हैं।

पाँचवें, गीतों-द्वारा हम जनता को यह बता सकेंगे कि पूर्वकाल में, जब के बने ये गीत हैं, बाल-विवाह की प्रथा नहीं प्रचलित थी। वर-कन्या अपनी पसंद के अनुसार जीवन-संगी चुनते थे। गीतों में सर्वत्र ऐसा वर्णन मिलता है। यद्यपि वर-कन्या को अब वैसे अधिकार प्राप्त नहीं हैं, पर गीतों में विवाह का प्राचीन आदर्श तो कायम है। यदि

ग्राम-गीतों-द्वारा हम यह बात अपने देश के माता-पिताओं के हृदय में उतार सके, तो गीतो से यह एक बहुत बड़ा लाभ समझा जायगा।

छठें, हम गीतों में वर्णित भाई-बहन के प्रेम की वृद्धि करेंगे। पति-पत्नी के प्रेम को अधिक मधुर, चिरस्थायी और सुखमय बनायेंगे। बहू के प्रति सास की कठोरता, तथा ननद-भौजाई और देवरानी-जेठानी के झगड़े कम करेंगे। कन्याओं में सती धर्म के प्रति शाश्वत श्रद्धा की नींव डालेंगे। बहू पर होनेवाले अत्याचारों की मात्रा कम करेंगे। पति-व्रत-धर्म की महिमा का प्रचार करके हम पति-पत्नी के जीवन को अधिक विश्वसनीय और आनन्दमय बनायेंगे। नीति के वचनों का प्रचार करके हम अपढ़ और अशिक्षित जनता की बुद्धि में स्फूर्ति उत्पन्न करेंगे। पिता-पुत्र में स्वाभाविक पवित्रता, युवकों में उच्चाभिलाषा और वृद्धों में संतोष की वृद्धि करेंगे। पुरुषों को एक नारीव्रत की शिक्षा देंगे।

सातवें, हम हिन्दी-साहित्य में नये-नये मुहावरों, कहावतों, पहेलियों और नवीन शब्दों की वृद्धि करेंगे।

इस गीतयात्रा में यह देखकर मुझे कितनी ही बार आंतरिक वेदना हुई है कि हमारे देशवासियों की ज्ञान-पिपासा शांतसी पड़ती जाती है। दूसरी जातियों के ज्ञान प्राप्त करने की प्रवृत्ति तो कहाँ? हम अपने पूर्वजों ही का अनुभूत ज्ञान छोड़ते जा रहे हैं। पता नहीं, इस पतन की सीमा कहाँ है?

अमेरिका के लोग रेड इंडियनों में प्रवेश करके उनकी एक-एक बात के जानने में लगे हैं। योरप के लोग अफ्रीका के मनुष्य-भक्षकों तक के बीच में पहुँचकर उनके रीति-रस्म की खोज में लगे हैं। मनुष्य ही के नहीं, युरोप-अमेरिका के विद्वान् पशु-पक्षी और कीट-पतङ्ग तक के रहन-सहन और स्वभाव की खोज करने में दिन-रात लगे रहते हैं। और हम? हम अपने ही देश-वासियों से अपरिचित हैं। गीत ही को लीजिये; अंग्रेज़ी में ग्राम-गीत-साहित्य पर सैकड़ों पुस्तकें हैं।

विभिन्न जातियों के रस्म-रिवाजों की जानकारी के लिये अंग्रेज़ विद्वानों ने अपना एक-एक जीवन लगा दिया है, और अपने देश-वासियों के कल्याण के लिये अपनी मातृ-भाषा का भाण्डार भरा है। यूरोप में ग्राम-गीतों के संग्रह के लिये कितनी ही सोसाइटियाँ हैं। वहाँ ग्राम-गीतों का जमा करना एक पेशा हो गया है, और गीत जमा करनेवालों की एक ज़ाति बन गई है। रूस ने अभी थोड़े ही दिन हुये, अपने देश के ग्राम-गीतों का एक-एक शब्द लिख लिया है। पर हम ? हम त्याग और वैराग्य का पाठ रट रहे हैं।

आटा पीसने वाली चक्की हमारे जाँत के गीतों को भी पीसती जा रही है। मदरसे किसानों, अहीरों, धोबियों और चमारों के गीतों को चुपचाप चाटते जा रहे हैं, कन्या-पाठशालायें नीरस, लक्ष्यहीन, प्रभाव-रहित, निर्जीव और हृदय को स्पर्शन करनेवाली तुकबन्दियों से कन्याओं को उनके मधुर, उपदेशप्रद और लय-विशिष्ट गीतों से दूर घसीटे जा रही हैं। और हम चुपचाप बैठे टुकुर-टुकुर ताक रहे हैं। स्व० लाला लाजपतराय ने श्रीनगर (काश्मीर) में गीतों की चर्चा छिड़ने पर एक गहरी आह के साथ यह वाक्य कहा था—We are losing every thing, यह अक्षरशः सत्य है। हमारी दशा उस ग़ाफिल मुसाफिर की सी है जो अंधा भी है और सो भी रहा है।

गीतों में जो कवित्व है, उसे ही मैं अपनी लेखनी-द्वारा प्रकट करने में समर्थ हुआ हूँ। पर ये गीत जब स्त्री कंठ से निकलते हैं, तब इनका सौन्दर्य, इनका माधुर्य और इनका उन्माद कुछ और ही हो जाता है। इससे गीतों का आधे से अधिक रस तो स्त्रियों के कंठ ही में रह गया है। खेद है, मैं उसे कलम की नोकद्वारा अपने पाठकों तक नहीं पहुँचा सका। यूरोप-अमेरिका में यह काम ग्रामोफोन के रिकार्डों से लिया जाता है। विधाता ने स्त्रियों के कंठ में जो मिठास रख दी है, जो लचक भर दी है, उसे मैं लोहे की लेखनी में कहाँ से ला सकता हूँ ?

जब गृह-देवियाँ एकत्र होकर पूरे उन्माद के साथ गीत गाती है, तब उन्हें सुनकर चराचर के प्राण तरङ्गित हो उठते हैं। आकाश चकितसा जात पड़ता है, प्रकृति कान लगाकर सुनती हुई-सी दिखाई पड़ती है। मैं एक अच्छे अनुभवी की हैसियत से अपने उन मित्रों से, जो कौवाली और टप्पे सुनने को बाहर मारे-मारे फिरते हैं, सानुरोध कहता हूँ कि लौटो, अपने अन्तःपुरों को लौटो। कस्तूरी-मृग की तरह सुगन्ध स्रोत तलाश में कहाँ फिर रहे हो? स्वर का सच्चा सुख तुम्हारे अन्त पुर में है। वहाँ की हृत्तन्त्री का तार जरा अपने मधुर वचनों से छू दो, फिर देखो, कैसा सुखमय जीवन जाग उठता है।

गीतों की मूल बोली या भाषा का पता लगाना बहुत कठिन ही नहीं, असंभव-सा है, क्योंकि गीत उत्पन्न होकर भाषा के प्रवाह में तैरते चलते हैं। मनुष्य के कंठ ही उनके घाट हैं। उपयुक्त कण्ठ पाकर कोई कहीं बसेरा ले लेता है, कोई कहीं। उन पर उनके आसपास का ऐसा प्रभाव पड़ जाता है कि उनका मूल रूप कायम नहीं रहता। इससे जहाँ वे गाये जाने लगते हैं, वहाँ के बहुत से शब्द, जो पर्यायवाची होते हैं, उनमें बैठ जाते हैं और उनके मूल शब्दों को स्थान-च्युत कर देते है। इससे कौन-सा गीत पहले-पहल कहाँ बना, इसका पता नहीं लगाया जा सकता। केवल इस बात का पता लग सकता है कि कौन-सा गीत कहाँ गाया जाता है।

स्त्रियों के गीतों में तो और भी गड़बड़ी रहती है। क्योंकि कन्यायें विवाहिता होकर जब दूसरे स्थानों को जाती हैं, तब अपनी असली बोली के गीत भी अपने साथ ले जाती है। उनकी ससुराल की बोली जुदा हुई, तो भी वे अपने गीतों में बहुत कम हेर-फेर करती हैं। एक तो शिक्षिता न होने के कारण हेर फेर कर नहीं सकतीं; दूसरे अपरिचित बोली के शब्दों की प्राकृतिक मिठास से वे परिचित भी नहीं होतीं इससे अपने परिचित शब्दों को बदलना वे पसंद भी नहीं करतीं और जहाँ वे जातीं हैं, वहाँ भी प्राय. उनके जाने हुए सब प्रसगों के गीत

वहाँ की बोली में मौजूद मिलते हैं, इससे हेर-फेर की जरूरत भी नहीं पड़ती। पर वे अपने लड़कपन के याद किये हुये गीतों को अधिक सरस समझती हैं और जब उनसे पूछा जाता है, तब उन्हीं गीतों को वे लिखाती तथा लिखकर भेजती भी हैं। यही कारण है कि कभी-कभी पश्चिमी जिलों से पूर्वी जिलों में गाये जाने वाले गीत मिल जाते हैं, और पूर्वी जिलों के गीत पश्चिमी जिलों में।

मैंने इस पुस्तक में जितने गीत दिये हैं, वे भिन्न-भिन्न जिलों के हैं। पर यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि वास्तव में वे उसी जिले के गीत हैं, या आसपास के दूसरे जिलों के, जहाँ से कन्यायें उन्हें ले गई हैं।

भाषा या बोलियों के अनुसार गीतों का विभाग करना भी बहुत मुश्किल है। किसी-किसी जिले में एक से अधिक बोलियाँ बोली जाती हैं। जैसे जौनपुर के पश्चिमी हिस्से में अवधी और पूर्वी हिस्से में भोजपुरी का मिश्रण मिलता है। अवधी और ब्रजभाषा के सरहदी जिलों में भी बोलियों का मिश्रण मिलता है। यही कारण है कि एक-एक गीत में दो-दो तीन-तीन बोलियों के शब्द पाये जाते हैं।

मैंने सन् १९२५ से १९३० तक लगातार देशभर में घूम-फिर कर, मासिक पत्रों में लेख लिखकर तथा डाक-द्वारा पत्र भेजकर लगभग १५ हज़ार ग्राम-गीतों का संग्रह किया था। सन् १९२९ में मैंने उनमें से कुछ ग्रामगीत पुस्तकाकार प्रकाशित भी किये थे। इस पुस्तक में जो गीत दिये गये हैं, वे सब उसी संग्रह से लिये गये हैं। मैं अपने संग्रह को समुद्र की एक बूँद के बराबर भी नहीं मानता हूँ। यद्यपि १९३० के बाद भी मेरा प्रयत्न अबतक जारी है, पर इसका कार्य-क्षेत्र ऐसा असीम दिखाई पड़ा और सहायक इतने कम मिले कि अब मेरे उत्साह में शिथिलता आ गई है। संग्रह का काम किसी एक व्यक्ति के बूते का नहीं है, बल्कि गवर्नमेंट या अच्छी शक्तिशालिनी किसी संस्था के करने का है।

सभी ग्राम-गीत संग्रहणीय नहीं होते। उनमें कूड़ा-कचरा भी बहुत है। अच्छे पारखी ही उनमें से रत्नों को ढूँढ निकाल सकते हैं। अतएव योग्य व्यक्तियों ही को इस कार्य में लगना चाहिये।

जो गीत और कहावतें मैंने इस पुस्तक मे दी हैं, उनसे कहीं अधिक सरस और उपयोगी गीत और कहावतें अभी ग्रामीणों के कंठों में हैं। वहाँ से निकालकर उन्हें पुस्तकाकार प्रकाशित कर देना बहुत ज़रूरी है।

योरप और अमेरिका में ग्राम-साहित्य के संग्रह का कार्य बहुत ज़ोरो पर हुआ है। वहाँ गीतो के रेकार्ड तैयार किये गये और नृत्यों के फ़िल्म। इस देश में भी ऐसा ही उद्योग करने की शीघ्र ज़रूरत है। क्योंकि जितने वृद्ध स्त्री-पुरुष रोज़ मर रहे हैं, उनमे से हरएक ग्राम-साहित्य की सम्पत्ति को कम ही करता जा रहा है।

ग्राम-साहित्य के संग्रह में कठिनाइयाँ बहुत हैं। सबसे बड़ी कठिनाई धैर्य सँभालने की है। क्योंकि गाँव के लोग बोलकर लिखा नहीं सकते। इसका उन्हें अभ्यास ही नहीं होता। वे जब गाने की तरंग में आते है और गाने लगते हैं, तभी सुन-सुनकर गीत लिखे जा सकते हैं। वे जानते ही नहीं कि कहावतें और मुहावरे क्या चीज़ हैं। जब वे आपस में बातचीत करने लगते हैं, तब उनके मुँह से वाक्य-वाक्य में कहावतों और मुहावरों का ताँता लग जाता है। सावधान संग्रह-कर्त्ता सुन-सुनकर उन्हें लिख ले सकता है।

परदे की प्रथा के कारण स्त्रियों के गीत मिलने में और भी कठिनाई है। इसके लिये मेले-ठेले में उनके झुण्ड के साथ कागज़-पेंसिल लेकर चलना पड़ेगा। धान का खेत निराते समय मेड़ पर, छत कूटते समय छत पर और चक्की पीसने के समय रात के आख़िरी पहर में गृहस्थ के घर के पिछवाड़े, बैठना पड़ेगा। नीची श्रेणी के लोगों के शादी-ब्याह में सम्मिलित होना, जाड़े की रात में अलाव के पास बुड्ढों के साथ बैठकर बातें करना और जाड़े की आधीरात से चलने

वाले ईख के कोल्हू के निकट बैठकर, थर-थर काँपते हुये, गीत लिखना पड़ेगा। कठिन तपस्या है। मैंने अनुभव करके देख लिया है।

कितने ही गीत अधूरे मिलते हैं, जिन्हे कई गाँवों में सुन-सुनकर पूरा करना पड़ेगा। ग्राम-गाथाओं को महीनों बैठकर सुनना पड़ेगा। किसानों और मज़दूर पेशेवालों की फ़ुरसत का भी सवाल है, जो पैसे से हल होगा।

इस काम में, जबतक देश के विद्वान् और सुशिक्षित युवक अपनी आत्म-प्रेरणा से न प्रवृत्त हों, तबतक लाखों रुपये का खर्च है, और कोई गवर्नमेंट ही इसे करा सकती है। जहां ग्राम-सुधार के लिये सरकार हर साल लाखों रुपये खर्च कर रही है, वहाँ प्रति वर्ष वह बीस-पचीस हज़ार रुपये भी इस काम में ख़र्च करे, तो मेरा अनुमान है कि तीन-चार वर्ष के लगातार परिश्रम से एक प्रांत का पूरा कंठस्थ साहित्य लिपि-बद्ध हो जायगा।

इस पुस्तक में प्रकाशित गीतों और प्रायः सब कहावतों में उनके ज़िले के नाम नहीं दिये गये हैं। इसका कारण यह है कि मुझे स्वयं उनके ज़िले मालूम नहीं हैं। उनमें से कुछ तो कई जिलों में बिना किसी पाठान्तर के प्रचलित हैं।

यदि सूबों की सरकारें ग्राम-साहित्य के संग्रह का काम उठा लेती हैं तो मेरा विश्वास है कि वे इसके द्वारा साहित्य ही को नहीं, देश के अन्य विषयों को भी बहुत लाभ पहुँचायेंगी। और ग्राम-सुधार का काम तो ग्राम-साहित्य के अच्छे अध्ययन के बिना कभी सफल हो ही नहीं सकता, यह मेरा दृढ़ विश्वास है।

मुझे हार्दिक हर्ष है कि इस नये रास्ते पर चलने वाला मैं पहला व्यक्ति हूँ, जिसने एक मंज़िल ख़तम कर ली है। मेरा काम गीतों की उपयोगिता प्रकट करके, उनके संग्रह के लिये जनता में सुरुचि और प्रयत्न जाग्रत करने का था। अपनी समझ में मैंने उसे पूरा कर लिया।

अब रास्ता खुल गया है। उसकी सब मंज़िलें चलकर पूरी करने वाले लोग आगे आयेंगे। मैंने जो कुछ किया, वह हिन्दी-संसार के सम्मुख है। वह चाहे भला हुआ हो, या बुरा, सब हिन्दी-संसार को समर्पित है। गीत उसी के रत्न हैं, जो उसी के चारों ओर बिखरे पड़े हैं। उनका कोई क़द्रदान नहीं था। मैंने उनमें से थोड़े रत्नों को उठाकर आगे रक्खा है और बताया है कि ये रत्न हैं, इनकी रक्षा होनी चाहिये। मैं इतना ही कर सकता भी था।

ये रत्न मुझे बहुत ही प्यारे हैं। क्योंकि इनको मैंने अपना बहुमूल्य स्वास्थ्य, जिसका मूल्य रुपयों से नहीं आँका जा सकता, व्यय करके प्राप्त किया है। यह वह पौधा है, जिसे मैंने अपने स्वास्थ्य से सींचा है। ईश्वर करे, यह बढ़े, और फूले-फले। इसकी छाया में, संसार के घोर दुःखों से दग्ध जन कुछ देर विश्राम लेकर शीतल, स्वस्थ और सुखी हों।

इस कार्य में मुझे बहुत से मित्रों और बहनों ने सहायता पहुँचाई है। सचमुच यदि उनकी सहायता मुझे न मिली होती, तो मैं गीतों का अगाध, और अपार सागर एक छोटी सी नौका पर चढ़कर नहीं तर सकता था। सब के नामों की सूची बड़ी लम्बी है। कुछ मित्रों ने पत्र-द्वारा अपनी सम्मतियाँ भेजकर मेरे हृदय को बल प्रदान किया है। जब कितने ही शिक्षित कहे जाने वाले लोग मेरी हँसी उड़ाते थे, मेरे उद्योग को पागलपन बतलाते थे, कितने ही लोग कहते थे कि मैं धन के लोभ से इस कार्य में प्रवृत्त हुआ हूँ, तब ये ही पत्र मुझे मार्ग से विचलित नहीं होने देते थे और मेरे धैर्य को क़ायम रखते थे। अतएव इन पत्रों का महत्व मैं कम नहीं समझता हूँ। मैं इन सब का हृदय से कृतज्ञ हूँ और अपने पाठकों से निवेदन करता हूँ कि यदि वे मेरे काम से सन्तुष्ट हों, तो वे भी मेरे सहायकों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करें।

बसन्त-निवास, सुलतानपुर
गाधी-जयंती, ता० २-१०-२०

रामनरेश त्रिपाठी

ग्राम-साहित्य की रूप-रेखा

प्राचीन भारतवर्ष क्या था ? और उसके निवासियों का सच्चा स्वरूप क्या है ? यह अगर जानना और समझना हो, तो हमें ग्राम-साहित्य का अच्छा अध्ययन करना चाहिये ।

जब हम किसी चमार के घर में 'सोने की थरिया में जेंवना परोस्यों' या 'खोलौ न चन्दन केवड़िया' वाला गीत गाया जाता हुआ सुनते हैं, तब हमें मानना पड़ता है कि किसी समय चमार के घर में भी सोने की थाली और चन्दन के किवाड़ रहे होंगे और न रहे होंगे तो भी उसके दिमाग तक तो वे पहुँच ही गये थे।

या जब चमारिन युवती गाती है—

जो हम होई सतवन्ती होई ना ।
मोरे अँचरा भभकि उठै अगिया हो ना ॥

तब भारतीय नारी के सती-धर्म की एक मनोहर मूर्ति हमारे ध्यान में उतर आती है, जिस पर किसी समय हमारे देश की चमारिन भी गर्व करती थी । आज तो उसके घर में काँसे की फूटी थाली भी मुश्किल से मिलेगी और उसके फूस के झोपड़े में केवाड़ों की ज़रूरत ही नहीं है, तथा गरीबी के कारण उसका चरित्र-बल भी क्षीण हो चला है । पर उसने अपने सुख के दिनों की मधुर स्मृति अभी तक अपने गीतों में पिरो रक्खी है, जिसकी खिड़कियों से हम प्राचीन भारतवर्ष के वैभव और विलास को झाँककर देख सकते हैं । इस-लिये पहले-पहल हमें उसी के द्वार से गाँव में प्रवेश करना चाहिये । तभी हम गाँव के स्वरूप को ठीक-ठीक पहचान सकेंगे और उसकी उन्नति में सहायक हो सकेंगे ।

ग्राम-साहित्य को हम नीचे लिखे वर्गों में बाँट सकते हैं :—

१—संस्कारों के गीत।
२—व्रतों और त्योहारों के गीत।
३—ग्राम-गाथायें।
४—ग्राम-कथायें।
५—मन्दिरों में गाये जाने वाले पद।
६—राह के गीत।
७—खेत के गीत।
८—भिखमंगों के गीत।
९—भिन्न-भिन्न जातियों के गीत।
१०—कोल्हू के गीत।
११—चक्की के गीत।
१२—ऋतुओं के गीत।
१३—बच्चों के गीत, खेल और कहानियाँ।
१४—गाँव में मनोरञ्जन के साधन—मेले और तमाशे।
१५—गाँव के खेल।
१६—गुड़ियों के गीत।
१७—ग्राम-संगीत (नाच और गीत)।
१८—नाच और उसके तरीके।
१९—बाजे और उनके उपयोग।
२०—नीति की कहावतें।
२१—स्वास्थ्य की कहावतें।
२२—खेती की कहावतें।
२३—तुस्खेवल और ढकोसले।
२४—बारह मासे।
२५—नये-नये शब्द और मुहावरे।
२६—मनुष्य और पशु के रोगों के नुस्खे।

२७—पेशेवरों के शब्द।

२८—जड़ी बूटियों की पहचान और उनके उपयोग।

गाँव का स्वरूप

असली हिन्दुस्तान शहरों में नहीं, गाँवों में है। शहरों में अरब और योरप घुस आये हैं, पर गाँव की मूल संस्कृति और प्रकृति अभीतक उसी हालत में है, जिस हालत में वह चन्द्रगुप्त और अशोक के ज़माने में रही होगी। अन्तर पड़ा है तो केवल धन का। पहले जैसा धन अब गाँवों में नहीं है, बल्कि घोर निर्धनता है। पर निर्धनता का उसकी नींव पर अभीतक बहुत ही कम प्रभाव पड़ा है।

गाँव को गाँव की दृष्टि से देखिये, तभी वह सुन्दर मालूम होगा। गाँव को अन्दर से देखिये, तभी उसकी सम्पूर्णता समझ में आयेगी। अभी जो हम गाँव वालों को असभ्य, गंदे और अस्त-व्यस्त-सा पाते हैं, उस का पहला कारण तो उनकी असह्य ग़रीबी है, और दूसरा यह कि हम उन्हें योरप की आँखों से देखते हैं, इसीसे उनमें असंख्य त्रुटियाँ दिखाई पड़ती हैं। हम में उनकी त्रुटियाँ ही देखने का अभ्यास भी डाला गया है। उनकी त्रुटियाँ ही त्रुटियाँ हमें बताई भी जाती हैं और हम उन्हें अपनी प्रखर प्रतिभा से बढ़ाते भी रहते हैं, इससे उनसे हमें घृणा होती जाती है।

गरीबी किसी तरह हट जाय तो गाँव वालों में अनेक ऐसे सद्‌गुण चमक उठेंगे, जो संसार के किसी भी सभ्य-समाज के लिये आदर्श माने जायँगे और जो पैतृक-सम्पत्ति की तरह हजारों पीढ़ियों से उनके पास हैं।

गाँव की प्राचीन व्यवस्था का अच्छी तरह अध्ययन किया जायगा तो वह एक आदर्श व्यवस्था साबित होगी। किसी ज़माने में गाँव में शिक्षा, न्याय, सहयोगिता, स्वास्थ्य, चरित्र-निर्माण और गृह-

प्रबन्ध आदि की स्वतन्त्र और उत्तम व्यवस्था थी। इन सब को मिलाकर वह सम्पूर्ण था और उसे बाहरी सहायता की बहुत ही कम आवश्यकता थी। विदेशी सभ्यताओं ने उसके रूप को छिन्न-भिन्न कर दिया है। इसीसे हम उसके असली रूप को, जो अब उसके टुकड़ों में वर्तमान है, नहीं देख पाते हैं और वह हमें अप्रिय-सा लग रहा है।

शिक्षा

सबसे पहले शिक्षा को लीजिये :—

यह कहा जाता है कि गाँव वालों में शिक्षा का अभाव होता है, यह सर्वांश में सत्य नहीं है। यह हम मानते हैं कि उनको अक्षर-ज्ञान नहीं होता, और इसीसे आँख-द्वारा मिलने वाली शिक्षा से वे वंचित होते हैं। पर कान-द्वारा मिलने वाले ज्ञान से वे रहित नहीं होते। वे ऐसे पूर्वजों के प्रतिनिधि हैं, जिन्होंने किसी दिन सारी पृथ्वी पर अपनी सभ्यता का प्रसार किया था और अपने ज्ञान के आलोक से मनुष्य-जीवन को चमत्कृत कर दिया था। इससे सभ्य-समाज में प्रचलित अनेक सद्गुण उनको परम्परा से प्राप्त हैं, जो उनके साथ रहकर व्यवहार करने पर प्रकट होते हैं।

यह सच है कि वे हाईस्कूल और यूनिवर्सिटी तक नहीं पहुँच पाते, पर कान से सुनकर मनुष्यता के जो लक्षण वे जान लेते हैं और जिन्हें वे व्यवहार में भी लाते हैं, उनसे क्या उनको शिक्षित नहीं माना जा सकता?

हमें उनकी सच्ची हालत की अच्छी तरह जानकारी प्राप्त करके ही उनके विषय में कोई बात बोलनी चाहिये।

मौखिक विश्वविद्यालय

गाँव का सारा समाज एक अद्भुत विश्वविद्यालय-जैसा है। जिसमें चमार से लेकर ब्राह्मण तक एक दूसरे को ज्ञान-दान करते रहते

हैं और सभी गुरु और सभी शिष्य हैं। ज्ञान में वहाँ छूत नहीं है। चमार के मुख से गाये हुये भजनों से वहाँ ब्राह्मण पण्डित वैसा ही आनन्द अनुभव करते हैं, जैसा वे वाल्मीकि, व्यास और कालिदास के काव्यों से। और यह मौखिक विश्वविद्यालय हजारों वर्षों से, बिना किसी वाइस चाँसलर की देख-रेख और बिना एक पैसे के खर्च के चल रहा है।

गाँव के मौखिक विश्वविद्यालय में बचपन से लेकर मृत्यु की अन्तिम सीढ़ी तक शिक्षा के अलग अलग कोर्स हैं और हरएक को उसकी आयु के अनुसार आप से आप शिक्षा मिलती रहती है। वहाँ जो शिक्षा वृद्धावस्था के लिये उपयोगी है उसका भार बचपन ही में नहीं लाद दिया जाता।

कथा-प्रणाली

गाँव में बहुत प्राचीनकाल से कथा कहने की प्रणाली प्रचलित है और इससे समाज को बहुत लाभ पहुँचा है।

बड़े-बड़े गाँवों में प्रायः प्रत्येक वर्ष कोई न कोई कथा-वाचक आते रहते हैं और गाँववालों की रुचि के अनुसार रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत या दूसरे किसी पुराण की कथा कहते हैं। गाँव के स्त्री-पुरुष बड़ी श्रद्धा से कथा सुनते हैं और अपनी शक्ति और श्रद्धा के अनुसार कथा की समाप्ति पर कथा-वाचक को पैसा, रुपया, वस्त्र और अन्न आदि देकर संतुष्ट करते हैं। कथा-वाचक लोग मूल कथाओं के साथ और भी किस्से-कहानियाँ, और सामयिक घटनाओं की बातें कहते रहते हैं, तथा बुराइयों की कड़ी आलोचना भी करते हैं, इससे गाँव के स्त्री-पुरुषों को अपने गुणों और दोषों की जानकारी होती रहती है और वे कथा-वाचक के थोड़े परिश्रम से, थोड़े समय में इतना अधिक ज्ञान पा जाते हैं, जितना शायद वे गाँव की पाठशाला या स्कूल से न पाते।

पुरानी और नवीन शिक्षा-प्रणाली में एक मौलिक अन्तर है। पुरानी शिक्षा-प्रणाली का माध्यम कान है, और नई का आँख। पहले लोग सुनकर अधिक सीखते थे और अब पढ़कर। दोनों में श्रेष्ठ कौन है? यह प्रश्न विचारणीय है। वेद का नाम श्रुति इसलिए है कि वह सुना जाता है। 'स्मृति' को स्मरण रखना पड़ता है, क्योंकि वह क़ानून का संग्रह है।

गाँव में कथावाली प्रणाली बहुत लाभदायक सिद्ध हुई है। इससे अपढ़ लोग भी हिन्दू-सभ्यता के मूल सिद्धान्तों से अवगत होते रहते हैं और अपने चरित्र में उनका प्रभाव भी पड़ने देते रहते हैं।

शिक्षा का आरम्भ

गाँवों में शिक्षा का आरम्भ माँ की गोद से ही हो जाता है। पहले बच्चे को बोलचाल के कुछ शब्द रटाये जाते हैं, फिर कुटुम्बियों के उपनाम जैसे, बाबा, दादा, चाचा, काका, भाई और बहन आदि तथा घर की चीजों के नाम बताये जाते हैं।

जब बच्चा घर के बाहर निकलने लगता है और वह कुत्ते, बिल्ली, गौरैया, गाय, भैंस, बैल, बछड़ा गीदड़ आदि जानवरों और गृहस्थ से संबंध रखनेवाले नाई, धोबी, ग्वाला, कुम्हार, माली, पुरोहित, कहार आदि पेशेवरों से परिचित हो जाता है, तब उसे उनसे संबंध रखनेवाली कहानियाँ, गद्य और पद्य दोनों में, सुनाई जाती हैं, जिनसे उसे वस्तु-ज्ञान कराया जाता है, तथा शब्दों के प्रयोग की विधि और व्यवहार-कुशलता सिखाई जाती है।

बच्चों की शिक्षा का जो स्वरूप गाँवों में प्रचलित है, वह उनके लिए बहुत ही उपयोगी है, और विश्लेषण करने पर वह विज्ञान-सम्मत भी साबित होगा।

गीत, खेल और कहानियाँ

बच्चों को लोरियों, खेलों और कहानियों-द्वारा शिक्षा दी जाती है। माँ मधुर स्वर से गा-गाकर बच्चे को जगाती और सुलाती है।

बच्चे लोरियाँ सुनते-सुनते सोना पसन्द करते हैं। जिन्होंने शुरू-शुरू में लोरियों की प्रथा चलाई, उनको जरूर मालूम था कि किस तरह कान-द्वारा बच्चे के दिमाग पर नींद का जादू फेरा जा सकता है।

बच्चा जब जाग उठता है, और उसे बहलाने की जरूरत होती है, तब उसका बड़ा भाई, बहन, पिता, चाचा या घर का और कोई वयस्क व्यक्ति उसे गोद में उठा लेता है और घर में या बाहर किसी खाट पर चित लेटकर, अपने दोनों घुटनों को बराबर मोड़कर, टाँगों पर उसे बैठा लेता है और यह गीत गाता है :—

खंता मंता लेई थै; एक कौड़िया पाई थै, गंगा में बहाई थै, गंगा माई बालू दिहिन; ऊ बालू हम भुजवा क दीन, भुजवा हम्मैं लाई दिहेस; ऊ लाई घसिकरवै दीन, घसिकरवा हम्मैं घास दिहेस; ऊ घसिया हम गैया क दीन, गैया हम्मैं दूध दिहेसि, वहि दुधवा का खीर पका यउँ, खिरिया गै जुड़ाइ, भैया गै कोहाँइ, बहिनी गै मनावै; चला भैया खाइ ला; भैया मारेन दुइ लात।

बीच से इसका एक पाठान्तर यह भी मिलता है :—

ऊ लावा हम कोहँरा क दीन, कोहँरा हम्मै हाँड़ी दिहेस; वहि हँड़िया में खीर पकाये—

बाकी सब पहले जैसा।

एक पाठान्तर यह भी है :—

ऊ लीवा हम मलिया क दीन; मलिया हम्मैं फूल दिहेस, ऊ फुलवा हम राजा क दीन; राजा हम्मैं घोड़ा दिहेन, ऊ घोड़वा हम भैया क दीन; घोड़ा चढ़ि के भैया गयेन, बहिनी क मनावैं; बहिनी आइ हँसइ लागि; हँसी देखै चिरई आइ। चिरई दिहेसि दाना। उ दनवा घसिकरवा क दीन; घसिकरवा दिहेस घास। ऊ घसिया हम गइया क दीन, गैया दिहेसि दूध। ओहि दुधवा क खीर पकाये—

शेष पहले जैसा।

गीत के अंत में खेलानेवाला 'पु-लु-लु-लु' कहकर टाँगों को इतना ऊपर उठा लेता है कि बच्चा खेलानेवाले की छाती पर सरक आता है और उसका मुँह खेलानेवाले के मुँह के पास आ जाता है, जिसे वह चूम लेता है।

गीत पर गौर करके देखिये तो मालूम होगा कि इस गीत-द्वारा बच्चे को घर के आसपास की कितनी वस्तुओं का ज्ञान करा दिया जाता है। कौड़ी, गङ्गा, बालू, भड़भूँजा, लाई, घसियारा, घास, गाय, दूध, खीर, कुम्हार, हाँड़ी, फूल, माली, राजा, घोड़ा, बहन, हँसी, चिड़िया, दाना आदि कितने ही शब्द, नये-नये वाक्य और क्रियायें, कुम्हार, माली आदि पेशेवर और उनके काम बच्चे को बता दिये जाते हैं। अंत में भाई के हृदय में बहन के लिये प्रेम उत्पन्न करने का बीज बो दिया जाता है। 'भैया मारेन दुइ लात' सुनकर भैया पैर चलाये बिना रह नहीं सकते। फिर टाँगें ऊँची करने पर बच्चा जब छाती पर सरक आता है और उसका मुँह चूम लिया जाता है, तब वह भीतर ही भीतर कितना आनन्द अनुभव करता होगा, यह कल्पनातीत है।

रात में जब चाँद दिखाई पड़ता है, माँ या बहन चाँद की ओर हाथ उठाकर बच्चे को दिखलाती है और गाती है :—

चंदामामा धाइ आवा, धुपाइ आवा,
टाटी च्योंड़ा देत आवा,
घी का लोंदा लेत आवा,
भैया के मुँह में डारि द, घुट्टक से।

'घुट्टक से' बच्चा दूध पीता है। गीत सुनकर उसे दूध पीने की याद आती है। टाटी-च्योड़ा क्या है और क्यों दिया जाता है, इससे उसमें जिज्ञासा करने की प्रवृत्ति जगाई जाती है।

चार-पाँच बरस का होने पर लड़का टोले महल्ले के लड़कों के साथ

खेलने निकलता है। उसके लिये छोटे-छोटे खेल हैं, जो घर के अन्दर खेले जाते हैं। एक खेल यह है :—

किसी दालान में पाँच लड़के जमा कर लिये जाते हैं। चार लड़के अपने-अपने हाथों की मूठियाँ बाँधकर एक के ऊपर एक रखते हैं। पाँचवाँ लड़का नीचे लिखे गीत गाकर अपने हाथ की पहली उँगली से एक-एक मूठी को मारकर हटा देता है :—

आत तोरौं पात तोरौं तोरौं बन का खाम्हा।
हथिया पर घुनघुनवा बाजे चमकि उठे सब राजा॥
राजा क रजाई फाटै भैया क दुपट्टा।
हींचि हींचि मारै मुसरी क बच्चा।

गीत का कुछ अर्थ नहीं है। खेल के शुरू में इसे मङ्गलाचरण समझिये। जिसकी मूठी पर गीत का अन्तिम शब्द गिरता है, वह 'चोर' घोषित कर दिया जाता है और उसे वहीं छोड़कर तत्काल चारों लड़के भाग-भागकर दालान के चारों कोनो पर खड़े हो जाते हैं। 'चोर' उनको छूने दौड़ता है। 'चोर' जिसके पास पहुँचता है, वह झट से बैठ जाता है। जो खड़ा रह जाता है और 'चोर' से छुवा जाता है, वह 'चोर' होकर उसी तरह दौड़-दौड़कर दूसरों को छूने लगता है, और पहले वाला 'चोर' उसकी जगह पर खड़े होने और बैठने लगता है।

यह खेल बिना दाम-कौड़ी का है। एक दालान में, घर के अन्दर खेला जाता है। इससे बच्चों को राह के ख़तरे का और भूल-भटक जाने का भी भय नहीं रहता।

घर के अन्दर के खेल ६–७ बरस की उम्र तक के लड़कों के लिये बने हुए हैं। इसके बाद कुछ बड़े खेल, जिनमें ज़्यादा लड़के शामिल होते हैं, खेलने को मिलते हैं।

क्वार और कातिक के महीने में जब खेत अगली फ़सल के लिये जोत

दिए जाते हैं, तब लड़के और नौजवान भी खेत का खेल प्राय. रात में खेलते हैं, जिनसे सारे खेत के ढेले भी फूट जाते हैं।

जाड़े और गरमी में वे कबड्डी खेलते हैं। पेड़ पर चढ़ने और पानी मे तैरने के खेल भी वे खेलते रहते हैं, जिनसे पेड़ पर चढ़ना और पानी में तैरना उन्हें बिना कुछ खर्च के आ जाता है। बरसात में अखाड़ों में कुश्ती लड़ने और लम्बी कूद का खेल होता है। इस तरह लड़कों की बौद्धिक और शारीरिक शिक्षा साथ-साथ चलती है।

मानसिक शिक्षा के लिये कहानियाँ कही जाती हैं।

गाँव की कहानियों और स्कूली रीडरों की कहानियों में मौलिक अन्तर होता है। रीडरों की कहानियाँ ज्यादातर योरप से आई हैं। उनमें दिमागी कतर-ब्योंत ही अधिक होती है, भारत के सात्विक जीवन को पौष्टिक आहार देने वाले तत्व कम। किसी में लोमड़ी ने चालाकी से कौवे का टुकड़ा कैसे छीन लिया की चालाकी बतलाई गई होती है और किसी में भेड़िये और मगर को धोखा देने वाली बात होती है। निश्चय ही बच्चे का दिमाग विलायती कहानियों के प्रभाव से धोखा, चतुराई और धूर्तता के साँचे में ढल जाता होगा। दिमाग़ और शरीर को उत्तेजना देनेवाली और अङ्ग-संचालन की ज्यादा क्रियायें करानेवाली कहानियाँ योरप के ठण्डे मुल्कों के लिये तो लाभदायक हो सकती हैं, पर हिन्दुस्तान-जैसे गरम मुल्क के लिये हृदय में शांति, सुख और सात्विक रस उत्पन्न करने वाली कहानियाँ ही अनुकूल पड़ेंगी। कहानियों का संबंध केवल बुद्धि या मन ही से नहीं होता, शरीर के स्वास्थ्य से भी होता है। पूर्व और पश्चिम की कहानियों में जो मौलिक अन्तर है, उसी से मालूम होता है कि दोनों ओर की कहानियों की रचनाओं पर जलवायु की सरदी और गरमी का असर पड़ा हुआ है। अतएव बच्चों के लिये उनके असली मुल्क की कहानियाँ ही स्वास्थ्यकर हो सकती हैं।

गाँव की पुरानी कहानियों की प्रकृति ही दूसरी होती है। जैसे—एक राजा था, उसके सात बेटे थे। राजा ने कहा—जो बेटा फलाँ टापू मे फलाँ फल ला देगा, उसे वह आधा राज-पाट दे देगा। सातों बेटे अलग-अलग राहों से जाते हैं। रास्ते के अनेक कष्ट भोगते हैं। अन्त में सबसे छोटा बेटा ही सफल होकर लौटता है। राजा उसे आधा राज दे देता है। बेटा उसे बड़े भाई को सौंप देता है।

ऐसी कहानियो से बच्चो में साहस के काम करने का हौसला तो बढ़ता ही है; रास्ते के कष्टों का और उनसे छुटकारा पाने का ज्ञान भी उनको हो जाता है और आधा राज पाकर उसे बड़े भाई को सौंप देने का महत्त्वपूर्ण त्याग भी उनको हृदयंगम करा दिया जाता है।

सबसे बड़ी विचित्रता गाँव की कहानियों में यह होती है कि उनमें प्राय' सबमे सबसे छोटे भाई ही को जिताया जाता है। क्योंकि वे छोटे बच्चे के लिये ही होती हैं, जिसे उत्साहित करना ज़रूरी होता है। कभी बड़ा भाई भी छोटा था, तब वही कहानी उसके लिये थी।

कुछ कहानियाँ गद्य में होती हैं, कुछ पद्य में, और कुछ गद्य-पद्य दोनों में। गद्य और पद्य दोनों की कहानियों की भाषा बोल-चाल की, सरल, सुबोध और छोटे-छोटे वाक्यों वाली होती है, जिससे बच्चे के नन्हे-नन्हे फेफड़ों पर ज्यादा बोझ नहीं पड़ता।

नौजवानों का साहित्य

नौजवानों के लिये जवानी के उमंग को बढ़ाने वाले प्रेम और शृङ्गार-रस के गीत, पूर्वजों के सच्चे अनुभवों को बताने वाली नीति की कहावतें, स्वास्थ्य के लिये चुटकुले और धनोपार्जन के लिये खेती की कहावतें आदि ज्ञान-वर्द्धक पाठ उनके कंठ मे मौजूद होते हैं।

अधेड़ों और वृद्धों का साहित्य

अधेड़ों और वृद्धों के लिये जीवन मे शांति का सुख भरने वाले भजन हैं, जिन्हे वे मन्दिरों मे बैठकर, तीर्थ-यात्रा में या सुबह शाम

अपनी बैठक में, गाते रहते हैं। जो नहीं गा सकते, या जिनको गाने का अवकाश नहीं मिलता, उन्हें सरवन, गोपीचन्द भरथरी आदि गाने वाले भिखमंगे, शिव-पार्वती का विवाह गाने वाले जोगी, संतों के भजन गाने वाले रैदास भगत, संसार की असारता के पद गानेवाले मँगते साधू और फक़ीर घूम-घूम कर गाते और सुनाते रहते हैं। शिक्षा-प्रचार का काम प्रातःकाल के चार बजे से, जब से मंदिरों में ठाकुरजी जागते हैं, और मसजिदों में अज़ान दी जाती है, रात के दस बजे तक, सोने के समय तक, बराबर जारी रहता है।

जब राह में डोली उठाये हुये कहार गाते हुये चलते हैं:—

धै देत्यो राम हमारे मन धिरजा।
सब की महलिया रामा दिअना बरतु हैं,
हरि लेत्यो हमरो अँधेर। हमारे मन धिरजा० ॥

तब क्या हजारों राही-बटोही, खेत में काम करने वाले किसान और गाँव के अन्य निवासी उनके गीतों से प्रभावित नहीं होते होंगे?

जातीय गीत

गाँव की प्रत्येक जाति ने, यहाँ तक कि जंगल में बसने वाले मुसहर तक ने, अपने जातीय गीत अलग बना रक्खे हैं। उनके गीतों में उनके सामाजिक जीवन के लिये प्रोग्राम होता है। उनके गाने के स्वर और बाजे भी अलग होते हैं।

जातीय नाच

केवट, मल्लाह, मुसहर, अहीर, चमार, धोबी, पासी, नाई, भड़भूजा गड़रिया, कहार, कुम्हार और हेला (भङ्गी) लोग अपने जातीय उत्सवों में खुद नाचते और गाते हैं। सबके नाच और गाने के तरीक़े तथा बाजे जुदा-जुदा होते हैं। कुछ लोग तो सूप ही बजाकर गाते और नाचते हैं।

प्राचीन काल में शिवजी नाचते थे, श्रीकृष्ण नाचते थे, अर्जुन नृत्य

के गुरु बने थे, उनकी नृत्य-कला अब चाहे विकृत रूप में क्यों न हो, अभीतक गांवों में सुरक्षित है। कुछ दिनों से पश्चिमी शिक्षा के प्रभाव से हमारे शिक्षित-वर्ग में भी नृत्य कला के लिये अनुराग उत्पन्न हुआ है सही, पर अच्छी तरह विश्लेषण किया जायगा तो भारतीय नृत्य-कला, जो गाँव की विभिन्न जातियों में बिखरी हुई मिलती है, पश्चिमी नृत्य-कला से बहुत बातों में विशेष कला-पूर्ण साबित होगी।

अहीरों का नाच नाच देना शायद योरप और अमेरीका दोनों के लिये मुश्किल होगा। उनकी 'फरी' देखकर सरकस वाले भी दंग हो जायंगे।

नृत्य के गीतों की शब्द-योजना इस ढङ्ग की होती है कि जब वे अपने स्वर में गाये जाते हैं, तब सुनने वालों के अंग फड़कने लगते हैं। जैसे:—

चितै दे मेरी ओर, करक मिट जाय रे।
हम चितवत तुम चितवत नाहीं,
तोरी चितवन में मन लागो हमार।
करक मिट जाय रे॥ इत्यादि

1854

नाच के वक्त इसकी गति, ताल और लय पर इसके श्रोता और दर्शक अंग-संचालन के लिये विवश-से हो जाते हैं। जिन्होंने नाच के लिये गीतों का सृजन किया है, वे अवश्य नृत्य-कला के विशेषज्ञ रहे होंगे।

संकेताक्षर

गाँव की सम्पूर्णता प्रमाणित करने के लिये सबसे अधिक रोचक उदाहरण संकेताक्षरों का निर्माण है।

किसी सद्गृहस्थ की बैठक में जब दस-पांच मिलने-जुलने वाले बैठे होते हैं और उनमें से किसीको किसी से कोई गोपनीय बात, बिना दूसरों को सुनाये हुये, कहनी होती है, तब वह संकेताक्षरों के उपयोग से

अपना कार्य सिद्ध कर लेता है। रुकेताक्षरों के लिये गाँव में यह छंद प्रचलित है —

अहि-फनि कमल चक्र टकोर।
तरुवर पछवै यो ससिकोर॥
अंगुरिन अच्छर चुटकिन मंत।
कहैं राम बूझैं हनुमंत॥

इसने अ से लेकर ज्ञ तक अक्षरों को वर्गों में बाट दिया गया है। वर्गों का पता हाथ की कई तरह की बनावटों, जैसे साँप के फन, कमल, चक्र, धनुष आदि से बताकर, फिर उगलियों से वर्ग के अक्षर और चुटकियाँ बजाकर मात्रायें समझा दी जाती हैं। गुप्त रीति से काम निकालने का कैसा सहज तरीका है! ऐसा ही तरीका झडियों से बात-चीत करने में बर्त्ता जाता है। कम से कम इतना तो हमें स्वीकार कर ही लेना चाहिये कि गाँववालों ने अपनी छोटी-छोटी कठिनाइयों पर भी ध्यान दिया है और उन्हें किसी न किसी रूप में उन्होंने दूर भी कर लिया है। उन्हें मूर्ख कैसे कहा जायगा?

सम-सामयिकता

गाँव के लोग असावधान नहीं कहे जा सकते। उनका ढाँचा ही इस क़िस्म का बना हुआ है कि वर्तमान-काल आपसे आप उनके अंदर सरक जाता है। एक उदाहरण लीजिये.—

रेल उनके लिये बिलकुल एक नई चीज़ थी, पर थोड़े ही दिनों के बाद उन्होंने बड़ी बारीकी से उसका गुण-दोष समझ लिया। एक अहीर, जो बुद्धिहीन गिना जाता है, अर्थ-शास्त्र की वह बात कहता है, जो यूनिवर्सिटी के किसी प्रोफ़ेसर के कहने की हो सकती है। वह राह में ज़ोर से गाता हुआ, गाव भर को सुनाता हुआ चलता है —

जब से छुटि रेल कै गाड़ी कटिगा जंगल पहाड़ ।
पैसा रहा सोगोदे क सौंपेंउ पेटवा पीठि कै हाड़ ॥

अर्थात् जब से रेल चली, उसके रास्ते के जंगल और पहाड़ काट डाले गये । पास में जो पैसा था, उसे मैंने पैर को सौंप दिया । अर्थात् पैर को पैदल चलने न दे कर उसके लिये टिकट ख़रीद लिया और पेट को पीठ के हाड़ (रीढ़) के सुपुर्द कर दिया । मतलब यह कि खाने के लिये पैसा नहीं रह गया तो पेट पिचककर रीढ़ से जा सटा । क्या यह एक मार्मिक आलोचना नहीं है ?

जिस समाज में अपने वर्तमान सुख-दुःख की आलोचना की शक्ति और मन की तरंगों को पकड़कर उनमें सरसता अनुभव करने की समझ मौजूद है, उसे बुद्धिहीन कैसे कहा जायगा ?

स्त्री-साहित्य

गांव में स्त्रियों की शिक्षा भी बचपन से, गुड़ियों के खेल के साथ, शुरू कर दी जाती है । गुड़ियों के खेल में लड़कियों को गृहस्थी की कुल शिक्षा मिल जाती है । ज़रा सयानी होने पर लड़कियां गीत सीखने लगती हैं, जिन में उनके भावी जीवन में लाभ पहुंचाने वाले मानसिक रोगों के मधुर नुस्खे होते हैं, जिन्हें वे बहू बनने पर नित्य आज़माया करती हैं । जैसे,

' एक बहू अपने पिता की एक ही पुत्री, कई भाइयों की एक ही बहन और अपने पति की बहुत प्यारी पत्नी थी । वह उक्त तीनों के प्यार की नींद में आनन्द से सोया करती थी । उसका सुख उसकी सास और ननंद से देखा न गया । उन्होंने उसे झिड़की दी । बहू ने पिता, भाई और पति के प्यार का अभिमान प्रकट किया । पति ने उसका उत्तर सुन लिया । तब,

एतना वचन राजा सुनलेन सुनहू न पवलेन,
राजा सारी रात सुतलें करवटिया त मुखहू न बोलैं।

पति रुष्ट हो गया। बहू ने कारण पूछा। तब पति ने कहा—

नाहीं मोरा जेवना बिगड़ले, न सेजिया मोर भइलेनि हो,
रानी! गंगा जमुन मोरी मैया, गरब बानी बोलिहु।

कारण जानकर चतुर बहू ने तत्काल अपनी भूल स्वीकार कर ली और कहा—

हमसे भइलि तकसिरिया सासु पग लागब।
राजा मैया मनाइ हम लेब राउर हसि बोलहु।

लड़कियों को बहू बनने पर किस तरह भूल स्वीकार करके जल्द से जल्द मनोमालिन्य को मन से निकाल देना चाहिए, यह शिक्षा ऐसे गीतों से उनको दीजाती है और साथ ही यह भी बता दिया जाता है कि बहू को अपने पति की प्रसन्नता का और पुत्र को अपनी माता की सम्मान-रक्षा का कहाँ तक ध्यान रखना चाहिये। जिस समाज में पारिवारिक शांति-स्थापन के ऐसे गीत मौजूद हैं, उसे असभ्य कैसे कहा जायगा?

एक उदाहरण और लीजिये —

एक नव वधू भोजन तैयार करके पति की बाट जोह रही है। पति आता है। बहू उससे देरी का कारण पूछती है। पति ने कहा —

बाबा की बगिया कोइलि एक बोलै कोइलि सबद सुनौं ठाढ़॥

बहू ने तत्काल कोयल को पत्र लिखा —

तनी एक बोलिया नेवरतिउ कोइलरि प्रभु मोर जेवने क ठाढ़॥

कोयल ने भी बहू को जवाब लिख भेजा —

ऐसइ बोलिया तु बोलि के दुलहिन, दुलहे न लेतिउ बिलमाय॥

कोयल ने कैसी मीठी चुटकी ली है? बहू की बोली कोयल की

तरह मीठी हो तो घर में कितना सुख छा जाय। यह बात गीत में कितने सुन्दर तरीक़े से बता दी गई है।

स्त्री-गीतों की दुनिया में एक यह विचित्र बात भी पाई जाती है कि सारे गीत सास के जीवन तक ही पहुँचकर समाप्त हो जाते हैं। बहू जब स्वयं सास बन जाती है, तब उसकी सास का कोई भी समाचार हमें गीतों से नहीं मिलता। पुरुषों के लिये वृद्धावस्था के गीत और भजन बहुत से हैं, जो उनको श्मशान तक पहुँचा आते हैं। उनमें स्त्री, पुत्र, पौत्र आदि की निस्सारता जोरदार शब्दों में प्रकट करके पुरुष को परलोक के लिये उत्कंठित किया जाता है, पर स्त्रियों की वृद्धावस्था के लिए न गीत हैं, न भजन, न पद। वृद्धा स्त्रियों को निराधार क्यों छोड़ दिया गया? यह रहस्य समझ में नहीं आता। क्या स्त्रियां कुटुम्ब के लिये तरह-तरह की दवाओं से भरी बोतलें हैं कि जब दवा ख़तम हो जाती है तब वे खाली बोतलों की तरह उपेक्षा-पूर्वक अलग रख दी जाती हैं, और फिर उनकी खोज-खबर भी नहीं ली जाती? विचारणीय प्रश्न है।

ग्राम-गीत

जन्म से लेकर मृत्यु तक हिन्दुओं का समस्त सामाजिक जीवन काव्य-मय है। उसमें प्रत्येक मङ्गल-कार्य में सङ्गीत को मुख्य स्थान दिया गया है। शायद ही किसी हिन्दू का कण्ठ बचा हो, जिससेकभी न कभी कोई गान न फूट निकला हो।

उत्सवों में मनोरंजन के लिये हिन्दू-जाति में सङ्गीत तो मुख्य है ही, प्रत्येक परिश्रम के काम के साथ भी गीत लगा हुआ है। राह चलते हुए स्त्री-पुरुष गीत गा-गाकर थकान मिटाते चलते हैं, पालकी लिये हुए कहार गीत गा-गाकर रास्ता काटते हैं, चरवाहा सुनसान

जङ्गल में अपने गीतों से पेड़-पत्तों तक को जगाता रहता है, रात में किसान कोल्हू चलाकर ईख का रस निकालने के साथ अपने सरल और सरस हृदय का मधुर रस भी निकाल कर जीवन के अनेक कष्टों से पीड़ित सहकर्मियों और दूर जानेवाले बटोहियों को बाटता है।

पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों ने अपने कामों में गीतों की सहायता अधिक ली है। सस्कार के अवसरों पर प्राय कुल गीत स्त्रिया ही गाती हैं। जात पीसने, धान रोपने, खेत निराने, खेत गोड़ने और काटने के समय गाव की स्त्रिया जो गीत गाती हैं उनमें गृहस्थी के सुख-दुःख की बड़ी ही मार्मिक बातें भरी होती हैं। सम्भव है, गाव के गीतों में नागरिक कवि की कविता का सा आनन्द न मिले, पर उन में आनन्द का अभाव नहीं होता, रुचि-भेद से आनन्द की मिठास मे अन्तर हो सकता है।

ग्राम-गीतो ने गांव के अन्त पुरों, चौपालों, बाग़-बग़ीचों, खेतों और खलियानों में कहीं शृङ्गार-रस का, कहीं करुणारस का, कहीं हास्यरस का और कहीं वीररस का स्रोत खोल दिया है। सहृदय नर-नारी उसमें डुबकी ले रहे हैं, रसपान कर रहे हैं, मुग्ध हो रहे हैं और थोड़ी देर के लिये ससार के माया-जाल से मुक्त होकर स्वर्गीय सुख का रसास्वादन कर रहे हैं। नागरिक कवियों की कविता का ऐसा प्रभाव कहीं देखा नहीं गया।

सभ्य-समाज में आकर कविता भी सभ्य हो गई है। पिङ्गल व्याकरण, रस, अलङ्कार और महावरे नामक सभ्यता के शुभ लक्षणों से उसका नख-शिख दुरुस्त होगया है। पर गाव के गीतों में वह अपने असली ही रूप में निवास करती है। वहा वह कालीदास की 'भ्रू विलासानभिज्ञा' है और भोलापन ही उसका सौन्दर्य है।

गाँव प्रकृति का क्रीड़ा-स्थल है और नगर मनुष्य का कार्यक्षेत्र।

गांव में प्रकृति स्वयं गान करती है, पर नगर में स्वनिर्मित सभ्यता से बंधे हुए कवि की दशा 'व्यभिचारी' और 'चोर' की-सी होगई है।—

चरन धरत कांपत हृदय, नाहिं सुहावत सोर।
सुवरन कहँ खोजत फिरत, कवि व्यभिचारी चोर॥

अतएव जहा तक स्वाभाविकता का सम्बन्ध है, नागरिक कवि की कविता से प्रकृति-जन्य ग्रामगीतों का महत्त्व अधिक है।

प्रकृति ने गाव के प्रत्येक समाज मे कवि उत्पन्न किये हैं। अहीरों के लिये विरहे तुलसी ने नहीं बनाये थे, न कहारों के लिये कहरवा सूरदास ने। धोबी, चमार, नाई, बारी, पासी और कुम्हारो मे कबीर, बिहारी, केशव, भूषण, देव और पद्माकर नहीं पैदा हुए थे। पर इन जातियों में भी कविता किसी न किसी रूप में वर्तमान है। और कहीं-कहीं तो वह नागरिक कवियों की कविता से अधिक सरस है।

सिद्ध कवियों की कविता का आनन्द वही उठा सकता है, जिसने छन्द, व्याकरण और अलङ्कार-शास्त्र का अच्छी तरह अध्ययन किया है। ऐसी कविता को हम स्वाभाविक कविता नहीं कह सकते। यह तो माली-निर्मित उस क्यारी की तरह है जिसके पौधे कैंची से कतरकर ठीक किये रहते हैं और जो ख़ास तरह की रुची से विवश होकर सजाई जाती है। ग्राम-गीत तो प्रकृति का वह उद्यान है जो जंगलों में, पहाड़ों पर, नदी-तटों पर, स्वतन्त्र रूप से विकसित हुआ है। वह अकृत्रिम है। सिद्ध कवियों की कविता किसी बंगले का वह फूल है, जिसका सर्वस्व माली है। पर ग्राम-गीत वह फूल है, झरने जिसको पानी पिलाते हैं, मेघ जिसे नहलाते हैं, सूर्य जिसकी आखें खोलता है, मन्द मन्द समीर जिसे झूले में झुलाता है, चन्द्रमा जिसका मुंह चूमता है और ओस जिस पर गुलाब-जल छिड़कती है। उसकी समता बंगले का कैदी फूल नहीं कर सकता।

हमने इस पुस्तक में जो गीत दिये है, उनमें जो कवित्व है, उसे ही हम अपनी लेखनी-द्वारा प्रकट करने में समर्थ हुए है। पर वे ही गीत जब स्त्री कंठ से निकलते हैं, तब उनका माधुर्य और उनका उन्माद कुछ और ही हो जाता है। विधाताने स्त्रियों के कण्ठ में जो मिठास रखदी है, जो लचक भर दी है, उसे हम लोहे की लेखनी में कहा से ला सकते हैं?

ग्राम-गीतों में श्रृङ्गार, करुण और शांत रसके विषय अधिक मिलेंगे। कुछ हास्य-रस भी हैं।

पुरुषों के गीतों में ज्यादातर वीरता, नीति, स्त्रियों के प्रति घोर आकर्षण, त्याग और वैराग्य के भाव भरे होते हैं। स्त्रियों के गीतों में प्राय श्रृङ्गार और करुणरस ही की प्रधानता होती है। उनसे त्याग और वैराग्य के गीत तो शायद ही कहीं प्राप्त हो सकें।

पुरुष के गीतों से ऐसा लगता है कि पुरुष भौंरे की तरह दौड़ दौड़ कर सब रसों का स्वाद लेना चाहता है। और स्त्री के गीतों से यह प्रकट होता है कि वह उसे एक केन्द्र पर बांध रखना चाहती है।

हिन्दुओं में सम्मिलित कुटुम्ब की प्रथा प्रचलित है। स्त्री-गीतों में बड़े जोरों के साथ इसका समर्थन किया जाता है। कन्यायें और बहुयें सब कुटुम्बियों के अलग-अलग उपनामों को जोड़-जोड़कर गीत गाती हैं। जिससे गृहस्थी के एक केन्द्र से हर एक कुटुम्बी बंधा हुआ रहता है।

गीत भारतवर्ष के प्रत्येक प्रांत में पाये जाते है और घर के भीतर गाये जाने वाले गीतों में सर्वत्र समानता मिलती है। जान पड़ता है, एक ही आत्मा भिन्न-भिन्न भाषाओं में बोल रही है। यह हमारी एक संस्कृति का प्रभाव है। और यही इस बात का भी एक प्रबल प्रमाण है कि सारा भारतवर्ष एक है।

आगे गांव में प्रचलित कुछ छन्द दिये जाते है, उनमें देखिये काव्य के रसों का परिपाक किस सुन्दर ढङ्ग से हुआ है :—

जब महुआ चूने लगता है, तब अक्सर लोग गाने लगते हैं :—

औचक आइ जोबनवा मारेसि बान।
महुवा रोवै ठाढ़ आम बौरान॥

महुए का फूल आँसू की तरह टपकता है और उन्ही दिनों आम में बौर भी आते हैं। 'बौरान' के दो अर्थ हैं—बौर गया और बावला हो गया। क्या यह किसी कविता से कम सरस है ?

हास्य-रस के लिये एक फूहड़ स्त्री का मजाक सुनिये :—

फूहरि के घर खिड़की लगी। सब कुत्तों को चिंता पड़ी।
बाड़ा कुत्ता छितवै मौन। लगी तो है पर देगा कौन ?

फूहड़-स्त्री का इससे चुभता हुआ मजाक और क्या होगा ?

अपने प्राण-धन के साथ दु:ख में भी सुख अनुभव करने वाली एक पति-वल्लभा का हृदयोद्गार सुनिये :—

टूटी खाट घर टपकत टटियौ टूटि।
पिय कै बाँह सिरहनवाँ सुख कै लूटि॥

एक प्रेम-विह्वला अपना घर जलता हुआ देखकर भी सुख अनुभव कर रही है :—

आगि लागि घर जरिगा अति सुख कीन्ह।
पिय के हाथ घइलना भरि भरि दीन्ह॥

आगे की पंक्तियों में देखिये, कविता का सच्चा स्वरूप झलकता हुआ मिलता है, या नहीं ?

परवत पर दिवला बरै, चहुँ दिसि बाजै पौन।
बरै अचम्भा जानिये, बुझत अचम्भा कौन॥

❀ ❀

साजन तेरे हेत, अँखियाँ तो नदिया भईं।
मन भयो बारू रेत, गिर गिर परत करार ज्यों॥

जोबन गयो तो भल भयो, तन से गई बलाय ।
जने जने का रूठना, मोसे सहा न जाय ॥

❀ ❀

साँझ भई दिन अथवा, चकई दीन्हा रोय ।
चल चकवा वा देस को, जहाँ साँझ नहिं होय ॥

❀ ❀

आग लगी वनखण्ड में, दाझा चंदन बंस ।
हम तो दाझे पख बिन, तू क्यों दाझे हंस ॥
फल खाया बीटॉ करी, बैठे तुम्हरी डाल ।
तुम जरो हम उड़ चलें, जीवेंगे के काल ॥

❀ ❀

सत मत हारे बावरे, सत हारे पत जाय ।
सत की बाँधी लच्छमी, फेर मिलैगी आय ॥

कहने के ढंग के बारे में भी एक उदाहरण देना आवश्यक है। 'मुद्दई सुस्त, गवाह चुस्त' की कहावत प्राय शिक्षित-वर्ग में प्रचलित है, पर इसी भाव को गाववालों ने अधिक सरसता से ऐसा कहा है —

नाव चढे झगडालू आवैं पौरत आवैं साखी ।

कुछ उदाहरण और लीजिये :—

माँगै न आवै भीख । तो सुरती खाना सीख ॥

❀ ❀

जब देखी परनारि । तब फूट गई चारि ॥

❀ ❀

जोरू टटोलै गठड़ी । माँ टटोलै अँतडी ॥

कहावतें और मुहावरे

गाव की कहावतों के थोड़े से शब्दों में एक व्यक्ति का, एक समाज का सच्चा और विशाल अनुभव कैसे भर दिया जाता है, यह देखकर आश्चर्य होता है।

जब एक किसान कहता है —

लरिका ठाकुर बूढ़ दिवान। ममिला बिगरै सांझ बिहान॥

अर्थात् राजा लड़का है और दीवान बूढ़ा, दोनों में पट नहीं सकती। सुबह से शाम तक झगड़ा होके रहेगा।

तब हमको मानना पड़ता है कि साधारण किसान कोभी राजा और दीवान के स्वभाव का सूक्ष्म परिचय है।

एक दिन एक गाव में एक रियासत का एक सिपाही एक देहाती आदमी से अपना यह दुखड़ा रो रहा था कि उसे खाना खाने तक की फुरसत नहीं मिलती। रात के १२ ही क्यों न बजे हों, ज़िलेदार के हुक्म से उसे दौड़ना पड़ता है। इस पर देहाती ने कहा—

चाकर है तो नाचाकर। ना नाचे तो ना चाकर॥

इस उत्तर में गूढ़ तत्व की बात के साथ अनुप्रास का आनन्द भी रा है।

हिन्दी में जितनी कहावतें और मुहावरे प्रचलित हैं, प्रायः सब गांव ी बोली से आये हुये हैं। यह उसका एक बड़ा ऋण है, जिससे हिन्दी भी उऋण नहीं हो सकती।

गांव के लोग बड़े ही प्रत्युत्पन्नमति होते हैं, यह उनकी कहावतों ौर मुहावरों से अच्छी तरह विदित होता है। उन्होंने कोई चीज देखी, सकी गति-विधि को समझा और झट उसकी एक कहावत बनाली। जैसे, मामूली-सा काम करते हुए कोई बड़ा कष्ट उत्पन्न हो जाने पर वे

कहते हैं —खिचरी खात पहुचा टूट।

कोई आदमी ऐसा काम करना चाहता है, जो उससे नहीं हो सकता, तब वे कहते हैं —

डगर चला न जाय रजाई का फाद बाधे। इत्यादि

यह क्षमता शहरवालों में बिलकुल ही नहीं है। 'टाई' और 'पतलून' जैसे झमटी वस्त्रों को वे सैकड़ों वर्षों से देखते और पहनते आ रहे हैं, पर कभी उन्होंने उनके लिये कोई महावरा या कहावत नहीं बनाई और न कभी उनमें सरसता अनुभव की। पर गांववालों ने रजाई, धोती, पगडी, जूता सभी पर तो कुछ न कुछ कहा है।

कहावतें तो ग्राम-साहित्य के रत्न हैं। वे गाववालों ही के लिये नहीं मनुष्य-मात्र के लिये उपयोगी हैं। और जो गाववालों को समझना चाहें, उनके लिये तो अंधेरे रास्ते के दिये-जैसी हैं।

महावरे भाषा के प्राण हैं। महावरों का ठीक प्रयोग न जाननेवाला न अच्छी भाषा बोल सकता है, न लिख।

बुझौवल

बच्चों की बुद्धियों पर शान चढाने के लिये गावों में बहुत सी पहेलिया, जिन्हें बुझौवल भी कहते हैं, प्रचलित हैं। शाम को चौपाल में या नीम के पेड़ के नीचे किसी अधेड़ या बुड्ढे को घेर कर बच्चे बैठ जाते हैं और बुझौवल शुरू हो जाती है। बुझौवल बडे ही गूढ़ार्थ वाले होते हैं। आश्चर्य है कि गाव के अपढ़ अशिक्षित लोग उन्हें बना कैसे लेते हैं?

पाजामे का बुझौवल सुनिये —

दुइ मु ह छोट एक मु ह बड़ा, आधा मनई लीलेखड़ा।

इसी तरह तवा और कढ़ाई पर भी बुझौवल हैं।

चाची के दुइ कान, चाचा के कानै न।
चाची चतुर सयानि, चाचा कुछ जानै न॥

भाषा की टकसाल

आज हिन्दी या हिन्दुस्तानी भाषा का जो रूप हमें दिखाई पड़ता है, वह गांव की टक्साल का ढला हुआ है। हिन्दी के आदि जन्म-दाता गाववाले ही हैं। उन्होंने संस्कृत शब्दों को हिन्दी का रूप दिया है।

गाव की फैक्ट्री में नये-नये शब्दों के ढालने और पुराने शब्दों के खरादने का काम हर वक्त जारी रहता है। 'लालटेन' का असली नाम 'लैन्टर्न' है। गाव की फैक्ट्री में उसका 'लालटैन' बना, जिसे अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोगों ने भी स्वीकार कर लिया।

मोटर का 'हार्न' अंग्रेज़ी शब्द है, जिसका अर्थ 'सींग' है। यह उस समय का शब्द है, जब अंग्रेज़ गोरू चराया करते थे और सींग बजाकर अपनी गायें बुलाया करते थे। यद्यपि अब उसका शरीर हड्डी का न रहकर रबर और लोहे का बन गया है, पर स्वर-साम्य के कारण उसका नाम पुराना ही है। कभी भारत में भी सींग का चलन था। सींग बजाकर श्रीकृष्ण अपनी गायें और शिवजी अपने भूत-प्रेत बुलाया करते थे।

शृंगी टेरि भूतगन प्रेरे।

(तुलसीदास)

अगर 'हार्न' शब्द का हिन्दी नाम रखने के लिये यूनिवर्सिटी या कालेज के प्रोफेसरों को कहा जाता तो सम्भवत वर्षों तक वे 'सींग के' आस ही पास चकराते रहते और शायद न बना पाते। पर गांव की फैक्ट्री में यह अपने दो स्वरों 'भों' और 'पूं' को मिलाकर, 'भोंपू' बन गया, जिसे सभ्य और शिक्षित-वर्ग को भी स्वीकार करना पड़ा।

'बाइसिकल' शब्द के असली अर्थ 'दो पहिये' से कहीं अधिक सार्थक है। 'बाइसिकल' का ऐसा अनुवाद पढ़े-लिखे लोग शायद ही कर सकते।

अंगेज़ी में संज्ञा शब्दों को क्रियायें बना लेने की जो क्षमता है, वह गाँव की फैक्ट्री में भी है। अंगेज़ी में अगर 'मोटर' से 'मोटरिंग' और 'पेट्रोल' से 'पेट्रोलिंग' बन सकता है तो गांव की बोली में 'मिट्टी' से 'मटियाना', 'साबुन' से 'सबुनाना', 'साठ' से 'सठयाना' आदि आसानी से, बिना किसी प्रेरणा के बन जाते हैं। फारसी की क्रियाओं को हिन्दी-रूप दे देने की शक्ति भी गांव की फैक्ट्री ही में है। उसी में 'बदल' का 'बदलना' बना है। अभी और भी कितने ही शब्द वहां बनकर काम कर रहे हैं, जिनका हिन्दीवालों को पता ही नहीं है। और किसी को पता है भी, तो वह उनसे काम लेने में हिचकता है। जैसे, उरेहना = चित्र बनाना।

ऊंची अटारी उरेही चितसारी रे ना।

(ह० ग्रा० सा०, पृ० १७०)

छिनगाना = पेड़ की डालें काटना (संस्कृत का छिन्नाग), आदि सैकड़ों शब्द हैं जिनकी हिन्दी में नित्य ज़रूरत पड़ती है। और मिलते नहीं। लेखकों को उनके अभाव में उनका अर्थ समझाना पड़ता है। ऋग्वेद का एक 'द्यौ' शब्द, जिसका अर्थ 'आकाश' है, 'दइउ' के रूप में गांव के हिन्दू और मुसलमान दोनों के मुंह-मुंह में मौजूद मिलता है।

आजकल हिन्दुस्तान में एक राष्ट्रभाषा की अनिवार्य आवश्यकता समझी जा रही है और हमें हर्ष है कि हमारी 'हिन्दी' ही को यह गौरव प्रदान किया गया है। अब उसको अधिक व्यापक बनाने के लिये उसे एक नये सांचे में ढालने का प्रयत्न भी किया जा रहा है। इस प्रयत्न में सरकारी और गैर सरकारी दोनों ओर के विज्ञ शामिल हैं। और इसके

लिये वे हिन्दी और उर्दू के कोषों से मसाला ले रहे हैं। पर हिन्दी और उर्दू के कोष-कारों की परिधि तो खुद छोटी थी। उनके संगृहीत शब्दों से चुनकर जो भाषा बनाई जायगी, वह राष्ट्र की भाषा नहीं, कोष की भाषा जरूर बन जायगी।

देहात में संस्कृत और अरबी-फारसी के इतने शब्द अपने अपभ्रंश रूप में प्रचलित हैं कि आश्चर्य होता है कि वे वहाँ कैसे पहुंच गये?

मुझे एक गीत में 'व्यक्ति' शब्द सुनकर आश्चर्य हुआ—

रामा तब बोले वारी दमवंतिया रे ना।
रामा जहुं हउवा घर के वेकतिया रे ना॥
(नायकवा गीत)

मैं समझता था, संस्कृत का यह शब्द हिन्दी में बंगला से आया है; पर यह तो घनान्धकार में बसने वाले एक ग्रामीण के घर में मुझे मिला। ऐसे शब्दों को राष्ट्रभाषा से अलग कैसे रक्खा जा सकता है?

इसी तरह संस्कृत के और भी बहुत से शब्द हैं, जो ग्राम-गीतों में आम तौर से प्रयुक्त होते हैं, पर हिन्दुस्तानी भाषा के निर्माण में संलग्न विद्वानों को पता है कि नहीं, मालूम नहीं।

गाव में जितने पेशेवर होते हैं, सब के अलग-अलग पेशे के शब्द हैं। हिन्दी में उनका तो अभाव ही है।

अतएव यह मानना पड़ेगा कि गाव की बोली हमारी हिन्दी से अधिक सम्पन्न है। और जब इतना बड़ा बोलता हुआ कोष हमारे सामने खुला पड़ा है, तब हम अलमारी में रक्खे हुये अपूर्ण और मूक कोषों से हिन्दुस्तानी भाषा का पेट भरने में लगें, तो यह हंसी ही की बात है।

मेरा विश्वास है, गाव के साहित्य का अध्ययन किया जायगा तो हिन्दी और हिन्दुस्तानी का प्रश्न सहज में हल हो जायगा। क्योंकि हमको संस्कृत और अरबी-फारसी के उन शब्दों को ग्रहण कर लेने में

जिन जातियों में चौधरी चुनने और पंचायत का निर्णय मानने की ऐसी सर्वोत्तम प्रथा प्रचलित है, उन्हें शासन-कला से अपरिचित बताना कहाँ तक युक्ति-संगत होगा ?

स्वास्थ्य और स्वच्छता

गाँववालों को स्वास्थ्य और स्वच्छता के जितने ज्ञान की ज़रूरत होती है, वह उनके पास पूरा है। वे साफ़ नहीं रहते, सफ़ाई नहीं रखते, इसका कारण उनकी ग़रीबी है, न कि अज्ञान। वे स्वास्थ्य और सफाई के नियमों से परिचित हैं, यह उनकी कहावतों से प्रमाणित होता है। मेले-ठेले, शादी-ब्याह में गांव के नौजवान जब बन-ठनकर और भड़कीले कपड़ों से सज-बजकर निकलते हैं, तब कौन कह सकता है कि उनमें शृङ्गार के प्रति उदासीनता है ?

शारीरिक स्वास्थ्य ठीक रखने के नियम उनको मालूम हैं। उनके नियम बहुत सस्ते और बड़े ही गुणकारी भी हैं। यदि उनकी जानी हुई औषधियाँ उनको उपलब्ध हो सकें, या सबका संग्रह कराके, हर एक को बता दी जायँ तो उनको अस्पतालों की ज़रूरत बहुत कम रह जायगी।

और मनुष्य के भयंकर रोगों के तो उनके पास अचूक नुस्खे हैं। ग्रामगीतों के संग्रह में खान-पान की अव्यवस्था के कारण और गुड़ अधिक खाने से मुझे 'डायबिटीज' रोग हो गया था और पेशाब में १० फ़ी सदी चीनी जाने लगी थी। वह गांव के एक ग़रीब बुड्ढे की बताई हुई दवा— गूलर की तरकारी खाने से चला गया। इसी तरह कोढ़, क्षय, दमा, ब्लड-प्रेशर आदि अमिट माने जाने वाले रोगों के सैकड़ों नुस्खे गाँववालों को मालूम हैं।

बेल की पत्तियों का रस शहद मिला कर रोज सवेरे लेने से भी 'डायबिटीज़' रोग मिट जाता है। मैंने एक रोगी पर आज़मा कर

देखा है।

हिन्दी-मन्दिर प्रेस के एक कंपोजीटर को क्षय रोग लग गया था। उसके थूक के साथ ख़ून जाने लगा था। देहात के लोग इस रोग का इलाज 'लहसुन' बतलाते हैं। लहसुन का सेवन एक महीने करके कंपोजीटर बिलकुल नीरोग हो गया और अब वह प्रेस में 'फोरमैन' है।

गाँवों में जाते-आते रहने से मुझे बहुत सी बीमारियों के देहाती नुस्खे मालूम हो गये। मैंने कइयों को आज़माया और बहुत ही गुणकारी पाया। जैसे,

कमल या पीलिया रोग में गाँव के लोग मूली के पत्तों का अर्क गुड़ के साथ लेते हैं और लाभ होता है।

एक्ज़िमा के लिये ताँबे के पैसों को काँसे की थाली में दही के साथ घिसकर लगाते हैं।

गाँव में जब कोई नई बहू किसी बड़ी बूढ़ी को प्रणाम करती है, तब हाथ में आँचल पकड़कर, आँचल को उसके पैर से तीन बार छुवा-छुवाकर अपने माथे से छुवाती है। तब उससे वह यह आशीर्वाद पाती है।—

दूधन नहाओ, पूतन फलो।

इसके शाब्दिक अर्थ से इसका भावार्थ गूढ़ है। वास्तव में यह एक नुस्खा है। नई बहू आँचल इसलिये हाथ में लेती है कि उसे आँचल भर देने का अर्थात् पुत्रवती होने का आशीर्वाद मिले। आशीर्वाद मे उसे बता दिया जाता है कि दूध से नहाओगी तो पुत्र उत्पन्न होगा।

मुझे मालूम नहीं कि इसमें सचाई कहाँ तक है। पर यह नुस्खा उसी मतलब के लिये है, यह मुझे विश्वास है।

गांव के लोग उत्तर तरफ सिर करके नहीं सोते और दक्खिन तरफ मुँह करके भोजन नहीं करते। इसमें भी कोई वैज्ञानिक रहस्य होगा, जो उनके पूर्वजों को मालूम था।

वे पेशाब एँड़ी उठाकर करते हैं। उनका कहना है कि इससे अंड-वृद्धि का रोग नहीं होता। अंड-वृद्धि को रोकने के लिये पैर के अंगूठे को काले डोरे से कसकर बाँधते भी हैं।

हरएक हिन्दू लड़के का कान छिदाया जाता है और उसमें सोने या चाँदी की बाली पहना दी जाती है। गाँव वालों का विश्वास है कि कान में कोई धातु का टुकड़ा लगा रहने से आँखों की ज्योति बढ़ती है।

हो सकता है कि गाँव के गरीबों के इलाज अमीरों को सूट न करें, पर अस्पताल के महँगे इलाज, जो अमीरों के लिये हैं, गरीबों पर क्यों लादे जाँय? गरीबों के लिये उनके सस्ते नुस्खे क्यों न संग्रह किये जाँय?

गाँव के लोग स्वस्थ, साहसी, सुदृढ़ और बड़े ही परिश्रमी होते हैं। स्वास्थ्य के बारे में इससे अधिक प्रमाण और क्या चाहिये कि वे बीमार कम पड़ते हैं।

साहसी वे ऐसे होते हैं कि घोर अँधेरी रात में, हाथ में लाठी लिये सुनसान जंगल में जासकते हैं। सारी रात अकेले अपना खेत रखाते रहते हैं। न उन्हें साँप का डर, न भूत-प्रेत का भय, न कंकड़ और काँटे की परवा। उनके बराबर साहसी दूसरा हो नहीं सकता।

उनकी सुदृढ़ता का सब से प्रबल प्रमाण तो योरप की बड़ी लड़ाई में मिला था। जब कि हिन्दुस्तान के सिपाहियों ने दो-दो तीन-तीन दिनों तक केवल चने और थोड़े पानी पर गुज़र करके जर्मनों के छक्के छुड़ा दिये थे। अतएव खानपान की विशेषता से हमारे गावों के आदमी संसार की किसी भी सभ्य कहलाने वाली जाति के आदमियों से ज्यादा ही सुदृढ़ साबित होंगे।

उनके परिश्रमी होने का तो कहना ही क्या है? वे लगभग चार बजे सबेरे उठ जाते हैं। शौच आदि से निवृत्त होकर सूरज निकलते निकलते घर-गृहस्थी के कामों पर डट जाते हैं।

जवान किसान दोपहर से पहले मुँह में कोई आहार नहीं डालता। दोपहर को जब सूरज ठीक सिर पर आता है, और जाड़ों में सूरज लगभग दो बजे वहाँ पहुँचता है, वह नहा कर पहला आहार लेता है। फिर दूसरा आहार रात में नौ-दस बजे। इससे उसका स्वास्थ दिनभर में चार बार खाने वालों से अच्छा तो रहता ही है, साथ ही परिश्रम करने का उसे काफी समय भी मिल जाता है।

अख़बारों में पढ़ा है कि अमेरिका में 'ऐंटी ब्रेकफास्ट लीगें' (सवेरे के भोजन की विरोधिनी सभायें) क़ायम हो रही हैं, और लोगों को पहला आहार दोपहर को लेने की सलाह दी जा रही है। इससे तो यही कहा जायगा कि हमारे गाँव के किसान सदियों से उस स्थान पर खड़े हैं, जहाँ सभ्य-ससार बहुत घूम-फिरकर अब पहुँचना चाहता है।

गाँव की स्त्री दिनभर काम में जुती रहती है। सवेरे घर साफ करती है, बरतन माँजती है, कुवें से पानी लाती है, जानवरों को चारा-भूसा डालती है, आटा पीसती है, दाल दलती है, बच्चों की संभाल करती है, रसोई बनाती है, सबको खिलाकर तब स्वयं खाती है, तब कहीं दोपहर के बाद शाम तक कुछ फुरसत पाती है, उस फुरसत में भी वह कुछ सीती-पिरोती रहती है। रात में फिर भोजन बनाकर घर भर को खिला-पिलाकर, सबके अंत में स्वयं खा-पीकर तब विश्राम करती है। इस तरह गाँव के स्त्री-पुरुष दोनों का अधिकाश समय परिश्रम में बीतता है, और परिश्रम से उनका स्वास्थ अच्छा रहता है।

अधिकाश स्त्री-पुरुष रविवार को नमक नहीं खाते, एकादशी को निराहार रहते हैं, बहुत-से त्योहारों पर केवल फलाहार करते हैं। इन सब का भी प्रभाव उनके स्वास्थ पर पड़ता है और वे बहुत कम बीमार पड़ते हैं।

पुरुष और स्त्री दोनों दातुन और, स्नान करके ही भोजन करते हैं,

और कपड़े खोलकर हाथ-पैर धोकर तब खाने पर बैठते है।

चूल्हा रोज़ पोता जाता है और चौका गोबर से लीपा जाता है। बरतन मॉंजकर खूब चमका दिये जाते हैं।

अतएव स्वच्छता का ध्यान गाँव के लोग कम नहीं रखते, जैसा कि समझा जाता है। उनमें जो कुछ गंदगी दिखाई पड़ती है, वह हाथ की तंगी की वजह से है, न कि उनका स्वभाव ही गंदा होता है।

वर्ष में दो बार वे अपने घरों की सफाई करते हैं— एक दीवाली के आसपास, दूसरे होली के दिन। दीवाली का दिया जलाने के पहले वे अपने घर को लीप-पोतकर साफ कर लेते हैं, घूरे पर भी दिया जला कर उसे प्रकाशित कर देते हैं। होली के कई दिन पहले से वे घर और बाहर की सफ़ाई में लग जाते हैं। अनावश्यक कूड़ा-करकट जमा करके जला देते हैं और घर लीप-पोतकर साफ़ और सुन्दर कर लेते हैं। स्त्री और पुरुष दोनों घर की सफ़ाई में लगे रहते हैं।

गाय-बैल आदि जानवरों को किसी पोखरे में ले जा कर नहलाना, धोना और उनकी सींगों में तेल लगाकर उनको चमका देना हरएक किसान अपना कर्त्तव्य समझता है।

होली के दिन गांववालों की ख़ुशी देखने योग्य होती है। वे सफ़ेद कपड़े पहनकर हंसते, गाते, परस्पर विनोद करते, रंग और अबीर उड़ाते घर से निकलते है। सारा दिन और रात में भी देर तक गाते-बजाते रहकर वे सारा दुःख-दर्द भूल जाते हैं। अतएव स्वच्छता का उनको पूरा ख़याल रहता है बशर्ते कि उनके पास पैसा हो।

खोज की जाय तो गाँव वालों में इतने प्रकार के स्वास्थ्य-वर्द्धक खेल प्रचलित मिलेंगे, जितने सभ्य कहे जाने वाले समाज में नहीं हैं। और सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनके खेल बिना कौड़ी ख़र्च किये, बहुत मामूली साधनों से, खेले जाते हैं। हँस-बोलकर, दौड़-धूपकर, वे प्रकृति

में से प्राण-पोषक तत्व ले लेते हैं और फिर अपने जीवन-पथ पर आगे बढ़ते हैं। उनको मूर्ख कौन कह सकता है ?

सहयोगिता

गाँवों में सामाजिक संगठन का आधार सहयोगिता है। वहाँ का प्रत्येक कुटुम्ब दूसरे कुटुम्ब को हरएक सामाजिक विषयों में सहयोग देता रहता है। सहयोग के कुछ कार्य तो रूढ़ हो गये हैं और वे चक्र की तरह नियमित चलते हैं। जैसे.—

(१) कन्या के विवाह में निमन्त्रित गृहस्थ कन्या के पिता को कम से कम एक रुपया 'न्यौता' दे जाते हैं। रिश्तेदार लोग रुपया, आटा, घी और अचार आदि लेकर आते हैं। इन सबसे कन्या के पिता का बोझ हलका हो जाता है और कन्या का विवाह करके वह टूट नहीं सकता। इसका एक अर्थ यह भी है कि कन्या समाज की कन्या मानी जाती है और उसका विवाह समाज के सहयोग से होता है।

(२) जनेऊ में भी 'न्यौता' जाता है। कम से कम एक गज़ कपड़े का एक टुकड़ा, उसमें कुछ आटा और कुछ पैसे बंधे हुये होते हैं। समाज में जिसकी मान्यता जितनी अधिक होती है, उसी के अनुसार उसे 'न्यौते' मिलते हैं। अतएव मान्यता बढ़ाने का प्रयत्न प्रत्येक गृहस्थ करता रहता है और उसकी प्राप्ति का रास्ता दूसरों को सहयोग देना होता है। 'न्यौतों' से 'जनेऊ' का बहुत-सा ख़र्च निकल आता है।

(३) जब कोई किसान कुआँ खुदवाता है, तब भी उसका समाज उसका बहुत-सा ख़र्च अपने ऊपर ले लेता है। एक प्रकार से वह समाज का कुआँ हो जाता है, केवल नाम खुदवाने वाले का होता है। जब कुआँ पानी तक खुद जाता है और उसमें 'नेवार' पड़ती है, तब आसपास के किसानों को 'बुलौवा' जाता है। वे 'नेवार' में पैसा डालने आते हैं।

'नेवार' गढ़ने वाले लोहार या बढ़ई कुँवें के अन्दर चादर फैलाकर खड़े होते हैं, उसमें किसान के मित्र लोग पैसे या रुपये डालते हैं। कभी-कभी लोहार को उसकी उजरत से कहीं ज्यादा रुपये मिल जाते हैं। रुपयों की संख्या किसान की सामाजिक मान्यता पर निर्भर होती है। लोहार 'नेवार' की गढ़ाई न लेकर केवल ऊपर से डाले हुये धन पर संतोष करता है।

(४) किसान खेत की कटाई की मजूरी पैसों में नहीं देता। वह काटने वालों को १६ बोझ पीछे एक बोझ काटे हुये नाज का देता है। कहीं-कहीं बीस बोझ पीछे एक बोझ देने की प्रथा भी है।

(५) नाई साल भर तक किसान की हजामत बिना पैसा लिये करता रहता है। किसान उसे साल में एक बोझ कटे हुये अन्न का देता है।

(६) लोहार सालभर तक किसान का हल, खुरपा, फावड़ा और कुदाल वगैरह बनाता रहता है और पैसा नहीं लेता। चैत्र मे किसान उसे एक बोझ अन्न देता है।

(७) धोबी सालभर तक किसान के कपड़े धोता है। बदले में साल में एक बोझ अन्न वह भी पाता है।

(८) कुम्हार सालभर तक मिट्टी के बरतन देता रहता है। किसान उसे साल में एक बार एक बोझ अन्न देता है।

(९) शिक्षा के लिये पहले 'मुठी' की प्रथा थी। हर एक गृहिणी खाना बनाने से पहले एक मूठी आटा, चावल या दाल निकालकर एक घड़े में रखती जाती थी। महीने में किसी समय आकर पाठशाला के विद्यार्थी उसे माँग ले जाते थे, और उससे पाठशाला के विद्यार्थियों और अध्यापक का भी खर्च चल जाता था। समय के प्रभाव से यह अत्यन्त उपयोगी प्रथा अब बिलकुल ही बन्द होगई है।

इसी प्रकार कुछ और भी पेशेवर हैं, जिनका सम्बन्ध किसान से

होता है और वे अपने काम के बदले में अन्न पाते हैं।

विचार किया जाय तो सच्चा सहयोग तो यही है। मानो नाई, लोहार, धोबी और कुम्हार को किसान आश्वासन देता है कि तुम्हारे खाने के लिये अन्न मैं पैदा करूँगा, तुम निश्चिन्त होकर अपना पेशा करो। और नाई, लोहार आदि भी साल में किसानों से सैंकड़ों मन गल्ला पा जाते हैं, इससे उनको खाने के लिये अन्न उपजाने या ख़रीदने की आवश्यकता नहीं रहती। एक-एक पेशेवर सैंकड़ों किसानों का काम करते रहते हैं।

अब पैसे ने बीच में पड़कर उनमें गड़बड़ी मचा दी है और किसान को नाई आदि की सेवा के बदले में वह चीज़ देनी पड़ रही है, जिसे वह खेत में नहीं पैदा करता। जैसे-जैसे पैसे वाली सभ्यता बढ़ती जा रही है, वैसे-वैसे गांव का सामाजिक सहयोग बिखरता जा रहा है।

गृह-प्रबन्ध और मितव्ययिता

गाँव के लोग आदर्श मितव्ययी होते हैं। थोड़ी आमदनी में भी वे ऐसा अच्छा गृह-प्रबन्ध करके जीवन बिताते हैं कि देखकर आश्चर्य होता है।

एक उदाहरण के साथ चलिये। मान लीजिये, एक किसान के पास कुल १० बीघे खेत है। जिसमें अच्छी फ़सल हुई तो साल में अधिक से अधिक १०० मन नाज पैदा होगा। १०० मन नाज का दाम भी १००) मान लीजिये, अर्थात् महीने में ८) से कुछ अधिक।

अब उसका ख़र्च जोड़िये। उसके घर में वह, उसकी स्त्री, मां-बाप, दो बच्चे, दो बैल, एक गाय या भैंस, इतने प्राणी हैं। इन सबको उसी आमदनी में से वह खिलाता-पिलाता है, घर वालों को कपड़े, जाड़े के अलग, गरमी के अलग, देता है। साल भर में कुछ जमींदार को देता है और कुछ ज़िलेदार को भी। पटवारी भी मुँह बाये रहता है, कुछ उसमें डालता है। पुलिस का सिपाही भी कुछ लेता ही है। साल में वह

दो-तीन बार कथा सुनता है और कुछ पुरोहित को देता है। भूत-प्रेत का भी उसे विश्वास है, इससे ओझा-सोखा भी कुछ ले ही जाते हैं। होली-दिवाली और दशहरे में भी कुछ अधिक ख़र्च उसे करना पड़ता है। मेहमान भी आते-जाते रहते हैं। महाजन से ज़रूरत पर उधार लाता रहता है, उसे कुछ ब्याज देता है। दिल खोलकर लड़के-लड़की की शादी करता है, उसमे महाजन से क़र्ज़ लेकर ख़र्च करता है। गाँव मे कथा बैठती है, आल्हा होता है, कठपुतली का नाच, नौटंकी आदि खेल-तमाशे होते रहते हैं, सब में चन्दा देता है। साधु-सन्त जो दरवाजे पर आ जाते हैं, उन्हें कुछ खाने को देता है। गाय-भैंस को चरवाही, घर की मरम्मत की मज़दूरी और खपड़े और बास का दाम चुकाता है, और इतनी चितायें लादे हुए वह खेत के मेंड़ पर मस्त होकर गाता भी चलता है और जी खोलकर हस सकता है। इससे भी विचित्र बात यह है कि वह सत्तर-अस्सी वर्ष तक जी भी देता है। क्या कोई डाक्टर, जिसे स्वस्थ रहने के तरीके सबसे अच्छे मालूम होते हैं, आठ रुपये मासिक पर सत्तर या अस्सी वर्ष तक जी देगा इतनी छोटी आमदनी में घर का ऐसा सुप्रबन्ध शिक्षित-समाज का क्या कोई व्यक्ति करके दिखा सकता है? अगर नहीं तो गाव वालों को बेअक्ल, कैसे कहा जा सकता है?

ग्राम-सुधार और बेसिक ट्रेनिंग स्कीम

कुछ समय से सूबे की सरकार ने गाँवों की हालत सुधारने की ओर पहले से कहीं अधिक ध्यान देना शुरू किया है। उसने 'रूरल डेवलपमेंट' नाम का एक नया महकमा कायम किया है और शिक्षा-विभाग की ओर से 'बेसिक ट्रेनिंग स्कीम' के अनुसार इलाहाबाद में एक कालेज खोला गया है।

महकमे और स्कीम दोनों के सामने अब यह प्रश्न है कि वे किस प्रकार गाँवों के लिये अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। और गांव के

सामने भी यह प्रश्न, यदि अभी तक नहीं आया है तो, आना चाहिये कि उक्त महकमे और स्कीम से उनको कैसे लाभ उठा लेना चाहिये। इस सम्बन्ध में गाँव की मेरी कुछ जानकारी, संभव है, दोनों ओर के लिये लाभदायक सिद्ध हो, इससे मैं नीचे लिखी बातों को ओर उनका ध्यान आकर्षित करता हूँ —

१—पहले यह स्वीकार कर लेना चाहिये कि गाँव की एक प्राचीन व्यवस्था है, जिसको लेकर वह अपने रूप में सम्पूर्ण है।

इस आधार पर उसकी प्राचीन व्यवस्था की अच्छी जानकारी प्राप्त की जाय और जाँच की जाय कि वह गाव के लिये वास्तव में कहाँ तक लाभदायक है, और उसमें बाहर से कहाँ सुधार की जरूरत है। क्योंकि व्यवस्था की कोई नई स्कीम, जो उसकी मूल प्रकृति से मेल न खायगी, उसमें टिक न सकेगी। और यदि वह उसमें जबरदस्ती दाखिल की जायगी तो वही परिणाम होगा जो एक गली हुई मिट्टी की दीवार पर सीमेंट का पलस्तर करके उसे चिकनी और मज़बूत समझने का होता है। किसी दिन सीमेंट की पपड़ी असली दीवार का भी कुछ हिस्सा चिपकाये हुये गिर पड़ेगी और दीवार को और भी कमज़ोर बना देगी।

ऐसा देखा गया है कि गाँव वालों की रहन-सहन को बिना समझे-बूझे जो सुधार उनमें डाले जाते हैं, उनको वे ग्रहण नहीं करते और थोड़े ही समय तक रखकर वमन कर देते हैं। जैसे, अकसर बीमारी के दिनों में गाँवों में सरकारी स्वास्थ्य-विभाग की ओर से ऐसे परचे बाँटे जाते हैं जिनमें यह हिदायत की गई होती है कि खाली पेट घर से न निकलो। यह हिदायत योरप के लिये है, जहाँ चाय पीकर ही लोग बिछौना छोड़ते हैं। हमारे गाँवों में तो नब्बे फीसदी लोगों के पास सबेरे खाने को कुछ रहता ही नहीं, और गाँव वाले दोपहर से पहले कुछ खाते भी नहीं हैं। अतएव योरप के जीवन की हिदायत उनके जीवन के अनुकूल नहीं

गीतों को तुलसीदास का रचा हुआ मान भी लेते। पर 'रामलला नहछू' की उपस्थिति में वे बेतुके, और छोटे-बड़े पदवाले गीत तुलसीदास के रचे हुए नहीं माने जा सकते। ये गीत स्त्रियों ही के रचे हुए हैं, और केवल अधिक प्रचार के उद्देश्य से उनमें तुलसीदास का नाम जोड़ दिया गया है। हिन्दी में तुलसीदास के सिवा और किसी कवि की रचना सोहर छन्द में हमारे देखने में नहीं आई। सुना है, सूरदास ने भी 'सोहिलो' लिखा था, पर वह हमारे देखने में नहीं आया। तुलसीदास ने 'रामलला नहछू' सोहर छन्द में लिख तो दिया, पर 'नहछू' होते समय तुलसीदास का सोहर गाया नहीं जाता। स्त्रियों ने पिंगल और अलंकार से प्रमाणित तुलसीदास के सोहर को पुस्तक ही में पड़ा रहने दिया है।

जब किसी हिन्दू के यहाँ पुत्र पैदा होता है तब टोले-महल्ले की स्त्रियाँ उसके यहा एकत्र होकर सोहर गाती हैं। पुत्र के जन्म-दिन से लेकर कहीं-कहीं छ दिनों तक और कहीं-कहीं बारह दिनों तक सोहर गाया जाता है। कन्या पैदा होने पर सोहर प्राय. नहीं गाया जाता। यद्यपि कन्या को लोग लक्ष्मी-स्वरूप मानते हैं, पर उसके विवाह के इतने झंझट लोगों ने बढ़ा लिये हैं कि अब कोई कन्या के जन्म से प्रसन्न नहीं होता और न हर्ष-सूचक उत्सव ही मनाता है।

सोहर में शृङ्गार और हास्य-रस तो प्रधान ही हैं, पर करुण-रस की मात्रा भी कम नहीं है। ऐसा जान पड़ता है कि करुण-रस स्त्रियों को बहुत प्रिय है। सोहर ऐसे जन्मोत्सव-सम्बन्धी गीत में भी उन्होंने कहीं-कहीं ऐसा करुण-रस भर दिया है कि सुनते ही हृदय में करुणा उमड़ आती है और आँखों में आँसू छलक पड़ते हैं।

युक्तप्रान्त के पूर्वी ज़िलों में और बिहार मे जो सोहर गाये जाते है, उनमें बहुत ही कम अन्तर मिलता है। युक्तप्रान्त के पश्चिमी ज़िलों के सोहर में हमें वह रस नहीं मिला, जो पूर्वी ज़िलों के सोहर में है।

यहाँ हम कुछ चुने हुए सोहर अर्थ-सहित देते हैं—

[१]

गंगा जमुनवाँ के त्रिचवाँ तेवइया एक तपु करइ हो।
गंगा ! अपनी लहर हमैं देतिउ मैं मॉझाधार डूबित हो ॥ १ ॥
की तोहिं सासु-ससुर दुख कि नैहर दूर वसै।
तेवई ! की तोरे हरि परदेस कवन दुख डूबउ हो ॥ २ ॥
गंगा ! ना मोरे सासु-ससुर दुख नाहीं नैहर दूरि वसै।
गंगा ! ना मोरे हरि परदेस कोखि दुख डूबउ हो ॥ ३ ॥
जाहु तेवइया घर अपने हम न लहर देवइ हो।
तेवई ! आजु के नवएँ महिनवाँ होरिल तोरे होइहै हो ॥ ४ ॥
गंगा ! गहवरि पिअरी चढ़उवै होरिल जब होइहै हो।
गंगा ! देहु भगीरथ पूत जगत जस गावइ हो ॥ ५ ॥

गंगा-यमुना के बीच एक स्त्री तप कर रही है वह कहती है कि हे गंगा ! तुम मुझे अपनी लहर देती तो मँझधार में डूब जाती ॥१॥

गंगा ने कहा—हे स्त्री ! क्या तुझे सास-ससुर का दुःख है ? या नैहर दूर है ? या तेरा स्वामी परदेश मे है ? तू किस दुःख से डूबना चाहती है ? ॥२॥

स्त्री ने कहा—न मुझे सास-ससुर का दुःख है, न नैहर ही दूर है और न मेरे स्वामी ही परदेश में हैं। मैं निस्संतान होने के दुःख से डूबना चाहती हूँ ॥३॥

गंगा ने कहा—हे स्त्री ! तू अपने घर जा। मैं तुझे लहर न दूँगी। आज के नवें महीने तेरे पुत्र होगा ॥ ४ ॥

स्त्री ने कहा—हे गंगा ! मेरे पुत्र होगा तो मैं तुम्हें खूब चटक रंग की पीली साड़ी चढ़ाऊँगी। हे गंगा ! तुम मुझे भगीरथ जैसा पुत्र देना, संसार जिसका यश गाये ॥ ५ ॥

सन्तान की लालसा स्त्रियों में बड़ी प्रबल होती है। इस गीत में एक स्त्री संतान के लिये गंगाजी से प्रार्थना करती है। गंगाजी ने उस पर प्रसन्न होकर उसे वर दिया। स्त्री कृतज्ञता-प्रकाश करती हुई गंगाजी को पिअरी (पीला वस्त्र) चढ़ाने की मन्नत मानती है। सतान पाने का जब उसे वर मिल गया, तब वह यह चाहती है कि उसे भगीरथ जैसा प्रतापी पुत्र मिले, जिसका यश सारा संसार गाये। कैसी मनोहर अभिलाषा है! हिन्दू-स्त्री का लक्ष्य कितना ऊँचा है! स्त्रियों में माता होने की इच्छा तो स्वाभाविक होती है, पर वह कैसे पुत्र की माता होना चाहती है, यह बात महत्त्व की है। पुत्र का जन्म होने से पहले ही उस का आदर्श स्थिर कर रखना यह हिन्दुओं के उत्तम गृहस्थ-जीवन की एक सुन्दर छटा है। जब भगीरथ जैसा पुत्र उत्पन्न करने वाली माताएँ इस देश मे थीं, तभी भारत सुखी और स्वतन्त्र था।

[२]

चलहु न सखिया सहेलरि जमुनहि जाइय हो।
जमुना कै निर्मल नीर कलस भरि लाइय हो॥ १॥
केऊ सखी जल भरैं केऊ मुख धोवइँ हो।
केऊ सखी ठाढ़ी नहाइँ त्रिया एक रोवइ हो॥ २॥
की तुहे सासु ससुर दुख की नैहर दूरि बसै।
बहिनी! की तुमरा कन्त बिदेस कवन दुख रोवउ हो॥ ३॥
ना मोहे सासु-ससुर दुख ना नैहर दूरि बसै।
बहिनी! ना मोरा पिया परदेस कोखि दुख रोवउँ हो॥ ४॥

हे सखियो! चलो जमनाजी को चलें। जमनाजी का पानी बड़ा स्वच्छ है। चलो, घड़ा भर लायें॥ १॥

कोई सखी जल भर रही है, कोई मुँह धो रही है और कोई खड़ी नहा रही है। एक सखी रो रही है॥ २॥

एक सखी ने उससे पूछा—हे सखी ! क्या तुम्हे सास-ससुर का दु ख है ? या तुम्हारा नैहर दूर है ? या तुम्हारे स्वामी परदेश में हैं ? तुम किस दु ख से रो रही हो ? ॥ ३ ॥

उस स्त्री ने कहा—हे बहन ! न तो मुझे सास-ससुर का दु.ख है, न नैहर ही दूर है और न मेरे स्वामी ही परदेश में हैं। मैं तो कोख के दु ख से रो रही हूँ, अर्थात् मेरे सन्तान नहीं है ॥ ४ ॥

संतान की लालसा स्त्रियों में इतनी प्रबल होती है कि जिस स्त्री के बालक नहीं होते, उसका मन किसी भी मनोरंजन में नहीं लगता।

[३]

खिड़की हीं बैठली रानी त राजा पुकारइँ हो।
रानी ! एक संतति बिना कुल हीन, हम होवैं जोगी हो ॥ १ ॥
जो तुहूँ ए राजा जोगी होब हमहुँ जोगिन होबै हो।
राजा नगर पइठि भीख मँगबै दुनऊँ जने खावइ हो ॥ २ ॥
एकल पेड़ कदम कइ मोतियन कर हइ हो।
अब तेही तर ठाढ़ भगवान त बालक उरेहइँ हो ॥ ३ ॥
राम ही राम पुकारीला राम नाहीं बोलइँ हो।
राम हमरी कवन तकसिरिया त मुखवउ न बोलउ हो ॥ ४ ॥
कोऊ के दिये राम दुइ चार कोऊ के दस पाँच हो।
राम हमरी नगरिया काहे भूलल त हमरी कवन गति ॥ ५ ॥
रजवा तो हउए बहेलिया त रनियाँ बहेलिन हो।
राजा केतनेक जियरा बझवलैं संतति नाहीं पइहइँ हो ॥ ६ ॥
सास ससुर नाहीं मनलू त ननदा तुकरलेउ हो।
रानी जेठ क परछाहीं न बरचलू त भुललैं नरायन ॥ ७ ॥
सास ससुर हम मानब ननदा दुलारब हो।
राम जेठ क परछहियाँ बरइबै समुझैं परमेसर ॥ ८ ॥

मोरे पिछवरवाँ बढ़इया बेगि ही चलि आवउ हो।
बढ़ई गढ़ि देहू काठे क बलकवा मैं जियरा बुझावउँ—
मन समुझावउँ हो ॥ ६ ॥
काठे क बलक गढ़ि दिहलें अँगने धरी दिहलइँ हो।
बाबुल मोरे अँगने रोइ न सुनावउ मैं बझिनि कहावउँ हो॥१०॥
दैव गढ़ल जो मैं होतेउँ तो रोइ सुनउतेउँ हो।
रानी बढ़ई क गढ़ल होरिलवा रोवन नाहीं जानइ हो ॥११॥

रानी खिडकी में बैठी हुई थीं। राजा ने पुकारकर कहा—हे रानी। हम सतति विना कुलहीन हैं। मैं जोगी होना चाहता हूँ ॥ १ ॥

रानी ने कहा—हे राजा! तुम जोगी होगे तो मैं जोगिन होऊँगी। हम दोनों गाँव से भीख माँगकर लायेंगे और खायेंगे ॥ २ ॥

कदम्ब का एक पेड है। जिसमें मोती फूल रहे हैं। भगवान् उसके नीचे खड़े होकर बालक रच रहे हैं ॥ ३ ॥

राजा ने राम, राम कहकर पुकारा। पर राम नहीं बोले। राजा ने कहा—हे राम! मेरा क्या अपराध है, जो तुम मुँह से नहीं बोलते? ॥४॥

हे राम! तुमने किसी को तो दो-दो चार-चार बालक दिये। किसी को दस-पाँच। भला, तुम मेरे गाँव को कैसे भूल गये? मेरी क्या दशा होगी? ॥५॥

राम ने कहा—राजा! तू तो पूर्व-जन्म में बधिक था। तेरी रानी बधिकिन थी। तू ने कितने ही जीवो को फँसाया था। तुझे सतति नहीं मिलेगी? ॥६॥

हे रानी! तू ने सास-ससुर की इज़्ज़त नहीं की। ननद को तू ने 'तू' करके पुकारा। जेठ की परछाईं से परहेज नहीं रक्खा। इसी से भगवान भी तुझको भूल गये। इसी से तुमको भी सतान नहीं मिलेगी ॥७॥

रानी ने कहा—हे राम! मैं अब सास-ससुर को मानूँगी। ननद

को दुलारूँगी। जेठ की परछाईं भी बचाऊँगी। तुम मेरे हृदय की व्यथा समझो ॥८॥

रानी कहती है—मेरे पिछवाड़े बढ़ई रहता है। हे बढ़ई! जल्दी आओ। मेरे लिये काठ का एक लड़का गढ़ दो। मैं उससे जी बहलाऊँगी ॥९॥

बढ़ई ने काठ का बालक गढ़ दिया और आँगन में लाकर रख दिया। रानी ने कहा—हे बेटा! मेरे आँगन में रोकर मुझे सुनाओ। मैं बाँझ कहलाती हूँ, मेरा यह कलंक तो मिटे ॥१०॥

काठ के बालक ने कहा—मैं यदि भगवान् का बनाया होता तो रोकर सुनाता भी। हे रानी! बढ़ई का गढ़ा हुआ बालक रोना नहीं जानता ॥११॥

इस गीत में पुत्रहीन माता-पिता का कैसा करुणाजनक मज़ाक है! सारा गीत एक सुन्दर नाटक के प्लाट की तरह मनोहर है। पुत्र के लिये राजा-रानी का तप करने जाना, वन में भगवान् से मिलना, प्रश्नोत्तर करना, पुत्रहीन, होने का कारण जानना, भविष्य के लिये सत्कर्म की प्रतिज्ञा करना, घर लौट आना, घर में मन बहलाने के लिये काठ का लड़का बनवाना और उस निर्जीव बालक से भी संतोष न मिलना, एक से एक बढ़कर रोचक सीन इस गीतरूपी नाटक में हैं। पुत्रहीन दम्पति की बड़ी ही विचित्र अन्तर्पीड़ा इस गीत में छिपी हुई है।

[४]

सोरहो सिंगार सीता कइलीं अटरियां चढ़ि गाइलिनि।
रघुनन्दन क डासल सेज सिरहाने ठाढ़ी भइलिनि ॥ १ ॥
पलक उघारि राम चितवइँ अभरन देखि भरमइँ।
सीता कवन जरूर तोहरे लागल एतनी राति अइलिउ ॥ २ ॥

काहे लागी कइलू सिंगार काहे रे लागी अभरन।
सीता काहे लागी चढलिउ अटरिया देखत डर लागइ॥ ३।
आप लागी कइलीं सिंगार आप लागल अभरन।
राजा रौरे तीन लोक क ठाकुर भेंट करै आइउँ॥ ४।
तू हूँ तउ तीन लोक के ठाकुर तोहैं देख जग डरै।
राजा तिरिया अलप सुकुमार सेजरिया देखि भरमइ॥ ५।
नइहरै न बाटैं बीरन भइया ससुरे न देवर।
राजा मोरे गोदियाँ न जन्मल बलकवा अहक कैसे पुजिहईं॥ ६।
लाल पियर न पहिरलीं चउक ना बैठलिउँ।
सीता के ढुरला नयनवन आँसु पटुका राम पोछईं॥ ७।
लाल पियर पहिरवइ चउकन बइठइबइ।
रानी तोहइँ रखबइ पगड़िया के पेच नयनवाँ के भीतर॥ ८।

सीता सोलह शृङ्गार करके अटा पर चढ़ गईं। वहां रामचन्द्र जी की सेज बिछी थी। सीता सिरहाने खड़ी हुईं ॥१॥

राम ने पलक उठाकर देखा और गहने देखकर चकित हुए। उन्होंने पूछा— हे सीता! ऐसी क्या जरूरत पड़ी जो तुम इतनी रात में यहां आई हो? ॥२॥

किसलिये तुम ने शृङ्गार किया और किसलिये गहने पहने हैं? हे सीता! तुम किस लिये अटा पर आई हो? देख कर मुझे आशंका होती है ॥ ३ ॥

सीता ने कहा— हे नाथ! आप के लिये मैंने शृङ्गार किया है और आपके लिये ही गहने पहने हैं। आप तीनों लोकों के स्वामी हैं। मैं आप से भेंट करने आई हूँ ॥४॥

आप तो तीन लोक के ठाकुर हो। आप को देखकर तो सारा संसार

डरता है। मैं तो एक नादान, अल्पवयस्का, सुकुमार स्त्री हूँ। सेज देख कर मैं चकित होती हूँ ॥ ५ ॥

न तो मेरे नैहर में कोई भाई है न ससुराल में देवर। हे राजा! मेरी गोद में कोई बालक भी नहीं। मेरी लालसा कैसे पूरी हो ॥ ६ ॥

न मैंने कभी लाल पीली साड़ी पहनी, न वेदी पर बैठी। यह कहते-कहते सीता के नयनों से आँसू बहने लगे। राम दुपट्टे से उसे पोंछने लगे ॥ ७ ॥

राम ने कहा— हे रानी! मैं तुमको लाल पीला वस्त्र पहनाऊँगा। वेदी पर बैठाऊँगा। सीता! मैं तुमको अपनी पगड़ी में सरपेंच की भांति शीर्षस्थान दूँगा और आँखों के भीतर रक्खूँगा ॥ ८ ॥

विषय-सुख की अपेक्षा स्त्रियों में माता होने की लालसा अधिक बलवती होती है। पूर्वकाल में, जब के बने ये गीत हैं, स्त्री-पुरुष विषय-वासना की तृप्ति के लिये विवाह नहीं करते थे, बल्कि संतान और समाज की सेवा के लिये वे धर्म के अटूट बंधन में अपने को बाँधते थे। इसी से इस गीत के राम और सीता अलग अलग सोते थे यकायक शयनागार में सीता का आना राम को आनन्द-वर्द्धक नहीं, बल्कि आश्चर्य और भय-कारक जान पड़ा था।

आजकल इसके बिल्कुल विपरीत है। क्योंकि अब स्त्री-पुरुष दोनों आर्यों के प्राचीन आदर्श से अलग हो गये हैं। अब तो स्त्री का पुरुष से अलग रहना ही आश्चर्य और भय की बात समझी जाती है।

[५]

सासू मोरी कहेलि बँझिनियाँ ननद ब्रजवासिनि हो।
रामा जिनकी मैं बारी रे बियाही उइ घर से निकारेनि हो ॥ १ ॥
घर से निकरि बँझिनियाँ जङ्गल बिच ठाढ़ी हो।
रामा बन मे निकरी बघिनियाँ तो दुखु सुखु पूँछइ हो ॥ २ ॥

तिरिया ! कौनी विपति की मारी जङ्गल बिच ठाढ़ी हो।
सासु मोरी कहेली बँझिनियाँ ननद ब्रजबासिनि हो ॥ ३ ॥
बाघिन ! जिनकी मैं बारी बियाही उइ घर से निकारेनि हो।
बाघिन ! हमका जो तुम खाइ लेतिउ विपतिया से छूटित हो ॥ ४ ॥
जहवाँ से तुम आइउ लउटि उहाँ जाओ तुमहिं नाहीं खइबइ हो।
बाँझिनि ! तुमका जो हम खाइ लेबइ हमहुँ बाँझिन होबइ हो ॥ ५ ॥
उहाँ से चलेलि बँझिनियाँ बिंबउरी पासे ठाढ़ी हो।
रामा बिंबउरि से निकरेलि नगिनियाँ तो दुखु सुखु पूँछइ हो ॥ ६ ॥
तिरिया ! कौने विपति की मारी बिंबउरी पासे ठाढ़ी हो।
सासु मोरी कहेलि बँझिनियाँ ननद ब्रजबासिनि हो ॥ ७ ॥
नागिन ! जिनकी मैं बारी रे बियाही उइ घर से निकारेनि हो।
नागिनि ! हम का जो तुम डसिलेतिउ विपति से हम छूटित हो॥ ८ ॥
जहवाँ से तुम अइउ लउटि तहाँ जावो तुमहिं नाहीं डसिबइ हो।
बाँझिनि ! तुमका जो हम डसि लेबइ हमहूँ बाँझिनि होबइ हो ॥९॥
उहवाँ से चलली बँझिनिया मइया द्वारे ठाढी हो।
भितरा से निकरी मयरिया तो दुखु सुखु पूँछइ हो ॥१०॥
बिटिया कउनि विपति तुमरे ऊपर उहाँ से चली आइउ हो।
सासु मोरी कहेलि बँझिनियाँ ननद ब्रजबासिनि हो ॥११॥
मइया ! जिनकी मैं बारि बियाही उइ घर से निकारेनि हो।
मइया ! हमका जो तुम राखि लेतिउ विपति से हम छूटित हो ॥१२॥
जहवाँ से तुम आइउ लउटि उहाँ जाओ तुमहिं नाहीं रखिबइ हो।
बिटिया तुमका जो हम राखि लेबइ बहू बाँझिनि होइहईं हो ॥१३॥
उहवाँ से चलेली बँझिनियाँ जँगल बिच आई हो।
धरती ! तुमहीं सरन अब देहु बँझिनि नाम छूटइ हो ॥१४॥

जहवाँ से तुम आइउ लउटि उहाँ जाओ तुमहिं हम न राखव हो।
बाँझिनि! तोहँका जो हम राखि लेई हमहुँ होव ऊसर हो ॥ १५ ॥

मेरी सास मुझे बाँझ कहती है और ननद कहती है कि तू ब्रजबासिन है। हे राम! बालावस्था में जिनसे मेरा विवाह हुआ था, उन्होंने भी मुझे घर से निकाल दिया ॥ १ ॥

बाँझ स्त्री घर से निकलकर जङ्गल के बीच में खड़ी है। जङ्गल में से बाघिनी निकली। वह बाँझ से उसका सुख-दुख पूछने लगी ॥ २ ॥

हे स्त्री! तुझ पर ऐसी क्या विपत्ति पड़ी है जो तू इस भयानक जंगल में अकेली खड़ी है? स्त्री ने कहा—हे बाघिनी! मेरी सास मुझे बाँझ कहती है, और ननद ब्रजवासिन ॥ ३ ॥

जिनकी मैं विवाहिता हूँ, उन्होंने बाँझ कहकर मुझे घर से निकाल दिया है। हे बाघिनी! यदि तुम मुझे खा लेती तो मैं इस विपत्ति से छूट जाती ॥ ४ ॥

बाघिनी ने कहा—तुम जहाँ से आई हो, वहीं लौट जाओ। मैं तुम्हें न खाऊँगी। यदि मैं तुम को खा लूँ तो मैं भी बाँझ हो जाऊँगी ॥ ५ ॥

बाँझ वहाँ से चलकर साँप की बांबी के पास पहुँची। बाँबी में से नागिन निकली। उसने बाँझ का सुख दुख पूछा ॥ ६ ॥

हे स्त्री! किस विपत्ति के कारण तुम बाँबी के पास आई हो? स्त्री ने कहा—मेरी सास मुझे बाँझ कहती है और ननद कहती है कि तू ब्रजबासिन है ॥७॥

जिनके साथ मेरा विवाह हुआ है, उन्होंने बाँझ समझकर मुझे घर से निकाल दिया है। हे नागिन! यदि तुम मुझे डस लेती तो मैं विपत्ति से छूट जाती ॥८॥

नागिन ने कहा—जहाँ से तुम आई हो, वहीं लौट जाओ। मैं तुम्हें डस लूँगी तो मैं भी बाँझ हो जाऊँगी ॥९॥

बाँझ वहाँ से चलकर अपनी माँ के द्वार पर आकर खड़ी हुई। माँ घर में से बाहर निकली और उसने बेटी का सुख-दुख पूछा ॥१०॥

हे बेटी! तुझ पर ऐसी क्या विपत्ति पड़ी जो तुम वहाँसे चली आई? बेटी ने कहा—हे माँ! सास मुझे बाँझ कहती है। ननद ब्रजबासिन कहती है ॥११॥

हे माँ! जिनसे मेरा विवाह हुआ था उन्होंने मुझे बाँझ कहकर घर से निकाल दिया। हे माँ! यदि तुम मुझे अपने घर में रख लेती तो मैं विपत्ति से छुटकारा पा जाती ॥१२॥

माँ ने कहा—जहाँ से तुम आई हो, वहीं लौट जाओ। मैं तुम्हें अपने यहाँ नहीं रहने दूँगी, यदि मैं तुमको रख लूँ तो मेरी बहू बाँझ हो जायगी ॥१३॥

बाँझ वहाँ से चल कर जगल में आई और धरती से बोली—हे धरती माता! तुम्हीं अब मुझे शरण दो ॥१४॥

धरती ने कहा—जहाँ से तुम आई हो, वहीं लौट जाओ। हे बाँझ! यदि मैं तुमको रख लूँगी तो मैं भी ऊसर हो जाऊँगी ॥१५॥

हा! हिन्दू-समाज में स्त्री का बाँझ होना कितने परिताप का विषय है! बाँझ से बाघिन और नागिन तक घृणा करती हैं। यहाँ तक कि असली माता और सबको आश्रयदाता पृथ्वी भी बाँझ को स्थान नहीं देतीं। हिन्दू-समाज की रचना ही इस प्रकार की हुई है कि उसमें बाँझ के लिये आदर का स्थान नहीं है। इससे प्रत्येक स्त्री संतानवती होने ही में अपना गौरव और कल्याण समझती है।

[६]

सोने के खड़उवाँ राजा दसरथ वेइली तर ठाढ़ भये।
वेइली ! पतवा कंचन अस तोर तो फल कैसे निरफल हो ॥१॥
भल वउरानेउ राजा दसरथ किन वउरावा हो।
राजा ! तोहरे घर रनिया कौसिल्या उनहीं से पूछउ हो ॥२॥
सोने के खड़उवाँ राजा दसरथ वेदिया पर ठाढ़ भये।
मोरी रानी काहे तोहरा वदन मलीन कंवल नाहीं हुलसइ हो ॥३॥
भल वउराने राजा दसरथ किन वउरावा हो।
राजा बिनु रे सन्तति कुल हीन कंवल कैसे हुलसइ हो ॥४॥
सोनवा तौ हमरे गिनती नाही चंदियाँ के ढेर लागल रे।
मोरी रानी ! वरहा भवन कै अजोध्या दुनौं जने भेलसव हो ॥५॥
सोनवाँ तो मोरे लेखे राखी भा चंदिया तो माटी भा है रे।
राजा ! वरहा भवन कै अजोध्या तो मोरे लेखे जरिगै है हो ॥६॥
तू राजा होवउ तपसी तौ हम धना तपसिन हो।
मोरे राजा ! विन्दरावन के कुटियवा दूनों जने तप करवइ हो ॥७॥
वन से निकरे एक जोगिया तो राजा से पूछइं रे।
राजा कवन तोहरे जियरा संकट तो मधुवन तप करउ हो ॥८॥
का रे कहउं मोरे जोगिया तौ का तुम पूछव रे।
जोगिया विन रे सन्तति कुलहीन तो मधुवन तप करउँ हो ॥९॥
झोलिया से काढिनि भभुतिया तो राजा का दीहिनि रे।
राजा आठ रे महीना नौ लागत राम जन्म लेइहइ हो,
अजोध्या राजा खेइहइँ हो ॥१०॥
आठ महीना नौ लगतै श्रीरामजी जन्म लीन्हेउ हो।
एहो वाजै लागी आनंद वधैय्या उठन लागे सोहर हो ॥११॥

सभवै वइठे हैं राजा दसरथ सुनहु कौसिल्या रानी हो।
रानी उहइ बेइलिया कटाइवइत त जिन मोका वोली बोला हो॥१२॥
मचियै बइठी कौसिल्या रानी सुनो राजा दसरथ हो।
मोरेराजा 'दुधवन बेइलीसिंचइबइ त जिन मोकाबुद्धि दियेहो॥१३॥

सोने के खड़ाऊँ पर चढ़े हुए राजा दशरथ लता के नीचे खड़े हुए। राजा ने पूछा—तुम्हारा पत्ता तो सोने जैसा है, पर तुम में फल क्यों नहीं हैं ? ॥१॥

लता ने कहा—राजा दशरथ ! तुम्हारी मति मारी गई है क्या ? तुम्हारे घर मे कौशल्या रानी हैं, उनसे क्यों नहीं पूछते ? ॥२॥

सोने के खड़ाऊँ पर चढ़े हुए राजा दशरथ वेदी पर आकर खड़े हुए। उन्होंने रानी से पूछा—रानी ! तुम्हारा मुँह उदास क्यों है ? हृदय-कमल विकसित क्यों नहीं है ? ॥३॥

रानी ने कहा—राजा ! आपकी मति किसने हर ली है ? बिना संतान के हृदय-कमल कैसे विकसित हो सकता है ? ॥४॥

राजा ने कहा मेरी प्यारी रानी ! मेरे घर में सोने की गिनती नहीं। चाँदी के ढेर लगे हुए हैं। अयोध्या मे हमारे बारह महल हैं। हम दोनों सुख भोगेंगे ॥५॥

रानी ने कहा—सोना मेरे लिये राख और चाँदी मिट्टी है। संतान बिना मेरे लिये बारह महलों की अयोध्या जल गई है ॥६॥

हे राजा ! तुम तपस्वी हो और मैं तपस्विनी। दोनों चलकर वृन्दा-बन मे तप करें ॥७॥

दोनों तप करने लगे। बन मे एक योगी निकले। उन्होंने पूछा—हे राजा ! तुम्हारे प्राण पर क्या संकट पड़ा है जो तुम तप कर रहे हो ? ॥८॥

राजा ने कहा—हे योगी ! मैं तुमको क्या बताऊँ ? बिना संतान के हम कुलहीन हैं। इससे तप कर रहे हैं ॥९॥

योगी ने अपनी झोली में से विभूति निकाल कर राजा को दी और कहा—हे राजा! नवाँ महीना लगते ही तुम्हारे घर में राम जन्म लेंगे और अयोध्या का राज खेयेंगे ॥१०॥

आठवें के बाद नवाँ महीना लगते ही राम ने जन्म लिया। आनंद बधाई बजने लगी और सोहर गाया जाने लगा ॥११॥

राजा को लता का ताना भूला नहीं था। सभा में बैठे हुए उन्होंने रानी कौशल्या से कहा—हे रानी! मैं उस लता को कटा डालूँगा, जिसने मुझे ताना मारा था ॥१२॥

मचिया पर बैठी हुई रानी कौशल्या ने कहा—हे राजा! सुनो, उस लता को दूधसे सिँचाओ जिसने मुझे बुद्धि दी है। अर्थात् निस्संतान होने की याद दिलाकर मुझे संतान-प्राप्ति के लिये उत्साहित किया है ॥१३॥

संतान हीन होना बड़ी लज्जा की बात है। निरसंतान व्यक्ति का मज़ाक एक लता भी उड़ा सकती है। इस गीत की अंतिम पंक्तियों से पुरुष और स्त्री के स्वभाव का भी पता चलता है पुरुष में बदला लेने की प्रवृत्ति बहुत होती है। राजा दशरथ को लता का ताना भूला नहीं था, और वे उसे कटाने जा रहे थे। पर स्त्री का हृदय क्षमाशील होता है। कौशल्या ने लता के ताने को और ही रूप दे दिया। उन्होंने उसे क्षमा ही नहीं किया बल्कि उसे दूध से सिँचाने की भी इच्छा प्रकट की। पुरुष कठोर गुणों का समूह और स्त्रियाँ कोमल गुणों की।

[७]

भोर भये भिनुसार चिरइया एक बोलइ।
राजा झपटि के खोलईं केवरिया हेलिन डीठ परिगै।
परि गै हेलिनिया क डीठ राजै के मुख ऊपर ॥ १ ॥
हेलिन विनवै हेलवा सँग अपने पुरुख सँग।
हेलवा ज देखेउँ निरवंसी गुसइयाँ कैसे पुरवैं ॥ २ ॥

चुप रहु हेलिनी छिनारि तैं जतिया का ' पातरि।
तीन भुअन कर राजा कह्यो निरबसी ॥ ३ ॥
चुप रहु हेलवा दहिजरा तैं जतिया क पातर।
हेलवा तीनि उन्हा करि रानी तीनौं जनि बाँझिनि ॥ ४ ॥
यतना सुन्यौ राजा दसरथ जियरा दुखित भये।
राजा गोडवा मुडवा तानेनि दुपट्टा सुतैं धौराहर ॥ ५ ॥
घरिय घरिय दिन दोपहर पहर नहिं बीतै।
मोरा सिझलै जेवनवा जुडाय रजै नहिं आये ॥ ६ ॥
अरे रे राजा जी के चेरिया त हमरी लउँडिया।
चेरिया सिझलै जेवनवा जुडाय रजै नहिं आये ॥ ७ ॥
चेरिया ज चढ़ि गइ अटरिया रजै क जगावइ।
राजा सिझलै जेवनवाँ जुड़ाय विकल रनिवासै ॥ ८ ॥
राजा जब आये हैं महलिया बेदिया चढ़ि बइठे।
राजा कौन बिरोग तुमरे जियरा त हमसे बतावहु ॥ ६ ॥
पाँच पदारथ मोरे घर छठौं नरायन।
रानी जतिया क पातर हेलिनियाँ कहै निरबसी ॥१०॥
बाउर हो राजा बाउर किन बउरावा।
राजा जो विधि लिखा है लिलार तहैं भरि पाउब ॥११॥
बाउर हो रानी कौसिल्या किन बउराई।
रानी देहु न हमरा अयनवा देखहुँ मुख आपन ॥१२॥
ऐनहु लै मुख देखिन जियरा दुखित भये।
रानी करर बरर होइगे बार गोसइयाँ कैसे पुरवैं ॥१३॥
बाउर हो राजा बाउर किन बउरावा।
राजा जो विधि लिखा है लिलार तहैं भरि पाउब ॥१४॥

बाउर हो रानी कौसिल्या किन बउराई।
रानी देहु न मोरि बैसखिया मैं तप करइ जावइ ॥१५॥
एक वन डाकैं दुसर वन तीसरे विन्द्राबन।
विन्द्रैवन के विचवॉ त राजा ध्यान लायनि ॥१६॥
वन से निकरेनि एक तपसी पुछैं राजा दसरथ।
कौन विरोग तुमरे जियरा जो इतनी दूरि आये ॥१७॥
पॉच पदारथ मोरे घर छठैं नारायन।
तपसी जतिया क पतिरी हेलिनिया कहइ निरवसी ॥१८॥
जाहु रजै घर अपने पूत तोरे होइहैं।
राजा सुनि लिहैं तोह्रो पुकार जगत कै मालिक ॥१६॥
होत विहान लोहि फाटत होरिल जनम लिहे,
राम जनम लिहे।
बाजै लागी अनन बधइया गावैं सखि सोहर ॥२०॥
घर घर फिरैं राजा दसरथ पंडित बुलावइँ।
पंडित खोलहु न पोथिया पुरान तो सुघरी विचारहु ॥२१॥
बहुतै सुघरी रामा जनमे तो रोहनी नखत में।
राजा बारह बरस के होइहईं त बन के सिधरिहीं ॥२२॥
बभना के पूत जौ न होतेउ त जियरा मरवउतेउ।
मोरि इतनी तपस्या के राम त बन के सुनायेउ ॥२३॥
मन कै दुखित राजा दसरथ सुतें धबराहट।
मन कै उछाहिल कौसिल्या रानी पटना लुटावईं ॥२४॥
बाउर हो रानी कौसिल्या किन बउराई।
रानी धीरे धीरे पटना लुटावउ राम वन जइहीं ॥२५॥
बाउर हो राजा दसरथ किन बौराबा।
राजा छुटल बॅझिनिया क नाम भले वन जइहीं ॥२६॥

सवेरा होते ही एक चिड़िया बोला करती है। उसकी बोली सुनकर राजा दशरथ ने झपट कर किवाड़ खोला तो मेहतरानी पर उनकी दृष्टि पड़ गई ॥१॥

मेहतरानी की दृष्टि भी राजा के मुख पर पड़ गई। उसने मेहतर से कहा—आज सवेरे ही सवेरे निरबंसिये (सन्तान हीन) का मुँह देख आई हूं। देखूं, ईश्वर क्या करते हैं? ॥२॥

मेहतर ने कहा—ऐ छिनाल मेहतरानी! चुप रह। तू नीच जाति की स्त्री है। तू ने तीन भुवन के महाराज को निर्वंशी कैसे कहा? ॥३॥

मेहतरानी ने कहा—दाढ़ीजार मेहतर! तू चुप रह। तू नीच जाति का पुरुष है। उनके तो तीन-तीन रानियाँ हैं, तीनों बाँझ हैं ॥४॥

राजा दशरथ ने यह बात सुन ली और वे मन में बहुत दुःखी हुए। वे सिर से पैर तक चादर तानकर धौरहर पर जाकर सो रहे ॥५॥

कौशल्या चिन्ता करने लगीं—घड़ी-घड़ी करके दोपहर हो गया। पहले तो एक पहर भी नहीं होता था कि राजा आ जाते थे। रसोई ठंडी पड़ती जा रही है। राजा क्यों नहीं आये? ॥६॥

ए राजा की चेरी! ए मेरी दासी! रसोई ठंडी हो रही है। राजा नहीं आये ॥७॥

चेरी अटा पर चढ़ गई। उसने राजा को जगाकर कहा—राजा रसोई ठंडी हो रही है। सारा रनिवास विकल है ॥८॥

राजा महल में आये। वेदी पर बैठ गये। कौशल्या ने पूछा—राजा! तुम्हारे जी में क्या दुःख है? मुझे बताओ ॥९॥

राजा ने कहा—पाँच पदार्थ मेरे घर में हैं। छठें नारायण हैं। हे रानी! नीच जाति की स्त्री मेहतरानी मुझे निरबंसिया कहती है ॥१०॥

रानी ने कहा—तुम बहुत भोले हो। हे राजा! जो भाग्य में लिखा है, वही मिलेगा ॥११॥

राजा ने कहा—रानी ! तुम पागल हो। ज़रा मेरा दर्पण तो मुझे दो, मैं अपना मुँह तो देखूँ ॥१२॥

राजा ने दर्पण लेकर मुँह देखा। वे दुःखी हुए। बोले—हे रानी ! बाल तो अधपके हो गये। देखें, ईश्वर कैसे विताता है ? ॥१३॥

रानी ने कहा—राजा ! तुम भोले हो। किसने तुमको भरमाया है ? हे राजा ! जो ब्रह्मा ने माथे में लिख दिया है, वही मिलेगा ॥१४॥

राजा ने कहा—रानी ! तुम्हारी समझ ठीक नहीं। मेरी लाठी लाओ। मैं तप करने जाऊँगा ॥१५॥

एक वन से दूसरे में, दूसरे से तीसरे में गये तो वृन्दावन मिला। वृन्दावन के बीच में बैठकर राजा ने भगवान् का ध्यान किया ॥१६॥

वन में से एक तपस्वी निकले। उन्होंने पूछा—हे राजा ! तुमको क्या दुःख है ? जो तुम इतनी दूर आये हो ॥१७॥

राजा ने कहा—मेरे घर में किसी चीज़ की कमी नहीं है। पर हे तपस्वीजी ! नीच जाति की स्त्री मेहतरानी ने मुझे निर्वंशी कहा है ॥१८॥

तपस्वी ने कहा—हे राजा ! अपने घर जाओ। तुम्हारे पुत्र होगा। संसार के स्वामी ने तुम्हारी पुकार सुन ली है ॥१९॥

सवेरे पौ फटते ही पुत्र ने जन्म लिया, राम ने अवतार लिया। आनन्द की बधाई बजने लगी और सखियाँ सोहर गाने लगीं ॥२०॥

राजा दशरथ घर-घर घूमकर पंडितों को बुला रहे हैं। राजा पूछते हैं—हे पंडित ! अपनी पोथी खोलो न ? बताओ, लड़का कैसी घड़ी में पैदा हुआ है ? ॥२१॥

पंडित ने कहा—बहुत अच्छी घड़ी में राम का जन्म हुआ है। रोहिणी नक्षत्र में जन्म हुआ है। हे राजा ! बारह वर्ष के होंगे तो वन को चले जायँगे ॥२२॥

राजा ने कहा—तुम ब्राह्मण के लड़के न होते तो मैं तुम्हें जान से मरवा डालता। इतनी तपस्या के बाद जो राम मुझे मिले हैं, तुमने कहा कि वे बन को चले जायेंगे ? ॥२३॥

राजा मन में दुःखी होकर अटा पर जाकर सो रहे। कौशल्या रानी को पुत्र-जन्म से बड़ा उत्साह था। वे धन लुटाने लगीं ॥२४॥

राजा ने कहा—हे कौशल्या रानी ! पागल मत हो। किसने तुम्हें बावली कर दिया है ? धीरे-धीरे धन लुटाओ। राम बन को जायेंगे ॥२५॥

रानी ने कहा—राजा ! तुम्हारी बुद्धि कहाँ है ? राम बन को जायँगे तो क्या हुआ ? मेरा बाँझ का नाम तो छूट गया। ॥२६॥

हिन्दू-समाज में वंश-हीन होना बड़े पाप का फल समझा जाता है। इस विचार की छाप आज भी हिन्दुओं के मस्तिष्क में मौजूद है। वंशहीन व्यक्ति, चाहे वह राजा दशरथ ही क्यों न हो, मेहतर द्वारा भी तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता है। उच्च समाज में उसकी अप्रतिष्ठा का तो कहना ही क्या ?

इस गीत में भी स्त्री की बुद्धि का अच्छा चमत्कार देखने को मिलता है। पुरुष बात-बात में व्यथित हो जाता है, पर स्त्री की बुद्धि आदि से अन्त तक गंभीर और निश्चित रहती है।

[८]

अरे अरे श्यामा चिरइया झरोखवै मति बोलहु।
मोरी चिरई ! अरी मोरी चिरई ! सिरकी भितर बनिजरवा
जगाइ लइ आवउ, मनाइ लइ आवउ ॥ १ ॥
कवने बरन उनकी सिरकी कवने रँग बरदी।
बहिनी ! कवने बरन बनिजरवा जगाइ लै आई मनाइ लै आई ॥२॥
जरद बरन उनकी सिरकी उजले रंग बरदी।
सँवर बरन बनजरवा जगाइ लै आवउ मनाइ लै आवउ ॥ ३ ॥

सिरकी भितर बनिजरवा सोवहु की जागइ।
अरे मोरे वनिजर तोर धन चिट्ठी लिखि भेजो उठो चिट्ठी बाँचो॥४॥
चिठियाबँचतवनिजरवा हिरदैयाँ लैलगावइकरेजवाछ्पटावइ।
अरे मोरे वनजर! तरर तरर चुवै अँसुवा रुमलिया लिहे पोंछइ॥५॥
सवना भदौवाँ अँधियरिया अमवाँ नाहीं बौरइ,
अमिलिया नाहीं झपसइ।
मोरी चिरई! अरी मोरी चिरई! बाऊ बहुरिया कै ठनगन
अमवाँ जे माँगइ अमिलिया जे माँगइ॥६॥
खैरा सुपरिया घुनन लागे झिंगुर लागे कापड।
जौ मोरी बरदी बिकइहैं तवै घर आइब॥७॥
मचियइ बइठी ससुइया तो सुरजा मनावैं।
अरे मोरे सुरजा मेहरी क चाकर मरदवा त अमवाँ ढुँढन
गये कब दहुँ आवैं॥८॥

हे श्यामा चिड़िया! खिड़की पर मत बोलो। हे प्यारी चिड़िया! सिरकी में मेरा बनजारा (व्यापारी) है, उसे जगा लाओ। उसे मना लाओ॥१॥

श्यामा ने कहा—हे बहन! तुम्हारे बनजारे की सिरकी किस रंग की है? उसकी बरदी किस रंग की है? बनजारा स्वयं किस रंग का है? जिसे मैं जगा लाऊँ और मना लाऊँ॥२॥

स्त्री ने कहा—पीले रङ्ग की तो सिरकी है। सफेद रङ्ग की बरदी है और साँवले रङ्ग का बनजारा है। उसे जगा लाओ, उसे मना लाओ॥३॥

श्यामा ने बनजारे के पास जाकर कहा—सिरकी के भीतर सोते हो या जागते? हे बनजारा! उठो। तुम्हारी प्यारी स्त्री ने चिट्ठी भेजी है, उसे बाँचो॥४॥

बनजारे ने चिट्ठी बाँचकर उसे हृदय में लगाया, कलेजे से चिपका

लिया। उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली। रुमाल से वह उसे पोंछने लगा ॥५॥

बनजारा कहने लगा—सावन-भादों का घोर अंधकार, भला आज-कल न आम में बौर आते हैं और न इमली ही फलती है। पर हे मेरी प्यारी चिड़िया! मेरी भोली-भाली स्त्री का हठ तो देखो, वह आम और इमली माँगती है ॥६॥

मुझे इतने दिन आये हो गये कि खैर सुपारी में घुन लग गये और कपड़ों में झींगुर। अब तो मेरी बरदी बिकेगी, तभी मैं घर आऊँगा ॥७॥

मचिया पर बैठी हुई सास सूर्य से प्रार्थना कर रही है—हे मेरे सूर्य! स्त्री का दास पुरुष स्त्री के लिये आम ढूँढने गया है, इमली ढूँढने गया है। पता नहीं, कब आयेगा ॥८॥

इस गीत में पुराने जमाने का चित्र है, जब व्यापारी लोग, जिन्हें बनजारा कहते थे, चीजें लादकर दूर देशों में बेचने जाया करते थे और बहुत दिनों पर लौटते थे। यह बात खास ध्यान देने की है कि उन दिनों स्त्रियाँ भी पढ़ी-लिखी होती थीं और अपने पतियों को पत्र लिखकर भेजा करती थीं। श्यामा पक्षी के हाथ पत्र या संदेशा भेजना तो वैसा ही है, जैसा मेघदूत में मेघ-द्वारा और नल-दमयन्ती की कथा में हंस-द्वारा समाचार भेजे गये थे।

[९]

मचियहिं बैठी हैं सासू त बहुआ से पूछइँ रे।
बहुआ काहे तोर मुँहा पियरान गोड घहरावहि रे ॥ १ ॥
लाज शरम कै बतिया मैं सासूजी से कैसे कहउँ रे।
सासु तोरा पूत छयल छबिलवा अँचरवा पिच डारेउँ रे ॥ २ ॥
ये अलबेली बहुरिया लछन न लगावहु रे।
दुलहिनी आज के नवयें महिनवाँ होरिल तोहरे होइहै रे ॥३॥

अरे सासूजी के होवै चेरिया ननद मन हरवै रे।
अपने राजा के प्रान पियारी होरिल मोरे होइहैं रे॥ ४॥

मचिये पर सास बैठी है और बहू से पूछ रही हैं—हे बहू! तुम्हारा मुँह पीला क्यों है? पैर भारी क्यों है?॥ १॥

बहू सोचती है ठीक जवाब देते हुए मुझे लाज लगती है। फिर वह बोली—हे सासजी! तुम्हारा पुत्र बड़ा छैल-छबीला है, उसने मेरा आँचल मसल दिया है॥ २॥

सास ने कहा—हे अलबेली बहू! बात न बनाओ। हे दुलहिन! आज के नवें महीना तुम्हारे पुत्र होगा॥ ३॥

बहू मन में कहती है—अरे! मेरे पुत्र होगा। मैं सासजी की चेरी होऊँगी। ननद का मन हर लूँगी और अपने राजा की प्राण-प्यारी होऊँगी।

गर्भवती स्त्री की कैसी मनोहर अभिलाषा है!

[१०]

चकई पुछहिं सुनु चकवा भोर कब होइहइँ सुरुज कब
उइहइँ रे।
चकई रुकमिनि हरि परदेस घरहिं कब अइहइं रे॥१॥
तौ खेलत मेलत के बेटौना त भैया मोर लागउ रे।
भैया हरि कै लगाई नवरङ्गिया तौ ठाढ़ि सुखाति हवैं रे॥२॥
खेलत मेलत की बिटियवा त बहिनी मोर लागउ रे।
बहिनी जो रे धनिया कुलवंतिनि सींचि जगावइँ रे॥३॥
हाथ के रे काढ़ेन ककनवाँ पायँन कर नूपुर रे।
ये हो सिर धरि लिहेनि घइलना नौरङ्ग सींचै चलि भई रे॥४॥
पेड धरि सींचैं नवरङ्गिया डार धरि भेंटैं हो।
येहो आइ गैहैं हरि कै सुरतिया तौ छतिया बेहाल भईहो॥५॥

घिया केरि पुरिया पोवायउँ दुधन कइ जाउरि हो।
ये हो मोरे लेखे माहुर धतुरवा अकेले मोरे हरि बिन हो ॥६॥

चकई चकवे से पूछती है—हे चकवा! सबेरा कब होगा? सूर्य कब उदय होंगे? हे चकवा! रुक्मिणी के स्वामी परदेश से कब आयेंगे? ॥१॥

रुक्मिणी कहती है—हे खेलने-कूदने वाले लड़को! तुम मेरे भाई लगते हो। मेरे प्राणेश्वर की लगाई हुई नारङ्गी खड़ी सूख रही है ॥२॥

लड़को ने कहा—हे खेलनेवाली लड़की! तुम मेरी बहन लगती हो। जो स्त्री कुलवन्ती होती है, वह स्वयं सींचकर उसे जगाती है ॥३॥

रुक्मिणी ने हाथ का कंगन काढ़कर रख दिया। पैरों से पाजेब निकालकर रख दिया, और सिर पर घड़ा रखकर वह सींचने चल खड़ी हुई ॥४॥

पेड़ का तना पकड़कर वह नारङ्गी सींचती है और डाल पकड़ कर भेंटती है। इतने मे प्राणेश्वर की सुध आ जाती है तो वह विह्वल हो जाती है ॥५॥

वह कहती है—मैंने घी की पूरियाँ बनाई और दूध की खीर। पर प्राणेश्वर के बिना मेरे लिये वह विष सा मालूम होता है ॥६॥

इस गीत में वियोगिनी का बहुत ही स्वाभाविक वर्णन है।

[११]

पहिल सपन एक देखेउँ अपने मंदिल मे रे।
सासु सपने क करहु विचार सपन सुभ पावउँ ॥१॥
सपने ससुर राजा दसरथ बगिया लगावइँ हो।
सासु बगिया मे फुलइ गुलाब भँवर रस बिलसइ हो ॥२॥
सपने कौसिल्या एसी सास तो हमरे महल आईं।
सासु सोने कै दहेंडियालिहे ठाढि पुछैं बहुवा कहाँ धरउँ रे ॥३॥

सपने लखन अस देवर रुमलिया पीठि झारैं,
बिहँसि बतिया बोलइँ हो।
भौजी जौ तोरे होइहैं होरिलवा बछेड़वा हम लेबइ रे ॥४॥
सपने सुभद्रा ऐसी ननदा तौ हमरे महल आईं,
बिहँसि बतिया बोलईं हो।
भौजी जौ तोरे होइहैं होरिलवा कँगन हम लेबइ हो ॥५॥
सपने पुरुष राजा राम अस हमरे महल आयें।
सामी हँसत कमल दूनौं नैन सेजरिया पगु धारईं हो ॥६॥

मैंने अपने महल में आज पहला स्वप्न देखा। हे सासु! स्वप्न का विचार करके बताओ कि यह स्वप्न शुभ है न? ॥१॥

स्वप्न में राजा दशरथ ऐसे मेरे ससुर बाग लगाते हैं। उस बाग मे गुलाब फूला है, जिस पर भौंरे रस ले रहे हैं ॥२॥

स्वप्न में कौशल्या ऐसी सास मेरे महल में आती हैं उनके हाथ मे सोने की दहेंदी (दही की हाड़ी) है। वे पूछती है कि बहू इसे कहाँ रक्खूँ ॥३॥

स्वप्न में लक्ष्मण ऐसे देवर रुमाल से मेरी पीठ झाड़ रहे है, हँसकर कह रहे हैं कि भाभी तुम्हारे पुत्र होगा तो मैं बछेड़ा लेऊँगा ॥४॥

स्वप्न में सुभद्रा ऐसी ननद मेरे महल में आती हैं। वह, हंसकर कह रही हैं कि हे भाभी! तुम्हारे पुत्र होगा तो मै कगन लूँगी ॥५॥

स्वप्न में राम ऐसे मेरे पति महल में आये। कमल ऐसे नेत्रों से हँसते हुए उन्होंने मेरी सेज पर चरण रक्खा ॥६॥

[१२]

छोट मोट पेड़वा ढेकुलिया त पतवा रे लहालही हो।
रामा ताही तरे ठाढ़ि रे हरिनिया हरिन बाट जोहइ हो ॥१॥

बन मे से निकलेला हरिना त हरिनी से पूँछले हो।
हरिनी काहे तोर बदन मलीन काहे मुँह पीअर हो ॥२॥
गइलो मैं राजा के दुआरिआ त बतिया सुनि अइलों हो।
प्यारे आजु छोटे राजा क बहेलिया हरिन मरवइहइँ हो ॥३॥
केइ जे बगिया लगवलें केइ रे आए ढुँढ़ले हो।
हरिनी केकर धनिया गरभ सें हरिनवा मरवावले हो ॥४॥
दसरथ बगिया लगवलें लखन आये ढुँढले हो।
प्यारे रघुबर धनिया गरभ से हरिन मरवावले हो ॥५॥
कर जोड़ी हरिनी अरज करे सुनु कौशल्या रानी हो।
रानी सीता के होइहैं नन्दलाल हमही कुछ दीहब हो ॥६॥
सोनवा मढ़इबों दुहू सिंगवा भोजनवा तिल चाउर हो।
हरिनी भुगतहु अयोध्या के राज अभै बन बिचरहु ॥७॥

एक छोटा मोटा ढाक का पेड़ है जो पत्तों से लहलहा रहा है। उसके नीचे हरिनी खड़ी है और हरिन की राह देख रही है ॥ १ ॥

बन में से हरिन निकला और उसने हरिनी से पूछा—हे हरिनी! तुम्हारा मुँह उदास और पीला क्यों है ? ॥ २ ॥

हे हरिन! मैं राजा के द्वार पर गई थी। वहाँ मैंने सुना है कि आज छोटे राजा अपने बहेलिये (व्याधा) से हरिन को मरवायेंगे ॥३॥

हे हरिनी! किसने बाग लगवाया ? बन मे आकर किसने खोजा ? और किसकी स्त्री गर्भ से है जो हरिन मरवायेंगे ? ॥ ४ ॥

हे हरिन! राजा दशरथ ने बाग लगवाया है। लक्ष्मण खोजने आये थे। राम की स्त्री सीता को गर्भ है। उन्हीं के लिये हरिन मारा जायगा ॥ ५ ॥

हरिनी कौशल्या के पास जाती है और हाथ जोड़कर विनती करती है—हे रानी! आज सीता के पुत्र होगा, मुझे कुछ दो ॥ ६ ॥

कौशल्या उसका अभिप्राय समझकर कहती है—हे हरिनी ! मैं हरिन के दोनो सींगों को सोने मढ़ाऊँगी और तिल चावल खाने को दूँगी। तुम जाओ, अयोध्या के राज में सुख भोगो और निर्भय होकर वन में विहार करो॥ ७॥

[१३]

उठत रेख मसि भीजत राम बनै गये हो।
मोरी बरहा बरिस कै उमिरिया मैं कइसे बितइबइ हो॥ १॥
काह राम तोहरे घरॉ रहे काह बिदेस गये हो।
रामा हँसि कै न धरेउ अँचरवा न कबहूँ कोहानेउ॥ २॥
कारी चुनरि नाहीं पहिन्यों पियरी नाहीं छोन्यों हो।
रामा कोरवा न लीन्हेउँ बलकवा छटी नाहीं पूजेउँ हो॥ ३॥
छोड़े जाइथ घर भर सोनवाँ महल भर रुपवा हो।
रामा छोड़े जाइथ लहुरा देवरवा पिया के सँग रहबइ हो॥४॥

रेख भिन रही थी (ज़रा सी मोछ निकल रही थी), उस समय राम वन को गये। मेरी बारह बरस की अवस्था, मैं दिन कैसे बिताऊँगी॥ १॥

हे राम ! तुम्हारे घर रहने से क्या ? और विदेश जाने से क्या ? न तो तुमने कभी हँसकर मेरा आँचल पकड़ा और न तुम कभी रूठे॥२॥

पीली धोती पहन कर मैं आई थी, वही पहने हूँ। काली सारी मैंने पहनी ही नहीं। न गोद में बालक लिया, न छठ की पूजा की॥ ३॥

मैं सोने से भरा हुआ घर और चाँदी से भरा हुआ महल छोड़कर जा रही हूँ। छोटे देवर को भी छोड़कर जा रही हूँ। मैं अपने प्राणनाथ के साथ रहूँगी॥ ४॥

कभी-कभी रूठ जाना भी प्रेम-वृद्धि के लिये आवश्यक जान पड़ता है।

[१४]

राम जे चलेनि मधुबन के माई मे अरज करई।
माई हम तो जावइ मधुवन के सितै कइसे रखविउ ॥ १ ॥
आँगन कुइयाँ खनइवै सितैहिं नहवैवइ।
बेटा! खाँड चिरौंजी खवइवइ हृदय बीच रखवइ ॥ २ ॥
राम जे चलेनि मधुवन के सीता जे गोहन लागीं।
सीता! हमरे सँग मत चलहु बहुत दुख पउविउ ॥ ३ ॥
सहवइ मैं भुखिया पियसिया जेठ दुपहरिया।
पिया देखि हम तोहरी सुरतिया सकल सुख पउवइ ॥ ४ ॥

राम बन को जा रहे हैं। माँ से प्रार्थना कर रहे हैं—हे माँ! मैं तो बन को जा रहा हूँ, सीता को तुम कैसे रखोगी? ॥ १ ॥

माँ ने कहा—बेटा! आँगन मे कुँवा खोदवा लूँगी। वहीं सीता को नहलाउँगी खाँड़ और चिरौंजी खिलाउँगी और हृदय में रखूँगी ॥ २ ॥

राम मधुबन को चले। सीता साथ लगीं। राम ने कहा—सीता! हमारे साथ मत चलो। बहुत कष्ट पाओगी ॥ ३ ॥

सीता ने कहा—हे प्रियतम! भूख-प्यास सह लूँगी। जेठ की दुपहरी भी सह लूँगी। हे राम! तुमको देखकर मैं सब सुख पाउँगी ॥४॥

सच है, पतिव्रता स्त्री को पति के सिवा सुख कहाँ?

[१५]

जउ मैं जनतेउँ ये लवँगरि एतनी मँहकविउ।
लवँगरि रँगतेउँ छयलवा क पाग सहरवा मे गमकत ॥ १ ॥
अरे अरे कारी वदरिया तुहईं मोरि वादरि।
वादरि! जाइ वरसहु वहि देस जहाँ पिय छाये ॥ २ ॥

बाउ बहइ पुरवइश्रा त पछुवाँ झकोरइ।
बहिनी दिहेउ केवड़िया ओठँगाइ सोवउँ सुख नींदरि॥ ३॥
कि तुहुँ कुकुरा बिलरिश्रा सहर सब सोवइ।
कि तुहूँ ससुर पहरिश्रा किवरिश्रा भडकावहु॥ ४॥
ना हम कुकुर बिलरिया न ससुरू पहरिश्रा।
धग! हम अहों तोहरा नयकवा बदरिया बुझायसि॥ ५॥
श्राधि राति बाति गई बतियाँ नियाई राति चितियाँ।
बारह बरस का सनेहिया जोरत मुर्गा बोलइ॥ ६॥
तोरवेउँ मैं मुर्गा क ठोर गटइया मरोरवेउँ।
मुर्गा काहे किहेउ भिनुसार त पियहि बतायउ॥ ७॥
कहे क ये रानो तोरविउ ठोर गटइया मरोरविउ।
रानो होइ गइ धरमवाँ क जूनि भोर होत बोलइ॥ ८॥

हे लवग! यदि मैं जानती कि तुम इतना महकोगी तो मैं अपने शौकीन पति की पगडी तुम्हारे फूल से रँगती, जिससे वह सारे शहर में महकते॥ १॥

हे काली घटा! तुम्हीं मेरी प्यारी घटा हो। हे घटा!-वहाँ जाकर बरसो, जहाँ मेरे प्रियतम हैं॥ २॥

पूर्वा हवा बह रही है। कभी-कभी पछुवाँ भी झकोरता है। हे ननद! तुम केवाडी बन्द कर देना, मैं सुख की नींद सोऊँगी॥ ३॥

तुम कुत्ते हो या बिल्ली या मेरे ससुर जी के पहरेदार हो? सारा शहर तो सो रहा है। तुम कौन हो जो मेरी केवाडी खटखटा रहे हो?॥४॥

न मैं कुत्ता हूँ, न बिल्ली और न तुम्हारे ससुर का पहरेदार ही हूँ। हे प्यारी! मैं तुम्हारा पति हूँ। मुझे घटा बुला लाई है॥ ५॥

आधी रात बातों ही में बीत गई। बारह वर्ष के प्रेम को एक करने मे आधी रात बीत गई। इतने में मुर्गा बोलने लगा॥ ६॥

स्त्री ने कहा—हे मुर्गा! मैं तुम्हारी चोंच तोड़ डालूँगी। तुम्हारी गर्दन मरोड़ दूँगी। तुमने सबेरा क्यों किया और मेरे प्रियतम को क्यों बतलाया? ॥ ७ ॥

पति ने कहा—हे रानी! मुर्गे बेचारे की चोंच क्यों तोड़ेगी और गर्दन क्यों मरोड़ोगी, हे रानी! इसके धर्म का समय हो गया है, इसलिये सबेरा होते ही बोलता है ॥ ८ ॥

[१६]

कोठवा से उतरी राधिका अँगनवाँ मे ठाढ़ी भई
अँगनवा मे ठाढ़ी भई रे।
अरे ओ मोरे रामा, हँसि हँसि पूँछहिं जसोदा
काहे बहु अनमन रे ॥१॥
काह कहौं मोरी सासु कहत मोहे लाज लागे रे।
अरे ए मोरी सासु, आजु महल मोरे चोरी भई
तिलरी चोराय गई रे ॥२॥
तोरि डारौ हाथे क हथेहरा, गोडे क गोडाहर।
अरे ए मोरी बहुआ, ओढ़ि लेहु नित का डुपटवा
त मुरली चुराय लावो ॥३॥
तोरि डारिन हाथे का चुडिला गोड़े का गोड़ाहर।
ओढ़ि लिहिन नित का डुपट्टा त
मुरली चुराइ लाइन रे ॥४॥
बहरा से आये कन्हैया अँगनवाँ मे ठाढ़े भये।
अरे ए मोरे रामा, हँसि हँसि पूछहि जसोदा
काहे बेटा अनमन रे ॥५॥
काह कहौं मोरी माया, कहत मोहिं लाज लागे।
आज वृन्दावन चोरी भई, मुरली चोराय गई रे ॥६॥

अस जिन जानो राधिका मुरलिया बाँस की है रे।
मुरली मे बसे मोरे प्रान, मुरलिया हमरी दै देव रे ॥७॥
अस जिन जान्यो कन्हैया तिलरिया लाह के है
अरे ए मोरे कान्हा तिलरी में लागो हीरा लाल,
तिलरिया हमरे बाप की है ॥८॥

(मुरादाबाद)

राधा कोठे मे उतरीं और आँगन में खड़ी हुईं। यशोदा हँसकर पूछने लगीं —हे बहू! मन उदास क्यों है ? ॥ १ ॥

हे सासु! मै क्या कहूँ ? कहते हुये मुझे लाज लगती है। आज मेरे महल मे चोरी हुई है। कोई मेरी तिलरी चुरा ले गया ॥ २ ॥

यशोदा ने कहा—हाथ पैर के कड़े तोड डालो, और हे मेरी बहू ! दुपट्टा ओढ़कर तुम भी मुरली चुरा लाओ ॥ ३ ॥

राधा ने हाथ की चूड़ी और पैर के कड़े तोड डाले और दुपट्टा ओढ़कर वह मुरली चुरा लाई ॥ ४ ॥

कन्हैया बाहर से आये और आँगन में खड़े हुए। यशोदा हँसकर पूछने लगीं—हे बेटा उदास क्यों हो ? ॥ ५ ॥

हे मेरी माँ! मैं क्या कहू ? कहते हुए लाज लगती है। आज वृन्दावन में चोरी हुई, मेरी मुरली चोरी गई ॥ ६ ॥

हे राधा! ऐसा मत समझना कि मुरली बाँस की है। मुरली में मेरा प्राण बसता है। मेरी मुरली दे दो ॥ ७ ॥

हे कन्हैया! ऐसा मत समझना कि तिलरी लाख की है। तिलरी में हीरा और लाल जड़े हैं। वह मेरे बाप की दी हुई है॥ ८ ॥

इसमें विवाह के उपरान्त पति-पत्नी की प्रेम-वर्द्धक छेड़-छाड़ का वर्णन है।

[१७]

मोरे आँगन चन्दन रुखवा त लहर लहर करै हो।
ललना, तेही पर बोलै काग त बोल सुहावन ॥ १ ॥
की काग नैहर से आवा की हरिजी पठावा।
काग कौन सँदेस तुम लायो त बोलिया सुहावन ॥ २ ॥
नहीं हम नैहर से आवा ना हरिजी पठावा।
आज के नवये महीना होरिल तोरे होइहैं ॥ ३ ॥
चुप रहौ काग तू चुप रहौ बैरिनि ना सुनै।
एक तो बिटियही मोरी कोख दुसरे हरि दारुन ॥ ४ ॥
आठे नौ मास लागत होरिल जनम भए।
बाजै लागे आनँद बधैया उठन लागे सोहर हो ॥ ५ ॥
रान्ह परोसिन माया मोरी और बहिन मोरी।
कगवा का हेरी मँगाओ मैं सोनवा मिढवौं ॥ ६ ॥
सोनवाँ मिढ़ौबै वोकै ठोर रूपे दोनौ डखना।
सोने के कटोरिया मे दूध भात कगवा क भोजन ॥ ७ ॥
(उन्नाव)

मेरे आँगन मे चदन का पेड़ लहलहा रहा है। हे सखी! उस पर कौवा बोल रहा है। उसकी बोली बड़ी सुहावनी लगती है ॥ १ ॥

हे कौवा! तुम नैहर से आये हो? या मेरे प्रियतम ने तुमको भेजा है? कौन-सा सदेशा तुम लाये हो? तुम्हारी बोली बड़ी सुहावनी लगती है ॥ २ ॥

न तो नैहर से आया हूँ, न तुम्हारे प्रियतम ने मुझे भेजा है। आज के नवें महीने तुम्हारे पुत्र होगा ॥ ३ ॥

हे कौवा! चुप रहो, कहीं बैरिन न सुन ले। एक तो मेरी कोख यों ही कन्या-वाली है, दूसरे मेरे प्रियतम (बार-बार कन्या ही पैदा करने

के कारण) मुझसे प्रेम नहीं करते ॥ ४ ॥

आठवें के बाद नवाँ महीना लगते ही पुत्र ने जन्म लिया, आनंद की बधाई बजने लगी और सोहर गाया जाने लगा ॥ ५ ॥

हे मेरी पड़ोसिनो ! तुम मेरी माँ हो, मेरी बहन हो, कौवे को खोज लाओ, मैं उसे सोने से मिढ़ाऊँगी ॥ ६ ॥

उसकी चोंच और उसके दोनों डैनों को मैं सोने से मिढ़ाऊँगी। सोने की कटोरी में मैं उसे दूध और भात खाने को दूँगी ॥ ७ ॥

इस गीत में पुत्र-जन्म से माता को होनेवाली खुशी का वर्णन है। कौवा-जैसा कुत्सित गिना जानेवाला पक्षी भी सुख-दायक वचन बोलने के कारण सोने से मढ़ा जाने का पात्र समझा गया है। इस प्रकार कौवे के बहाने मनुष्य के परिवार में मधुर भाषण की विशेषता भी बताई गई है।

गाँववालों का यह विश्वास होता है कि जब कौवा घर की मुँडेर पर काँव-कांव बोलता है, तब घर में कोई न कोई नया मेहमान आता है।

[१८]

मैं तो पहले जनोंगी धीयरी,
मेरी जौ कोखि होय सुलच्छनी ॥
जाकी गरजति आवैगी बराइति री,
पालिकी चढ़ि आवै साजना ॥१॥
मेरो घरु जो रितो अरु पेटु री,
मेरी धीयरी जमईया लै गयो ॥
मैं तो बहुरि जनोंगी पूतु री,
मेरी जौ कोखि होय सुलच्छनी ॥२॥
जाकी गरजति जायगी बरायत री,
पालिकी चढ़ि आवै कुलबहू ॥

मेरो घरु तौ भरो अरु पेटु री,
मेरी रुनुक झुनुक डोलै कुलवहू ॥३॥
(बदायूँ)

बहू अपने मन की लालसा बतलाती है —

मैं पहले कन्या जनूँगी, यदि मेरी कोख सुन्दर लक्षण वाली हुई तो। जिसके विवाह के लिये बाजा बजाती हुई बरात आयेगी और दामाद पालकी में चढ़कर आयेगा ॥१॥

हाय ! मेरा तो घर भी खाली हो गया और पेट भी, मेरी कन्या को तो दामाद लेगया। अब तो मैं पुत्र जनूँगी, यदि मेरी कोख सुन्दर लक्षण वाली हुई तो ॥२॥

जिसकी बरात बाजा बजाती हुई जायगी और बहू पालकी में चढ़कर आयेगी। मेरा घर भी अब भरा-पूरा लगता है और पेट भी। बहू रुन-झुन करती हुई घर में डोल रही है ॥३॥

इस गीत में गर्भिणी बहू के मन की तरगें दिखाई गई हैं।

[१६]

एक साध मन उपजी, जो हर पुजवैं।
साहिब ! हमरे नैहर लौं जावो पियरी लै आवो ॥१॥
तुम्हरो तो नैहर गोरी दूर बसै, को मेरे जैहे।
घर ही मे पियरी रँगैहौं, मैं साध पुजौहौं ॥२॥
भोर होत पौ फाटत होरिल उर धरे।
वजन लागे अनँद वधाये, गावैं सखी सोहरे ॥३॥
बाहर वजै वधैया, भीतरी सखी सोहरे।
सात सबद सहनैया ससुर द्वारे बाजै,
बहुत नीको लागै ॥४॥

बरहीं बरस बीरा आये, मलिन घर उतरे।
मालिन, किन घर बजैं बधैया, गावैं सखी सोहरे ॥५॥
साहिब, तुम्हरी बहिन घर लाल भये,
तुम्हरे भनिज भये।
उन घर बजैं बधैया, गावै सखी सोहरे ॥६॥
जो मैं ऐसी जनतो, बहिन घर लाल भये,
हमरे भनिज भये।
बेंचतों मैं ढाल तलवरिया, कमर कटरिया,
सिर की पगड़िया, पियरी लै आवतो ॥७॥
हकरो गाँव के बजजवा, बेगि चले आव,
अरे जल्दी आव।
बजजा! पँचरंग चुनरी लै आव, बहिनें पहिरावौं
बहिन सुख मानैं ॥८॥
हकरो गाँव के सुनरा, बेगि चले आव,
अरे जल्दी आव।
सुनरा, सोने रूपे खडुआ लै आव,
भनिजहिं पहिरावौं, बहनोई सुख मानै ॥९॥
हकरो गाँव के दरजी, बेगि चले आव, अरे जल्दी आव।
दरजी रेसम का कुरता सिलाव, भनिजहिं पहिरावौं,
बहिन सुख पावै ॥१०॥
(इटावा)

मन में एक इच्छा उत्पन्न हुई है, यदि भगवान उसे पूरी करें। हे स्वामी! मेरे नैहर जाओ और वहाँ से 'पियरी' (पीली धोती) ले आओ ॥१॥

हे गोरे रंगवाली! तुम्हारा नैहर तो बड़ी दूर है, कौन जाय? मैं

घर ही में 'पियरी' रँगवा दूँगा, मैं ही तुम्हारी इच्छा पूरी कर दूँगा ॥२॥

सवेरे, पौ फटते ही, पुत्र उत्पन्न हुआ। आनन्द की बधाई बजने लगी और सखियाँ सोहर गाने लगीं ॥३॥

घर के बाहर बधाई बज रही है और घर के भीतर सखियाँ सोहर गा रही हैं। ससुर के द्वार पर सातों स्वरों में शहनाई बज रही है, जो बहुत प्यारी लगती है ॥४॥

बारहवें वर्ष (बहन के विवाह के बाद) भाई आया और मालिन के घर पर ठहर गया। हे मालिन ! किसके घर में बधाई बज रही है और सखियाँ सोहर गा रही हैं ? ॥५॥

मालिन ने कहा—हे साहब ! तुम्हारी बहन के पुत्र उत्पन्न हुआ है; तुम्हारे भाञ्जा हुआ है। इसीसे उस घर में बधाई बज रही है और सखियाँ सोहर गा रही हैं ॥६॥

भाई पछताने लगा—मैं ऐसा जानता कि बहन के पुत्र हुआ है, मेरे भाञ्जा हुआ है, तो मैं अपनी ढाल-तलवार, कमर की कटारी और सिर की पगड़ी बेंचकर बहन के लिये 'पियरी' (पीली धोती) ले आता ॥७॥

गाँव के बजाज को बुलाओ। अरे, जल्दी आओ। हे बजाज ! पाँच रंगों में रँगी हुई चूनरी ले आओ, मैं बहन को पहनाऊँ, जिससे मेरी बहन बहुत सुख माने ॥८॥

गाँव के सुनार को बुलाओ। सुनार ! जल्दी आओ। हे सुनार ! सोने और चाँदी के कड़े बना लाओ, मैं भाजे को पहनाऊँ, जिससे बहनोई प्रसन्न हों ॥९॥

गाँव के दरज़ी को बुलाओ। दरज़ी ! जल्दी आओ। हे दरज़ी ! रेशम का कुरता बना लाओ, मैं भाञ्जे को पहनाऊँ, जिससे बहन सुख पाये ॥ १० ॥

इस गीत मे बहन के लिये भाई का अकृत्रिम प्रेम दिखलाया गया है।

[२०]

छापक पेड़ छिउलिया तौ पतवन घन वन।
ए हो ओहि तरे ठाढी सीतल देई
मनहीं बिसोह करैं हो ॥ १ ॥
को मोरे दुइ खर तुरिहैं त मड़ई बनइहैं।
ए हो, को मोर दियना जरइहैं
त मड़ई रखइहैं ॥ २ ॥
वन से जो निकरे वन तपसी
त सीता समुझावहिं हो।
सीता ! हम तोरा दुइ खर तुरब त मड़ई छवाइब।
सीता ! हम तोरा दियना जराइब त
मड़ई रखाइब हो ॥ ३ ॥
को मोरा लीन्हे मुट्ठी भर सोने का छुरवा त
को मोरे धगरीन।
ए हो को मोर पँचरा बैठइहैं त
विपती गवाँइब हो ॥ ४ ॥
वन से जो निकरी वन तपसिन
सीता समुझावहिं।
सीता ! हम वेवो मुट्ठी भर सोने का छुरवा त
हम तोर धगरीन।
सीता ! हम तोरे पँजरा वैठाइब त
विपति गवाँइब हो ॥ ५ ॥

भोर भये पहु फाटल लउहर जनम ले ले
जंगल सोहावन हो।
ए हो, हँकरि बोलावहु नग्र के नउआ त
हँकरि बोलावहु हो।
नउवा चारि सोपारी लेइ लेहु
रोचन लेइ जावहु हो ॥६॥
पहिला रोचन राजा दसरथ दुसरा कौसिल्ला रानी।
ए हो, तिसरा रोचन देवर लछिमन,
पिअइ न बतायउ हो ॥७॥
छोटे कदम के रे डाल त राम दतुइन तोरैं।
लछुमन किनके रोचन तुम पायो त
भहर-भहर करै झहर-झहर करै ॥८॥
भाभी जो हमरी सीतलदेई बड़ी गुन आगरि।
भइया उनहीं के भये नंदलाल रोचन हम पायो।
मोरे सिर भहर भहर करै, झहर झहर करै ॥९॥
जनम तो लेलें पूता बड़ी रे विपति में हो,
बड़ी रे सँसति मे हो।
पूता जनम जो लेतेउ अजोधिया हमहुँ मुँह देखत ॥१०॥
राजा दसरथ पटना लुटवतें कौसिल्ला रानी अभरन।
रामा तरर तरर चुवै आँसु पटुकवन पोंछईं ॥११॥
(फैजाबाद)

ढाक का एक छोटा-सा पेड़ है, जो पत्तों से खूब सघन हो रहा है। सीता देवी उसी के नीचे खड़ी होकर मन में चिंता कर रही हैं ॥१॥

मेरे लिये कौन खर (सरपत) तोड़ेगा ? कौन झोपड़ी बनायेगा ? कौन दिया जलायेगा ? और कौन झोपड़े की रखवाली करेगा ? ॥२॥

वन में से तपस्वी निकले। उन्होंने कहा—हे सीता! हम तुम्हारे लिये सरपत तोड़ेंगे, झोपड़ी बनायेंगे, दिया जलायेंगे और झोपड़ी की रखवाली करेंगे ॥३॥

सीता फिर चिंता करने लगीं। मेरा यहाँ कौन है जो सोने की मूठ वाला छुरा लेगा? कौन मेरी धगरिन (नाल काटने वाली चमारिन) होगी? मेरी बच्चादानी कौन बैठायेगा? और कौन मेरी विपत्ति हरेगा?

वन में से तपस्विनियाँ निकलीं। उन्होंने कहा—हे सीता! हम सोने की मूठ वाला छुरा लायेंगी, हम धगरिन होंगी, हम तुम्हारी बच्चा-दानी बैठायेंगी, और विपत्ति में सहायक होंगी ॥५॥

सवेरा हुआ। पौ फटा। पुत्र उत्पन्न हुआ। जङ्गल सुहावना लगने लगा। अरे, दौड़कर नगर के नाई को तो बुला लाओ। हे नाई! चार सुपारियाँ लेलो और रोचन लेकर जाओ ॥६॥

पहला रोचन राजा दशरथ को, दूसरा रानी कौशल्या को और तीसरा देवर लछमण को देना; पर पति (रामचन्द्र) को न बताना ॥७॥

कदम्ब का छोटा-सा पेड़ है। उसकी डाल से राम दातुन तोड़ रहे हैं। हे लछमण! तुमने यह रोचन किसका पाया है, जो तुम्हारे माथे पर दमक रहा है? ॥८॥

लछमण ने कहा—मेरी भावज जो सीता देवी है, जो गुणागर है, हे भाई! उन्हीं के पुत्र उत्पन्न हुआ है। उन्हीं का यह रोचन मैंने पाया है, जो मेरे माथे पर दमक रहा है ॥९॥

राम मन में कहने लगे—हे पुत्र! जन्म तो तुमने बड़ी विपत्ति में लिया। हे पुत्र! तुम अयोध्या में जन्मे होते तो मैं भी तुम्हारा मुँह देखता ॥१०॥

तुम्हारे जन्म की खुशी मे राजा दशरथ वस्त्र लुटाते और रानी कौशिल्या गहने लुटातीं। राम की आँखों से तरर-तरर आँसू बहने

लगे, जिन्हें वे दुपट्टे मे पोछते हैं। ॥११॥

राम के जीवन-चरित्र में सीता का वन-वास एक ऐसी घटना है, जो पत्थर के कलेजे को भी पिघला सकती है। हिंदी के भक्त कवियों ने इस घटना को छिपाने ही का प्रयत्न किया है, पर स्त्रियों ने इस विषय को लेकर अपने गीतों में पति-पत्नी के मनोभावों के बड़े ही करुणा-पूर्ण चित्र खींचे हैं। वन में सीता को पुत्र हुआ है, सीता ने घर के सब लोगों को रोचन भेजा केवल पति को नहीं, पति को इससे जो मनोवेदना हुई होगी, वह अनुभव की बात है, शब्दों में वह व्यक्त नहीं की जा सकती।

सीता के वन-वास के समय राजा दशरथ जीवित नहीं थे। पर गीत एक गृहस्थ के पूरे कुटुम्ब के लिये रचे गये हैं, जिसमें पिता, माता, पति, पत्नी, पुत्र, पुत्री और पतोहू सब हैं, और राजा दशरथ का परिवार उसका एक आदर्श है। इसलिये गीतों में राजा दशरथ से अभिप्राय किसी भी कुटुम्ब के पिता से है, और रानी कौशल्या का घर की स्वामिनी से।

[७१]

कि गुन अमवा बउरलै अरे ना जानों कौने गुन ॥
कि अरे अमवा तोके मलिया जो सींचेला कि
अपने गुन ॥ १ ॥
नाहीं मोके मलिया जो सींचेला नाहीं हम अपने गुन ॥
रिमकि झिमकि दैव बरिसै उनके जो बुन्द परे ॥ २ ॥
बहुवा होरिल बड सुन्दर ना जानों कौने गुन ॥
मोरी बहुआ की तू खइलू नौरँगिया को पेट गुन ॥ ३ ॥
नाहीं हम खइली नौरंगिया नाही मोरे पेट गुन ॥
लगिलिउँ ससुइयाजी के गोड त उनके धरम गुन ॥ ४ ॥

चहुआ चउक बड़ सुन्दर ना जानि कौने गुन ॥
किय तोहरी सुघरी नउनियाँ की तोहरे आँगन गुन ॥ ५ ॥
नाहीं मोरी सुघरी नउनियाँ नाहीं मोरे आँगन गुन ॥
सैयाँ मोर तप व्रत कीन्ह तौ उनके धरम गुन ॥
ललना, जिअरा मे भरा है हुलास सबै लागइ सुन्दर ॥ ६ ॥
(बिजनौर)

आम में बौर लगे हैं; क्या कारण है ? हे आम ! तुम को माली ने सींचा है, इस कारण से बौर लगा है ? या तुम अपने ही प्रभाव से बौरे हो ? ॥ १ ॥

न माली के सींचने से और न अपने ही प्रभाव से मुझमें बौर लगा है। आकाश से जो रिमझिम करके वृष्टि हुई है, उसी की बूँदें पड़ने से बौर लगा है ॥ २ ॥

हे बहू ! होरिल (शिशु) बड़ा सुन्दर है, क्या कारण है ? हे मेरी बहू ! तुमने नारंगी खाई थी, उसके प्रभाव से ? या तुम्हारी कोख से सुन्दर बालक पैदा होता ही है ? ॥ ३ ॥

मैंने नारंगी नहीं खाई थी, और न मेरी कोख के कारण ही ऐसा सुन्दर बालक पैदा हुआ है; बल्कि मैंने सासुजी के पैर छुए थे, उन्हीं के धर्म के प्रभाव से ऐसा सुन्दर बालक पैदा हुआ है ॥ ४ ॥

हे बहू ! चौक बड़ा सुन्दर है। तुम्हारी नाइन (जिसने चौक पूरा था) बड़ी चतुर है ? या आँगन सुन्दर है ? जिससे चौक भी सुन्दर लगता है ॥ ५ ॥

न तो मेरी नाइन ही चतुर है, और न आँगन सुन्दर है, बल्कि मेरे स्वामी ने बहुत तप-व्रत किया था (जिसके प्रभाव से यह पुत्र हुआ है); उन्हीं के धर्म मे यह चौक सुन्दर लगता है। और एक कारण यह भी

है कि आज सब के हृदयों में आनन्द भर गया है, इसमें सभी चीज़ें सुन्दर लग रही हैं ॥ ३ ॥

इस गीत से बहुओं को दो शिक्षाएँ मिलती हैं, एक तो सासु के साथ नम्रता पूर्वक व्यवहार करने को और दूसरे पति यदि तप और व्रत करे तो उसके प्रभाव से सुन्दर पुत्र की उत्पत्ति होती है।

अंत की कड़ी में कैसी मनोहर और मनोविज्ञान की बात कही गई है, कि यदि हृदय प्रसन्न है तो संसार की सभी चीज़ें प्रिय लगती हैं।

[२२]

नजर कई मतल बढ़इया पलँगरीआ ढाँली सालइ
पलँगारी ढीली सालई रे ॥
हे हो निदिआ कै मतल बहुरिया ओबरिआ लै बिछावई
ओवरिया लै बीछावइ रे ॥ १ ॥
सोने के खरऊआँ कवन रामा मथवन मनि बरइ
मथवन मनि बरई रे ।
राजा निहुरी निहुरी झाँकइ ओबरी
निंदरिया नाहीं आवई ॥ २ ॥
राजा न हो मोरे राजा तुम्हीं मोरे राजा।
राजा, रस देई के बेनिया डोलावा निदरिआ मोरे आवई ॥ ३ ॥
रानी न हो मोरी रानी तुम्हीं मोरी रानी हो।
रानी एक तो बाबा के दुलरुवा त मैया के पियारवा रे।
रानी तीसरे कचेहरी कै जोति, मैं कैसे बेनिया हाँकउँ
चेरिअवा बेनिया हाँकई हो ॥ ४ ॥
राजा न हो मोरे राजा तुम्हीं मोरे राजाउ रे।
राजा एकऊ होरिल जो जनमिहै, तो तुम्हीं बेनिया हँकवेउ

तुम्हीं से हँकाउब हो ॥ ५ ॥

(चारावकी)

आँखों का मतवाला बढ़ई पलंग ढीली सालता है। नींद की मतवाली बहू उसे ओवरी (ज़च्चा-घर) में लेजाकर बिछाती है ॥ १ ॥

अमुक राम, जिनके माथे पर मणि जल रही है, सोने के खड़ाऊ पर चढ़े हुए झुक-झुककर ओवरी झांकते हैं, उन्हें नींद नहीं आती ॥ २ ॥

हे मेरे राजा! तुम्हीं मेरे राजा हो, ज़रा प्रेम से पखी हाँक दो, तो मुझे नींद आ जाय ॥ ३ ॥

हे मेरी रानी! तुम्हीं मेरी रानी हो। एक तो मैं अपने बाप का दुलारा, दूसरे माँ का प्यारा, तीसरे कचहरी की ज्योति, भला मैं कैसे पखी हाँकूँ? पंखी दासी हाँकेगी ॥ ४ ॥

हे मेरे राजा! तुम्हीं मेरे राजा हो। एक भी पुत्र मेरे जन्मा तो तुम्हीं पंखी हाँकोगे। मैं तुम्हीं से हँकाऊँगी ॥ ५ ॥

इस गीत में पति-पत्नी का चुहल वर्णित है।

[२३]

पावों में पैजनियाँ लाला ठुमुक ठुमुक खेलोगे ॥ १ ॥
अच्छी शुभ घड़ी वादिन जानूँगी
जादिन लाला मेरो दादा-दादी बोलोगे ॥ २ ॥
कै झूलें मेरे पालनों, कै दादा की गोद।
अदन चंदन को पालनों कै रेशम की डोर ॥ ३ ॥
कृष्ण को पालनों बनवाऊँ,
दादा ने गाढ़ो पालनो दादा ने बँटा दई डोर ॥ ४ ॥
कै झूलें मेरो पालनों कै बाबा की गोद ॥ ५ ॥

(मुरादाबाद)

हे मेरे लाल ! तुम्हारे पैरों मे पैंजनियाँ है । अब तुम ठुमुक-ठुमुककर खेलोगे ॥ १ ॥

हे मेरे लाल ! मैं उसी को शुभ घड़ी जानूँगी, जिस दिन तुम दादा-दादी बोलेगे ॥ २ ॥

या तो मेरे पालने मे झूलो, या दादी की गोद में झूलो ॥ ३ ॥

चदन के पालने में रेशम की डोर लगी है ॥ ४ ॥

मैं अपने कृष्ण के लिये पालने बनाऊँगी । दादी ने उसे गढ़ाया है और दादा ने उसके लिये रेशम की डोर बट दी है ॥ ४ ॥

या तो तुम मेरे पालने मे झूलो, या दादा की गोद में रहो ॥ ५ ॥

[२४]

चैतहि के तिथि नवमी तौ नौबति बाजई हो।
बाजइ दसरथ राजदुआर कौसिल्ला रानी मदिर हो ॥ १ ॥
मिलहु न सखिया सहेलरी मिलिजुलि चालित हो।
जहाँ राजा के जनमे हैं राम करिय नेवछावर हो ॥ २ ॥
केउ नावैं बाजू औ बन्द केउ कजरावट हो।
केउ नावैं दखिनवाँ क चीर करहिँ नेवछावरि हो ॥ ३ ॥
भितराँ से निकरी कौसिल्ला अँगनवहिं ठाढी भई हो।
रानी धई धई हिरदै लगावैं करैं नेवछावरि हो ॥ ४ ॥
राम नयन रतनारे कजर भल सोहै हो।
दीन्हीं रचि रचि फुआ सुभद्रा तउ पतरी अँगुरियन हो ॥५॥
राम के मथवा लुटुरिया बहुत निक लागै हो।
जैसे फूलन के बिचवा कलिया बहुत निक लागै ॥ ६ ॥
राम के गोडवा घुघुरुवा बहुत निक लागै हो।
नान्हे गोडवन चलत बकैयाँ देखत राजा दसरथ ॥ ७ ॥

जौ प मंगल गावैं गाय सुनावैं हो।
सो तौ तुलसी जगत तरि जाय अमर पद पावै हो ॥ ८ ॥
(फैजाबाद)

चैत महीने की नवमी तिथि है, नौबत बज रही है। नौबत राजा दशरथ के द्वार पर और कौशल्या रानी के महल में बज रही है ॥ १ ॥

हे सखियो ! आओ, सब मिलजुल कर चलें। राजा के राम जन्मे हैं, उनकी न्योछावर कर आयें ॥ २ ॥

किसी ने बाजूबंद, किसी ने कजरौटा और किसी ने दक्खिनी चीर न्योछावर किया ॥ ३ ॥

कौशल्या रानी भीतर से निकलीं और आँगन में खड़ी हुई। वह सब को पकड़-पकड़ कर छाती से लगती हैं और न्योछावर करती हैं। अथवा जो न्योछावर करने आई थीं, उनको पकड़-पकड़कर छाती से लगाती हैं ॥ ४ ॥

राम की रतनारी आँखों मे काजल बहुत सुहावना लगता है। फूफी सुभद्रा ने उसे अपनी पतली उँगलियों से बहुत बनाकर लगाया है ॥ ५ ॥

राम के माथे पर छोटी-छोटी लटें बहुत खिलती हैं; जैसे फूलों के बीच में कलियाँ सुन्दर लगती हैं ॥ ६ ॥

राम के पैर में घुंघरू बहुत सुन्दर लगते हैं। राम नन्हें-नन्हे पैरों से 'थकैयाँ' (घुटनों के बल) चलते हैं। राजा दशरथ देख रहे हैं ॥ ७ ॥

जो यह मंगल गीत गायेंगे या गाकर सुनायेंगे, तुलसीदास कहते हैं, वे लोग संसार को पार कर जायेंगे और अच्छी गति पायेंगे ॥ ८ ॥

'राजा दशरथ देख रहे हैं' इस कड़ी मे प्रत्येक पुत्रवान् पिता के हृदय का सुख भरा हुआ है।

---

[२५]

राम चले ससुररिया सीतल देइ के नैहर।
उमडे जनकपुर के लोग राम के देखन ॥१॥
मचियहि बैठीं कौसिल्ला रानी सिंहासन राजा दसरथ।
राम बहुत दिन लागे निनरिया न लागै ॥२॥
हँसि हँसि चिठिया पठायेन बिहँसि ओरहन दीहेनि।
मोरे राम, के तौहैं राखेन बेलम्हाई निनरिया न लागै ॥३॥
हँसि हँसि चिठिया क बांचेन बिहँसि ओरहन लिहेन।
राम भोरे बिदा होइ जाब ओरहन अब पावा ॥४॥
साझेनि घोड़वा मलायेन रथ तैयारेन।
राम निहुरि निहुरि माथ नवायेन घरे हम जावइ ॥५॥
लागि झरोखवाँ सीतल रानी नैनन अँसुवा झारै।
राम मोह माया सब छोडौ घरहिं सिधारौ ॥६॥
अगिली के रथ पर राम पिछली पर लछिमन।
बिचली प सीतल रानी तानिउ घर आयेन ॥७॥

राम ससुराल को चले, जहाँ सीतादेवी का नैहर है। राम को देखने के लिये जनकपुर के लोग उमड़ पड़े ॥१॥

मचिये पर कौशल्या रानी और सिंहासन पर राजा दशरथ बैठे हैं। कौशल्या ने कहा—हे राजा! राम ने ससुराल में बहुत दिन लगाया, नींद नहीं आती ॥२॥

राजा ने हँसकर चिट्ठी भेजी और मुसकुराकर उलहना भेजा कि हे मेरे राम! किसने तुमको बिलमा रक्खा है? तुम्हारे बिना हमें नींद नहीं आती ॥३॥

राम ने हँसकर चिट्ठी पढ़ी और मुसकुराकर उलहना लिया। उन्होंने निश्चय किया कि सवेरे बिदा हो जायँगे, क्योंकि उलहना मिला है ॥४॥

राम ने शाम को घोड़ा मलाया, और रथ तैयार कराया। राम ने सब को झुक-झुककर सिर नवाया और कहा—हम अब घर जायँगे॥५॥

सीता-रानी झरोखे पर खड़ी हैं। उनकी आँखों से आँसू झड़ रहे हैं। वह कहने लगीं—हे राम! अब यहाँ का मोह छोड़ो और घर चलो॥६॥

आगे के रथ पर राम हैं, पीछे के रथ पर लछमण और बीच के रथ पर सीता रानी हैं॥७॥

ससुराल में जाकर और सास-ससुर और नैहर में मौजूद पत्नी के स्नेह का सुख पाकर पति का अपने घर को भूल जाना स्वाभाविक है। पर माता पिता का प्रेम-पूर्ण उलहना पाकर वह घर लौटने की जो उतावली करता है, उसमें माता-पिता के लिये उसके हृदय का प्रेम और आदर-भाव भी दर्शनीय है।

[२६]

छापक पेड़ छिउलिया तौ पतवन गहवर।
अरे रामा तिहि तर ठाढी हरिनियाँ
त मन अति अनमनि हो॥ १॥
चरतइ चरत हरिनवाँ तौ हरिनी से पूँछइ हो।
हरिनी की तोर चरहा झुरान
कि पानी विन गुरझिउ हो॥ २॥
नाहीं मोर चरहा झुरान न पानी विन मुरझिउँ हो।
हरिना आजु राजाजी के छट्ठी
तुम्है मारि डरिहइँ हो॥ ३॥
मचियै बैठी कौसिल्ला रानी हरिनी अरज करइ हो।

रानी मसुवा तौ सिझहीं रसोइयाँ
खलरिया हमैं देतिउ ॥ ४ ॥
पेडवा से टँगवइ खलरिया त मन समुझाउव हो।
रानी हेरि फेरि देखवइ खलरिया
जनुक हरिना जीतइ हो ॥ ५ ॥
जाहु हरिनी घर अपने खलरिया नाहीं देवइ हो।
हरिनी! खलरी क खँजडी मिढउवइ
त राम मोर खेलिहईं हो ॥ ६ ॥
जब जब बाजइ खँजडिया सबद सुनि अनकइ हो।
हरिनी ठाढि ढकुलिया के नीचे
हरिन क बिसूरइ हो ॥ ७ ॥
(सुलतानपुर)

ढाक का एक छोटा-सा, घने पत्तोंवाला पेड़ है, जो खूब लह-लहा रहा है। उसके नीचे हरिनी खड़ी है। उसका मन बहुत बेचैन है ॥१॥

चरते-चरते हरिन ने हरिनी से पूछा—हे हरिनी! तू उदास क्यों है? क्या तेरा चरागाह सूख गया है? या तेरा मन पानी की कमी से मुरझा गया है? ॥२॥

हरिनी ने कहा—हे प्रियतम! न मेरा चरागाह ही सूखा है और न पानी ही की कमी है। बात यह है कि आज राजा के पुत्र की छट्ठी है। आज तुम मारे जाओगे ॥३॥

रानी कौशल्या मचिये पर बैठी हैं। हरिनी ने उनसे विनती की—हे रानी! हरिन का मास तो आपकी रसोई में सीझ रहा है, हरिन की खाल आप मुझे दिलवा दीजिये ॥४॥

मैं खाल को पेड़ से टाँग दूँगी। बार-बार मैं उसे देखूँगी और मन को समझाऊँगी, मानो हरिन जीता ही है ॥५॥

कौशल्या ने कहा—हरिनी ! तुम घर लौट जाओ। खाल नहीं ागी। इस खाल की तो खँजड़ी बनेगी और मेरे राम उसे ायेंगे ॥६॥

जब-जब खँजड़ी बजती थी, तब-तब हरिनी उसके शब्द को कान ाकर सुनती और उसी ढाक के पेड़ के नीचे खड़ी होकर अपने हरिन बिसूरा करती थी ॥७॥

जिस स्त्री ने इस गीत की रचना की है, उसका हृदय प्रेम के मर्म अच्छी तरह परिचित जान पड़ता है। पशुओं में भी वह उसी प्रेम का ुभव करती है।

'बिसूरइ' शब्द की मिठास देहातवाले ही समझ सकेंगे।

[२७]

सोभवाँ बइठल सीरीकृष्ण दूतीअ लईया लावेले हो।
राजा, रउरे महल दुइ नारी झगरा नाहीं सूनीले हो ॥१॥
सोभवाँ से उठें सीरीकृष्ण त राधा के महल गइलीं हो।
रानी कवन करेलु तकसीर रुकुमीनी गरीआवेली हो ॥२॥
एतना वचन राधे सुनलीं त सुन ही न पवलीं हो।
सखीया आव चली ओनकी महलीयाँ,
ओरहन देई आइय हो ॥३॥
अँगना बटोरति चेरीया त अवरी लऊँडीया न हो।
रानी अवती बाटीं राधा सवतिया,
त रउरे महल वीच हो ॥४॥
कोने से कदम पलँगीया, राधा के बइठावहु हो।
चेरीया झापा से काढ़ि चुनरीया राधा पहिरावहु हो ॥५॥
नउजीके काढ़ पलँगिया त हम नाहीं बइठब हो।

गंगा त देखी ले हलोरत सरजू उफोरत हो।
सासु तिरबेनी पईठी नहालों त कोरवाँ गजाधर हो ॥३॥
धनवाँ त हवै तोर धनवा मनवाँ संतती तोर हो।
वहुवरि गजहाथी ठाढ़ दुअरवाँ चढल परमेसर हो ॥४॥
गंगा त हइ तोरी माता त सरजू बहीनी तोरी हो।
तिरबेनी भउजी तोहारी त कोरवाँ भतीज ले ले हो ॥५॥
(गोरखपुर)

अटा पर सोई हुई थी, कि मैंने एक सपना देखा। बड़ा अद्भुत सपना था और बड़ा ही सुन्दर था ॥१॥

मैंने धान में ठूँड निकला हुआ देखा, कपास में ढोंढियाँ लगी हुई देखी! दरवाज़े पर हाथी खड़ा देखा, जिस पर राजा दशरथ सवार थे ॥२॥

गंगाजी में लहरें उठ रही थीं, सरजू में बाढ़ आई थी, त्रिवेणी पैठकर नहा रही थीं, उनकी गोद में गजाधर थे ॥३॥

हे बहू! धान तो तुम्हारा धन है। कपास तुम्हारी संतति है। हाथी पर सवार भगवान हैं। गंगा तुम्हारी माँ, सरजू तुम्हारी बहन और त्रिवेणी तुम्हारी भावज है। वह गोद में तुम्हारे भतीजे को लिये हुये है ॥४॥

अर्थात् बहू के भाई के पुत्र होनेवाला है।

[२६]

कोपभवन राजा दसरथ सुरज मनावैं आदित मनावैंन हो।
आदित आजु तु भोर मति होहु त राम मोर न जागैं,
त राम मोर जागैं न हो ॥१॥
जो आदित भोर होइहैं अवर राम जगि हैं न हो।
सुरुजु राम बने चली जइहैं त हम कैसे जीअव हो ॥२॥

सारी रात राम राम रटलें त राम के वीरह् में न हो।
ललना भोर भईल भीनुसार त मीरुग बना बोलैला हो ॥३॥
ई सब हाल राम सुनलें अउर राम सुनले न हो।
राम ठाढे हैं राजा के सामने त माता से पुछैलें हो।
माता पिता बेदन मोही बताव कवने तरह् कर हो ॥४॥
पीता बेदन बाबु ईहै तु बन बीच बीचरहु
बन बीच बीचरहु हो।
बाबू भरथ के राजसींगासन ईहवै बेदन ह्वै हो ॥५॥
बलकल वसन लपेटी त साथ सीता लछिमन हो।
राम माता चरन धरैं माथ त बन क सीधारैंल हो ॥६॥
ईन्द्र छोड़ै ईन्द्रासन ब्रह्मा छोड़ैं आसन हो।
माता बाप क वचन न छूटइ वचन हम राखब हो ॥७॥
(बनारस)

कोप-भवन में राजा दशरथ सूर्य को मना रहे हैं। हे सूर्य ! आज सबेरा मत करो, मेरे राम जागने न पायें ॥१॥

हे आदित्य ! सबेरा हो जायगा, राम जग जायेंगे और वन को चले जायेंगे, तो मैं कैसे जीऊँगा ? ॥२॥

राम के विरह में राजा दशरथ रात भर राम-राम रटते रहे। सबेरा हुआ और मुर्गा बोला ॥३॥

राम ने सब हाल सुना। वे राजा के सामने आये। माता से उन्होंने पूछा—हे माता ! पिता को किस तरह का कष्ट है ? मुझे बताओ ॥४॥

हे बेटा ! तुम्हारे पिता को यह कष्ट है कि तुम तो वन में जाकर रहो और भरत राज-सिंहासन पर बैठेंगे ॥५॥

राम ने वल्कल वस्त्र पहन लिया और सीता और लक्ष्मण को साथ ले लिया। माता के चरणों पर सिर नवाकर वे वन को चले गये ॥६॥

राम ने कहा—इन्द्र अपना इन्द्रासन छोड़ दें और ब्रह्मा अपना ब्रह्मासन, लेकिन पिता का वचन न छूटे, मैं पिता का वचन रक्खूँगा ॥७॥

पुत्र के लिये हिंदू-समाज में राम का आदर्श अद्वितीय है। घर-घर में राम-जैसे पितृ-भक्त पुत्र हों, हरएक गृहस्थ यही चाहता है। गीत में यही भाव प्रकट किया गया है।

[३०]

पिया बइठन के मचिया गढ़ावहु हो,
पिया पौढ़न के रँगपलँग से डेह भरुआइल हो ॥ १ ॥
पिया हुन हुन आवैले पीर त केहिके जगाइब हो।
सासु त सूतैं अटरिया ननद पटसरिया हो;
सइयाँ आप सुतैं रँगमहलिया मैं केहिके जगाइब हो ॥ २ ॥
सासु उठैं बारैं त दियना ननद लेवैं हँसिया हो
प्रभु आपु चलें धगरिन बोलावन
से होरिला जनम लेहले हो ॥ ३ ॥
सासू पिपर क झार अकसाइन अरु भकसाइन हो।
सासू हम न पिअब पिपरिया,
पिपरिया भकसावै हो ॥ ४ ॥
इतना वचन राजा सुनलैं सुनहु न पवलैं हो।
राजा धाइ भइलैं घोड़े असवार
सवति हम आनब हो ॥ ५ ॥
सइयाँ पिपर क झार हम सहबै सवति नाहीं सहबै हो।
सइयाँ जनि लावहु सवति छाती ऊपर
पीपरि पीअब हो ॥ ६ ॥
(बस्ती)

हे प्रियतम ! बैठने के लिये मचिया गढ़ाओ, और पौढ़ने के लिये रंगीन पलँग बनवाओ, देह भारी होने लगी ॥ १ ॥

हे प्रियतम ! रह-रहकर पीर उठती है; किसको जगाऊँगी ? सास तो अटा पर सोती हैं; ननद पटसार में सोती है, आप रंगमहल में सोते है, मैं किसको जगाऊँगी ? ॥ २ ॥

सास उठीं, दिया जलाया। ननद ने हँसिया ली। स्वामी धगरिन बुलाने चले। होरिल ने जन्म लिया है ॥ ३ ॥

हे सास ! पीपल (औषधि) की झार बड़ी कड़वी लगती है। मैं पीपल नही पीऊँगी ॥ ४ ॥

राजा (पति) ने इतना सुना। अच्छी तरह वे सुन भी नहीं पाये कि झटपट घोड़े पर सवार होगये और बोले कि हम सौत लायेंगे ॥ ५ ॥

हे स्वामी ! मैं पीपल की झार सह लूँगी; सौत मुझसे न सही जायगी। मेरी छाती पर सौत मत लाओ, मैं पीपल पी लूँगी ॥ ६ ॥

ज़च्चा को पहले-पहल कैसी-कैसी चिन्तायें होती हैं और वह कितना ठनगन करती है, इस गीत में उसीका चित्र है। साथ ही सौत से उसे घृणा भी कितनी है कि सौत के बदले वह पीपल की झार का कष्ट सहने को तैयार हो जाती है।

बच्चा होने के बाद पीपल, सोंठ आदि कुछ दवायें ज़च्चा को दी जाती हैं।

[३१]

हनि हनि काटिन खम्भा औ करतुलिया बाँस।
जाइ हिंडोलवा गड़ाइन गंगा जमुन बालू रेत।
एक पर राधा रुकमिनि एक पर झूले कृष्ण अकेल ॥ १ ॥
पान खाइन पिच डारिन पर गइ चदरिया मे दाग।
चलहु न सखिया सहेलरि चिरवा धोवन हम जायँ ॥ २ ॥

चीर धोइ भुइयाँ डारिन लै गये कृष्ण उठाय।
कृष्ण दे डालो चीर हम जल माँझ उघारि ॥ ३ ॥
ह्वै जावै जल माछरि जलवा डराइ हम लेव।
जो तू जलवा डरैवो तो हम वन कोइल होव ॥ ४ ॥
तो तुम होवो वन कोइल लसवा लगाइ हम देव।
जो तू लसवा लगैवो तो हम वन घुँघची होव ॥ ५ ॥
जो तुम होवो वन घुँघची अगिया लगाय हम देव।
जव तुम अगिया लगैवो आधा जरव आधा लाल ॥ ६ ॥
(लखनऊ)

रूभा और करतुलिया (?) बाँस काट-काटकर गंगा और यमुना की रेती पर हिंडोले गाड़े गये। एक हिंडोले पर राधा और रुक्मिणी झूलने लगीं, और दूसरे पर श्रीकृष्ण अकेले ॥ १ ॥

श्री कृष्ण ने पान खाकर पीक कर दिया, जिससे उन की चादरों पर दाग पड़ गये ॥ २ ॥

हे सखी-सहेलियो ! चलो न, हम चीर धोने जायँगी ॥ ३ ॥

चीर धोकर उन्होंने ज़मीन पर फैला दिया। श्रीकृष्ण उठा ले गये। हे कृष्ण ! चीर दे दो, जल में हम उघाड़ी खड़ी हैं ॥ ४ ॥

हम जल में मछली हो जयँगी। श्री कृष्ण ने कहा—तो हम जाल डलवाकर पकड़ लेंगे। उन्होंने कहा—तुम जाल डलवाओगे, तो हम वन की कोयल हो जायँगी ॥ ४ ॥

तुम कोयल हो जाओगी, तो मैं लासा लगाकर पकड़ लूँगा।

तुम लासा लगाओगे तो हम घुँघची बन जायँगी ॥ ५ ॥

तुम घुँघची बन जाओगी, तो हम वन में आग लगा देंगे।

तुम आग लगा दोगे, तो हम आधी जलकर आधी लाल हो जायेंगी ॥ ६ ॥

इस गीत में प्रेमी-प्रेमिका का परस्पर हास-परिहास है। घुँघर्च बनना बताकर प्रेमिका ने यह भाव प्रकट किया है कि आधे में वह श्री कृष्ण का श्याम रूप रक्खेगी और आधे में अपना अरुण वर्ण।

[३२]

अंगना चंदन बड़ो रूख, चंपे की है डार,
मोर गढ़ाओ पालकी।
घुँघरू गढ़ लावो मेरे लाल को बाजनी ॥ १ ॥
मिचवग हो पिय भँवर सलोने सैंया भँवर घमाओ।
पाटिन चमके आरसी ॥ २ ॥
भरी तो हो पिय रेशम, सलोने सैयाँ, रेशम बान
अदवाइन पखटून की,डॉसी अहो फूलन भरी सेज ॥ ३ ॥
आलसाई है गेंदुआ, वा पर पौढ़े हैं रजवा,
डोलै सुहागिन बीजनी ॥ ४ ॥
बिजनी डुलत हँस बूझी, काहे की धना साधली ॥
मोहि खिचड़ी की बलम खिचड़ी की है साध,
औसर खिचड़ी चाहिये ॥ ५ ॥
खिचड़ी तो अपने बबुल पर, अपने बिरन पर माँग,
हम पर मेवा माँग ले ॥ ६ ॥
बबुल बसै परदेस और रजन के देस,
बीरन बारे बेदने ॥ ७ ॥
घुँघरू गढ़ लाव मेरे लाल को बाजनी ॥ ८ ॥
भौज तो हमरी पूरब की, खिचरी को मरम न जाने।
पानी वही जमुना को और गंगाजल लाव,
चरुआ छैल कुम्हार को ॥ ९ ॥

गुड तो गँडेरी ऊपजै, सोंठ वही सतुआ की
बलम सतुआ लाव ॥ १० ॥
पीपरामूर गठीली, अजवाइन हो अजपुर की।
जीरो किरैयन ऊपजै, हल्दी हरदोई से लाव ॥ ११ ॥
बायबिरंगे दुरदुरी, पीपर हो सुख पीपर लाव।
सुपारी वही रूठा की लाव, खैर लें आओ पापरी।
पान वही महुबे के चूना लाव मोतीचूर के,
चावल वही झिनवा के, दाल हरी हरी मूँग की।
घी तो वही कपिला को लाव ॥ १२ ॥
एक पियरो, दूजे मँहगनो तेल वही सरसों को
एक पियरो दूजे चरपरो ॥ १३ ॥
सोने के पिय करहा मँगाव, रतन जड़ाऊ करछुली।
परसौ वही सोने के थार, रूपे के कटोरा मे घी धरौ ॥१४॥
सोने को पिय कठुला गढ़ाव रतन जडाऊ
कि पैजना ॥ १५ ॥
बारह मन की खीर भराव तेरह मन को गेडुआ
होरिल को पिय धाय लगाव ॥ १६ ॥
हम तुम कलजुग मानिये, ऊचे से पिय ढोल धराव,
जो रे सुनैं मरी मायको ॥ १७ ॥
जो सुनि है मेरी माय, बैलन खिचरी भराय,
बकचन पियरी भराय।
ऊपर गागर घिरत की, ऊपर लड्डू सोंठ के,
कुरता टोपी रेशमी, रतन जडाऊ कि पैजना ॥ १८ ॥
बैठी है तख्त बिछाय, पञ्च आछो है नगा बापको।

पिछवारे हो पिय हौद खुदाव, वैरी दुश्मन गिर पडे.
जाहि न सुहाय सोई गिर पडे।
घुँघरू गढ़ लाव मेरे लाल को बाजनी ॥ १६ ॥
(अलीगढ़)

आँगन मे चदन का पेड़ है; चपे की डाल है, पलँग गढ़ाओ। मेरे लाल के लिये बजनेवाले घुँघरू गढ़ लाओ ॥ १ ॥

जिसके पाये सुन्दर काले-काले हों, जिसकी पाटी दर्पण की तरह चमकती हो ॥ २ ॥

जो रेशम के बाध से बुनी हो; जिसमें मखतूल की उरदावन लगी हो और उस पर फूलों की सेज बिछी हो ॥ ३ ॥

उस पर तकिये पड़े हो, राजा (पति) उस पर लेटे हों, सुहागिन पखा झल रही हो ॥ ४ ॥

पति ने पखा झलते समय पूछा—हे धन ! तुमको किस चीज की साध है ? हे प्रियतम ! मुझे खिचड़ी खाने की साध है, अभी खिचड़ी चाहिये ॥ ५ ॥

खिचडी तो अपने पिता और भाई से माँग, मुझसे तो मेवा माँग ले ॥ ६ ॥

पिता तो परदेश में, राजा के देश में बसते हैं, भाई बहुत छोटे हैं ॥ ७ ॥

भावज पूर्व की है, खिचड़ी का मर्म जानती ही नहीं मेरे लाल के लिये घुँघरू गढ़ लाओ ॥ ८ ॥

जमना का पानी और गंगा का जल लाओ। और कुम्हार का घड़ा ॥ ९ ॥

गुड़ तो गन्ने मे पैदा होता है, और सोंठ और सतुआ लाओ ॥ १० ॥

गोंदहार पीपरामूल, अजपुर की अजवाइन तथा जीरा जो क्यारियों

में पैदा होता है और हरदोई की हल्दी लाओ ॥ ११ ॥

कुरकुरी बायभिड्ग और सुख देने वाली पीपल लाओ। सुपारी, खैर, महोवे का पान, मोती का चूना, झीने चावल, हरी मूँग की दाल और कपिला गाय का घी लाओ ॥ १२ ॥

सरसों का पीला, महँगा और चरपरा तेल लाओ ॥ १३ ॥

प्रियतम ! सोने की कढ़ाही और रत्न जड़ी कलछुल मँगाओ। सोने के थाल में भोजन परसो और चाँदी के कटोरे में घी रक्खो ॥ १४ ॥

हे प्रियतम ! सोने का कंठा और रत्न-जड़ी पैंजनी गढ़ाओ ॥ १५ ॥ बारह मन का गद्दा और तेरह मन का तकिया भराओ। होरिल के लिये धाय लगाओ ॥ १६ ॥

हम तुम आनन्द मनायें। ऊँचे से ढोल बजवाओ, जिससे मेरे नैहर वाले सुनें ॥ १७ ॥

मेरी माँ सुनेगी तो बैलों पर खिचड़ी भरकर, बकुचा-भर पीयरी, उस पर घी का गागर, उसपर सोंठ के लड्डू, रेशमी कुरते-टोपी और रत्न-जड़े पैंजना भेजेगी ॥ १८ ॥

वह तख़्त बिछाकर बैठी है। बाप का भेजा हुआ पछ (सामान, जो बच्चा पैदा होने पर नैहर से आता है) आया है। हे प्रियतम ! पिछवाड़े कुंड खुदा दो, जिसमें बैरी गिर पड़े और मेरा सुख जिसे न सुहाये, वह गिर पड़े।

मेरे लाल के लिए बजने वाले घुँघरू गढ़ लाओ ॥ १९ ॥

बच्चा पैदा होने पर घर-गिरस्ती में पति-पत्नी के बीच बड़ी चहल-पहल पैदा हो जाती है। इस गीत में जच्चा के लिये स्वास्थ्यकर खाने-पीने की चीज़ों के नाम गिनाये गये हैं और बच्चों को सजाने के लिये उसकी माँ की उत्सुकता बताई गई है।

[३३]

के मोरे नौरँगीया लगावै तो थल्हवा वन्हावै।
के रे नौरँगी रखवार त के मोरे चोरी करै ॥ १॥
बाबा मोरा थल्हवा वन्हावैं नौरंगीया लगावैं।
सखी भईया मोरा बैठे रखवार तो सैंयाँ मोरा चोरी करैं ॥ २॥
बोलीया हो एक राजा बोलौंहुँ जौ बोल मानौ हो।
राजा मोरे नौरगीया कै साधि नौरगीया लेही आवौ ॥ ३॥
बोलीयहु तो धन बोलिहु बोल तो सोहावन।
धन नौरगीया बैठल रखवार नौरगी कैसे पावौं ॥ ४॥
कुकुरा के देवै पिया दूध भात पहरू के तिलवा।
पीया हाली बेगी डरीया ओनायौ रुमाल भरी तोरयो हो ॥ ५॥
हाली बेगी डरीया वोनौलें रुमाल भरी तोरेलें हो।
सखी जागी परल रखवार पेड़े धई बान्हल ॥ ६॥
सासू तो बोलही क रहेलीं ननँद उठि बौलैं हो।
भौजी जिभीया तु रखतिउ नीवार भईया मोरा बान्हल ॥ ७॥
खिरकी से बोलली जच्चारानी अपनेउ भैया संग।
भैया चोरवा अलफ सुकुवार ढीलही बान्हा बान्हौ ॥ ८॥
जौ मैं जनतौं ऐ बहीनी ये घर ही के चोरवा।
वहीनी सोनवा कै हरवा गढ़वतौं वहनोइया गले डलतौं ॥ ९॥
आवहु मोरे वहनोईया पलँग चढ़ि वैठो।
वगीचा कै लेहु रखवारी नौरगी फल चाखो ॥ १०॥
(गोंडा)

किसने नारंगी का पेड़ लगाया है ? किसने थाला बँधाया है ? कौन रखवाला है ? और कौन नारंगी चुराता है ? ॥ १ ॥

बाबा (बाप) ने नारंगी का पेड़ लगाया, और थाला बँधाया। है

सखी ! मेरा भाई रखवाली पर बैठा है और बहनोई नारंगी की चोरी करता है ॥ २ ॥

हे राजा ! एक बात कहती हूँ, जो तुम मानो। मेरा जी नारंगी खाने को ललचाया है, कहीं से नारंगी ला दो ॥ ३ ॥

हे रानी ! तुम्हारी बात मुझे बड़ी सुहावनी लगती है। लेकिन नारंगी पर रखवाला बैठा है, नारंगी कैसे मिलेगी ? ॥ ४ ॥

हे प्रियतम ! कुत्ते को मैं दूध-भात और पहरेदार को तिलवा (तिल का लड्डू) दूँगी। जल्दी डाल झुकाकर, रुमाल भरकर नारंगी तोड़ लेना ॥ ५ ॥

पति ने जल्दी डाल झुकाकर, रुमाल भरकर नारंगी तोड़ ली। हे सखी ! इतने में रखवाला जग पड़ा और उसने चोर को पकड़कर पेड़ से बाँध दिया ॥ ६ ॥

सास तो बोलने भी न पाई कि ननद उठकर कहने लगी—हे भौजी ! जीभ को काबू में रखो न ? मेरा भाई बाँधा गया है ॥ ७ ॥

खिड़की खोलकर जच्चा-रानी ने अपने भाई से कहा—हे भैया ! चोर अभी छोटी उम्र का सुकुमार है, कसकर न बाँधना ॥ ८ ॥

हे बहन ! जो मैं जानता कि घर ही का चोर है, तो सोने का हार गढ़वाकर बहनोई के गले में डालता ॥ ९ ॥

हे मेरे बहनोई ! आओ, पलँग पर चढ़कर बैठो। अब तुम बाग़ की रखवाली लो और नारंगी का फल चखो ॥ १० ॥

इस गीत में एक मनोहर रूपक है। नारंगी से अभिप्राय विवाह-योग्य कन्या से है। बहनोई उसे प्राप्त करने जाता है। कन्या का भाई उसे विवाह के बंधन में बाँधकर नारंगी का बाग़ ही उसे सौंप देता है कन्या का मज़ाक भी बड़ा सरस है।

इसमें यह भी बताया गया है कि किस प्रकार जच्चा की इच्छा की पूर्ति के लिए पति को उत्सुकता होती है।

[३४]

राजा काहे तोरा मुहवा उदासल से हमसे बतावहु ना।
राजा केही सोंच देह दुबराइल मुँह भइल पीअर ना।
राजा सासु ननद कुछ कहलीं की केहू से कुछ अनवन हो ॥१॥
रानी माई बहिन ना कुछ कहलीं न केहू से अनवन हो।
रानी मोगल बजाज क रुपयवा त उहवै मांगै ना ॥२॥
झमकि के रानी उठी बोलैं त काहे तू उदासल हो।
अंग का गहना उतारि पेटारी काढि फेंकैं ना ॥३॥
राजा लइ जाहु देई देहु मोगल बजजवा रुपयवा ना।
रानी यही सोच हम तौ उदासल
कइसे तोहीं नंगी राखउँ ना ॥४॥
राजा गहना कपडा नाहीं साधि न एकौ मोहीं भावै हो।
राजा तोहार मुँह रही हरीअर त बिन गहनै सोभब हो ॥

(बनारस)

हे राजा! तुम्हारा मुँह उदास क्यों है? मुझे बताओ न? हे राजा! कौन-सी चिंता है, जिससे तुम्हारी देह दुर्बल होगई और मुँह पीला पड़ गया है? हे राजा! सास-ननद ने कुछ कहा है? या किसीसे अनबन होगई है? ॥१॥

हे रानी! न माँ ने कुछ कहा, न बहन ने, और न किसीसे अनवन ही हुई। हे रानी! मुग़ल बजाज अपना रुपया माँगता है ॥२॥

रानी उठ खड़ी हुईं और बोलीं—तो तुम उदास क्यों हो? उसने शरीर पर से उतारकर और पेटारी से निकालकर गहने उसके सामने फेंक दिये ॥३॥

हे राजा ! ले जाओ, मुगल बजाज को रुपया दे दो।

हे रानी ! मैं तो इसी सोच से उदास था कि तुमको नंगी कैसे रक्खूँगा ? ॥४॥

हे राजा ! गहने और कपड़े की मुझे साध नहीं है। तुम्हारा मुँह प्रफुल्लित रहे, तो मैं बिना गहने ही के सुन्दर लगूँगी ॥५॥

पत्नी ने अपने पति की चिंता में हिस्सा लेकर गृहस्थों के सामने बड़ा सुन्दर आदर्श रक्खा है। पति-पत्नी के इसी तरह के परस्पर के सहयोग से गृहस्थी में सुख और समृद्धि की वृद्धि होती है।

[३५]

धोरे धोरे बैठ ननद भवज मुख धोवैंहीं ॥
भवज जो जाओ नदलाल कँगनवा मैं तो लै लऊँगी ॥१॥
साँझ हुई भय फाटी ओ हो ! भय फाटी।
अजी होय पडे नदलाल कँगनवा मैं तो लै लऊँगी ॥२॥
यह तो मेरे वीर ने घडवाया मेरे बाबल ने धडाया।
मेरी मैया ने पिन्हाया कँगनवा कैसे दै दऊँगी ॥३॥
कचहरी वैठे ससुरे वह आँगन मैं ठाढे पुकारैं,
बहुवल देदो हाथों के कँगनवा धीयल परदेसन ये ॥४॥
जूवा खिलन्ते राजा आँगन मे ठाढे।
धना दे दो हाथों के कँगनवा बहन परदेसन ये ॥५॥
कहाँ तुमने हाथों गडाये कहाँ मोल लिवाये।
परदेसी वीरन के कँगनवा मैं कैसे दै दऊँगी ॥६॥
ला मेरे मैले से कपडे मैले से कपडे।
अजुध्या मे माँगूँगा भीख कँगनवा गड़वाय दऊँगा ॥७॥
ला मेरी सोने की सराई, मेरी सोने की सराई

काढ़ूँगी कँगनश्रा की कील फेर न बुलाऊँगी ॥८॥
(बुलन्दशहर)

पास-पास बैठकर ननद और भावज मुँह धो रही हैं। हे भावज ! तुम्हारे पुत्र होगा, तो मैं कंगन ले लूँगी ॥१॥

शाम हुई। रात बीती। पौ फटी। ओहो ! पौ फटी। वाह वा ! पुत्र हुआ। मैं तुम्हारा कगन ले लूँगी ॥२॥

इसे तो मेरे भाई ने गढ़वाया था, पिता ने गढ़ाया था, और माँ ने पहनाया था, मैं कगन कैसे दे दूँगी ? ॥३॥

कचहरी में बैठे हुये ससुर आँगन में आकर खड़े होकर कहने लगे—हे बहू ! हाथ का कंगन दे दो, बेटी परदेसिन है ॥४॥

जुआ खेलते हुये राजा (पति) आँगन में आकर कहने लगे—हे बहू ! कगन दे दो, बहन परदेसिन है ॥५॥

पत्नी ने कहा—तुम अपने हाथों से गढ़ाये हो ? या ख़रीदकर लाये हो ? परदेश गये हुए भाई का दिया हुआ कंगन मैं कैसे दे दूँ ॥६॥

पति ने कहा—ला, मेरे मैले-कुचैले कपड़े तो ला। मैं अयोध्या में जाकर भीख माँगूँगा और कगन गढ़वा दूँगा ॥७॥

बहू ने कहा—ला, मेरी सोने की सलाई तो ला, कंगन की कील निकालूँ। मैं ननद को फिर न बुलाऊँगी ॥८॥

यह सोहर चमार के घर का है। चमारिनें बड़ा रस ले-लेकर इसे गाती हैं।

[३६]

जेठ बैसाखवा क दिना त गरमी बहुत होला हो।
राजा बाहर कोठवा उठवतो दुनोही जाना रहतीन हो ॥१॥
बोलिया त बोललू ये धन बोलही न जानेलू हो।
धना हम जइबो पुरबी बनिजिया कैसे रहबी अकसर हो ॥२॥

माँगूँगी। हे राजा! आप प्रसन्न होकर बोलें, मैं आपकी माता को मना लूँगी ॥ ६ ॥

इस गीत से स्त्रियों को अभिमान-रहित और नम्र होने की शिक्षा मिलती है। साथ ही पुरुष के लिये भी यह संकेत है कि वह माता के सम्मान का सदैव ध्यान रक्खे। सास-बहू के झगड़ों में पुरुष की असावधानी भी एक प्रधान कारण है।

[३८]

सावन भादौं की अँधिअरिआ बिजुलिआ चमाकइ
बिजुलिआ चमाकइ हो।
मोरी सखिआ वे हरि चले मधुबन को मैं दरसन कीन्हें
मैं दरसन कीन्हेउ हो ॥ १ ॥
का दइ कइ चले माई को काह बहिन को ये काह बहिन को।
मोरी सखिआ का दइ चले गोरी धनिऐ जो गरुये गरब से
जो गरुये गरब सेनी हो ॥ २ ॥
बइठक दइ चले मइयै रोसइयाँ बहिनियैं रोसइयाँ बहिनियइँ।
मोरी-सखिआ यह गजओवरि गोरी धनियैं जो गरुये गरब से
जो गरुये गरब सेनी हो ॥ ३ ॥
जो मोरा मूड पिरैहैं मैं किनको जगैहौं मैं किनको जगइहउँ।
मोरे राजा अन्तर जिअरा को भेद मैं किनको बतैहौं
मैं किनको बतइहउँ हो ॥ ४ ॥
जौ तोरा मूड पिराये अरि अम्मा को जगैहौ
अरि अम्मा को जगइहौ हो।
मोरी रानी अन्तर जिअरा को भेद पतिया लिखि भेजेउ
पतिया लिखि भेजेउ हो ॥ ५ ॥

काहे को फारि कगद करौं काहे की मसी करौं
काहे की मसी करउं हो।
मोरे राजा के लइ जाये मोर पतिया जो पाती लिखि भेजौं
जो पाती लिखि भेजउं हो ॥६॥
आँचर फारि कगद करौ कजरा की मसी करौ
कजरा की मसी करउ हो।
मोरी रानी लहुरा देवरवा के हाथे जो पाती लिखि भेजेउ
जो पाती लिखि भेजेउ हो ॥७॥
देवरा हो मोरा देवरा अरे तुम मोरा देवरा
अरे तुम मोरा देवरा हो।
मोरा देवरा जो हरि होयँ अकेले तो बाँचि सुनायउ
तौ बाँचि सुनायउ हो ॥८॥
रानी ने पाती भेजी अरि राजा ने बाँची अरि राजा ने बाँची।
हाँ जैसे नैन रहे जल छाय आँकु नहिं सूझै आँकु नहिं सूझइ हो ॥९॥
यह लो अपनी चकरिया अरि वह चटसरिया।
अरि वह चटसरियउ हो॥
मोरे स्वामी हम घर रानी दुखित हैं तो हमरे दरस बिन
हमरे दरस बिन हो ॥१०॥

सावन-भादों की अँधेरी रात है। बिजली चमक रही है। हे सखी! मेरे स्वामी मधुबन को चले गये। मैंने दर्शन किया है॥ १॥

माँ को क्या दे गये? बहन को क्या दे गये? और अपनी गोरी स्त्री को क्या दे गये, जिसको गर्भ है॥ २॥

माँ को बैठक दिया, बहन को रसोई दी और अपनी गोरी स्त्री को यह कोठरी दे गये॥ ३॥

स्त्री ने पूछा था—यदि मेरा सिर दर्द करने लगेगा तो किसको

जगाऊँगी ? और हे मेरे राजा ! मैं अपने मन की बात किससे बताया करूँगी ? ॥ ४ ॥

पति ने कहा था—हे रानी ! यदि तुम्हारा सिर दुखे तो माँ को जगा लेना और अपने मन की बात मुझे पत्र में लिखकर भेजा करना ॥ ५ ॥

स्त्री ने पूछा—किस चीज़ को फाड़कर मैं कागज बनाऊँगी ? और किस चीज़ की स्याही ? और कौन मेरी चिट्ठी लेकर जायगा ? जो पत्र लिखकर भेजूँगी ॥ ६ ॥

पति ने कहा—आँचल फाड़कर कागज बनाना और काजल की स्याही बनाना। मेरी रानी ! छोटे देवर के हाथ पत्र लिखकर भेजना ॥ ७ ॥

पति के चले जाने पर स्त्री ने देवर से कहा—हे देवर ! तुम मेरे प्यारे देवर हो। मेरे हरि अकेले हों तो मेरा पत्र उनको बाँचकर सुनाना ॥ ८ ॥

रानी ने पत्र भेजा। राजा ने बाँचा। बाँचते-बाँचते उनकी आँखों में आँसू भर आये। अक्षर का सूझना बन्द हो गया ॥ ९ ॥

पति ने अपने मालिक से कहा—यह लो अपनी नौकरी और यह लो अपना घर। हे मेरे मालिक ! मेरी रानी मुझे देखने के लिये तरस रही है ॥ १० ॥

मालूम होता है, स्त्री का पत्र पाकर पति नौकरी छोड़कर घर चला आया। सच है, प्रेम की परीक्षा त्याग से ही होती है। इस गीत से यह भी मालूम होता है, कि गीतों की दुनियाँ में स्त्रियाँ पढ़ी-लिखी भी थीं। तभी तो स्त्री ने देवर के हाथ पति को पत्र लिखकर भेजा था।

[३९]

सोने के खड़उवाँ कवन राम खुदुर खुदुर करई हो।
उठहु ससुर राम घेरिया मेजरिया हमरी डासहु हो ॥१॥

सोनवहि के मोरा नैहर रुपवा केवाड़ी लागे हो।
रामा सातहु भैया कै वहिनी सेजरिया कैसे डासउँ हो ॥२॥
इतना वचनु सुनि रजवा तौ मनहिं दुखित भये हो।
अरे हो हनि लिहेनि वजर केवाँड़ उघारे नहीं उघरइ।
खोलाये नाहीं खोलइँ वोलाये नाहीं वोलइँ हो ॥३॥
मचियै वैठली सासू तौ वहुवरि अरज करइ हो।
सासू कवन गुनहिं हम कीन्ह केवड़ियन हनि लीन्हे हो ॥४॥
वेटा तू मेरा वेटा तुमहिं सिर साहिव हो।
वेटा कवन गुनहियाँ वहुवर कीन्ह केवड़ियन हनि लीन्हेउ हो ॥५॥
मैया तू मेरी मैया तुहहिं मेरी मैया हौ हो।
मैया सोनवहि कै वोकै नैहर रुपवै केवाड़ी लागे हो।
मैया सातों भैया कै वहिनी सेजरिया कैसे डासइ हो ॥६॥
मटियहिं कै मोरा नैहर सुपवा केवाँड़ी लागे हो।
सासू सातों भैया किंगरी वजावइँ वहिन मोरी नाचइ हो ॥७॥

सोने के खड़ाऊँ पर चढ़े हुए राम खुटुर खुटुर चल रहे हैं। उन्होंने अपनी स्त्री से कहा—हे मेरे ससुर की कन्या! उठो और मेरी सेज बिछाओ ॥१॥

स्त्री ने कहा—सोने का तो मेरा नैहर है। चाँदी के उसमें किवाड़ें लगे हैं। मैं सात भाइयों में एक ही बहन हूँ। मैं सेज कैसे बिछाऊँगी? ॥२॥

स्त्री की यह गर्वोक्ति सुनकर पति मन ही मन बहुत दुःखी हुआ। उसने वज्र ऐसा केवाड़ा बन्द कर लिया जो खोलने से नहीं खुल सकता। स्त्री ने खोलने के लिये बार-बार कहा, बार-बार बुलाया, पर पति ने न केवाड़ खोले और न कुछ उत्तर दिया ॥३॥

स्त्री बेचारी सास के पास पहुँची। सास मचिया पर बैठी थीं। बहू

1854

ने विनती की—हे सासजी ! मैंने क्या अपराध किया जो उन्होंने केवाड़े बन्द कर लिये ? ॥४॥

माँ ने बेटे से पूछा—हे बेटा ! बहू ने क्या अपराध किया जो तुमने केवाड़े बन्द कर लिये ? ॥५॥

बेटे ने कहा—हे माँ ! सोने का तो इसका नैहर है, जिसमें चाँदी के केवाड़े लगे हैं, अपने सात भाइयों में यही एक बहन है। भला, यह सेज कैसे बिछा सकती है ? ॥६॥

स्त्री ने कहा—अच्छा, मेरा नैहर मिट्टी का है। जिसमें सूप, के केवाड़े लगे हैं। मेरे सातो भाई किंगरी बजाकर भीख माँगते हैं और मेरी बहन नाचती है ॥७॥

स्त्री का नैहर यदि सुखी हुआ तो उसके लिये स्त्री को अभिमान बहुत काफी होता है। पर नैहर के लिये उसका अभिमान ससुराल में सहन नहीं हो सकता। इस अभिमान को लेकर भी कभी-कभी सास-बहू, ननद-भौजाई और यहाँ तक कि पति-पत्नी में भी वैमनस्य फैल जाता है। स्त्रियाँ बड़ी प्रत्युत्पन्नमति होती हैं। इस गीत की स्त्री का वाक्-चातुर्य्य देखिये, उसने झटपट अपने नैहर का अभिमान त्याग दिया और पति को प्रसन्न कर लिया।

[४०]

ये रतनारे होरिलवा फागुन जिनि जनमेउ।
　　सब सखी खेलिहैं फगुवा खेलन कइसे जाबइ ॥१॥
ये रतनारे होरिलवा चैत जिनि जनमेउ।
　　सब सखी चुनिहैं कुसुमियाँ चुनन कइसे जावइ ॥२॥
ये रतनारे होरिलवा वैसाख जिनि जनमेउ।
　　घर घर मङ्गलचार देखन कइसे जाबइ ॥३॥

ये रतनारे होरिलवा जेठ जिनि जनमेउ।
जेठ तपै दुपहरिया तपन मोरे लगिहैं ॥४॥
ये रतनारे होरिलवा असाढ़ जिनि जनमेउ।
खोरी खोरी मेघवा गरजिहैं गोतिन नाहीं अइहैं ॥५॥
ये रतनारे होरिलवा सावन जिनि जनमेउ।
सब सखि झुलिहैं झलुववा झुलन कैसे जावइ ॥६॥
ये रतनारे होरिलवा भादों जिनि जनमेउ।
भादों बिजली चमाकै गोतिन नाहीं अइहै ॥७॥
ये रतनारे होरिलवा कुआर जिनि जनमेउ।
घर घर अइहैं पितरै दुखित होइ जइहैं ॥८॥
ये रतनारे होरिलवा कातिक जिनि जनमेउ।
सब सखि पुजिहैं तुलसिया पुजन कैसे जावइ ॥९॥
ये रतनारे होरिलवा अगहन जिनि जनमेउ।
सब सखि जैहैं गवनवाँ देखन कैसे जावइ ॥१०॥
ये रतनारे होरिलवा पूस जिनि जनमेउ।
पूस हनै तुसार जाड़ मोरे लगिहैं ॥११॥
ये रतनारे होरिलवा माघ तू जनमेउ।
माघै मास सुमास महल बीचे रहबइ ॥१२॥

हे मेरे रतनारे बेटा! फागुन में जन्म न लेना। सब सखियाँ फाग खेलने जायँगी, मैं कैसे जाऊँगी? ॥१॥

हे मेरे रतनारे बेटा! चैत में जन्म न लेना। सब सखियाँ कुसुम चुनने जायँगी। मैं कैसे जाऊँगी? ॥२॥

हे मेरे रतनारे बेटा! बैसाख में जन्म न लेना। बैसाख में घर-घर विवाह आदि उत्सव होते हैं, मैं देखने कैसे जाऊँगी? ॥३॥

हे मेरे रतनारे बेटा! जेठ में जन्म न लेना। जेठ की दुपहरी की

ज्वाला मुझ से कैसे सही जायगी ? ॥४॥

हे मेरे रतनारे बेटा ! आषाढ़ में जन्म न लेना। गली-गली में बादल गरजेंगे, तब अड़ोस-पड़ोस की स्त्रियाँ सोहर गाने के लिये कैसे आयेंगी ? ॥५॥

हे मेरे रतनारे बेटा ! सावन में जन्म न लेना। सब सखियाँ सावन में झूला झूलने जायँगी। मैं कैसे जाऊँगी ? ॥६॥

हे मेरे रतनारे बेटा ! भादों में जन्म न लेना। भादों में बिजली चमकेगी तो स्त्रियाँ कैसे आयेंगी ? ॥७॥

हे मेरे रतनारे बेटा ! कुआर में जन्म न लेना। घर में पितर आयेंगे और दुःख पायेंगे ॥८॥

हे मेरे रतनारे बेटा ! कातिक में जन्म न लेना। सब सखियाँ तुलसी की पूजा करने जायँगी, मैं कैसे जाऊँगी ? ॥९॥

हे मेरे रतनारे बेटा ! अगहन में जन्म न लेना। सब सखियाँ गौने जायँगी, मैं उन्हें देखने और भेंट करने कैसे जाऊँगी ? ॥१०॥

हे मेरे रतनारे बेटा ! पूस में जन्म मत लेना। पूस में पाला पड़ता है, मुझे बड़ी जाड़ा लगेगी ॥११॥

हे मेरे रतनारे बेटा ! माघ में जन्म लेना। माघ ही सबसे अच्छा महीना है। माघ में सुख से महल में रहूँगी ॥१२॥

इस गीत में बारहो महीनों की साधारण आलोचना की गई है।

[४१]

गरजौ हे दैवा ! गरजौ गरजि सुनावउ हो।
दैवा ! बरसौ जये के खेतवा बरसि जुड़वावउ हो ॥ १ ॥
जनमौ हे पूता ! जनमौ मोहिं दुखिया घर हो।
पूता ! उजरा डिहवा बसावउ बखैया जुड़वावउ हो ॥ २ ॥

कैसे मैं जनमउँ ये मैया कैसे मैं जनमउँ रे।
मैया ! टुटहे खिलँगवा ओलरविउ तुकारि पुकरविउ हो ॥ ३ ॥
जनमौ हे पूता ! जनमौ मोहिं दुखिया घर हो।
आल्हर चनना कटइवों तौ पलंग सुलइवों हो ॥ ४ ॥
पीताम्बर ओढ़इविउँ तौ भैया कहि गोहरइविउँ हो।
तेलवा त मिलिहैं उधरवा नुनवाँ व्यवहरवाँ हो।
मैया ! कोखिया क कवन उधार जवइ विधि देइहैं
तवइ तू पउविउ ॥ ५ ॥
सुरजा उवत पह फाटत होरिला जनम लीन्हा हो।
रामा बाजे लागे अनँद बधैया उठन लागे सोहर हो ॥ ६ ॥

हे बादलो ! बरसो। गरजकर सुनाओ। जौ के खेत में बरसो। उसे शीतल करो ॥ १ ॥

हे पुत्र ! मुझ गरीबनी के घर जन्म लो। उजड़े हुए खँडहर को बसाओ। पिता के हृदय को शीतल करो ॥ २ ॥

हे माँ ! मैं कैसे तुझ गरीबिनी के घर जन्म लूँ? तू टूटे खटोले पर मुझे सुलायेगी, और तू कहकर बुलायेगी ॥ ३ ॥

माँ ने कहा—हे बेटा ! तुम मेरे घर जन्म लो। मैं ताजा चन्दन कटाकर उसका पलङ्ग बनवाऊंगी और उस पर तुमको सुलाऊँगी। पीताम्बर ओढ़ाउँगी। भैया कहकर पुकारूँगी। मुझ गरीबिनी के घर जन्म लो ॥ ४ ॥

हे माँ ! तेल और नमक तो उधार-व्यवहार में भी मिल सकते हैं, पर कोख तो उधार नहीं मिल सकती। जब भगवान देंगे, तभी पाओगी ॥ ५ ॥

बड़े, तड़के पौ फटते ही पुत्र ने जन्म लिया। आनंद की बधाई बजने लगी और सोहर गाये जाने लगे ॥ ६ ॥

इस गीत में बादलों से पुत्र प्राप्ति की अभिलाषा प्रकट की गई है। इसका रहस्य गीता के इस श्लोक में है—

यज्ञाद्भवति पर्जन्यो पर्जन्यादन्न सम्भव ।

अन्नाद्भवन्ति भूतानि—

अर्थात् यज्ञ से बादल होते हैं। बादल से अन्न होते हैं और अन्न से प्राणी पैदा होते हैं।

[४२]

केकर ऊँच मँदिलवा त पुरुब दुअरिया हो।
रामा 'कौन' राम परम सुनरिया त बार न बाँधइ
सिर न सँवारइ भुइयाँ प लोटइ हो ॥१॥
ससुर क ऊँच मँदिलवा त पुरुब दुअरिया हो।
'कवन' राम परम सुनरिया त बार न बाँधइ,
सिर न सवाँरइ भुइयाँ प लोटइ हो ॥२॥
अँगना बटोरत चेरिया औरो लौंड़ियाउ हो।
चेरिया राजा के खबरि जनाउ बेदन मोर कहियो हो ॥३॥
पसवा जे खेलत 'कवन' राम रजवा कवन राम हो।
राजा तोरी धन बेदन बेआकुल त तोहँके बोलावईं हो ॥४॥
पसवा जे फेंकैं राजा बेल तर औरो बबुर तर हो।
राजा झपटि पईठैं गजओबरि कहै रे धन बेदन हो ॥५॥
मुड़ मोर बहुत धमाकै अरे कड़िहर सालइ हो।
राजा मुअलिउँ कमरिया की पीर तो दाई बोलावहु हो ॥६॥
तुम राजा बइठौ गोड़वरियाँ हम मुडवरियाँ हो।
राजा पहर पहर पीर आवै दुनौं जन अँगइब हो ॥७॥

छानी जो होत त छवउतिउ मरद बोलवतिउ हो।
रानी वेदन का बाँधल मोटरिया कले कल छूटहिं
त छोरहिं नरायन हो ॥८॥

आवहु रान्ह परोसिनि तुहुँ मोर गोतिन हो।
गोतिन यहि बौरहिया समझावो वेदन कइसे बाँटो हो ॥९॥

यह ऊँचा घर किसका है, जिसका द्वार पूर्व ओर है? यह किसकी परम सुन्दरी स्त्री बाल नहीं बाँधती, न सिर सँवारती है और भूमि पर लोट रही है? ॥ १ ॥

यह घर ससुरजी का है, जिसका द्वार पूर्व ओर है। राम की परम सुन्दरी स्त्री न बाल बाँधती है, न सिर सँवारती है और भूमि पर लोट रही है ॥ २ ॥

दासियाँ आँगन बुहार रही हैं। हे दासी! मेरे स्वामी को खबर करो और मेरी प्रसव-वेदना का समाचार कहो ॥ ३ ॥

मेरे राजा पाँसा खेल रहे थे। दासी ने कहा—हे राजा! आपकी प्यारी स्त्री प्रसव-वेदना से व्याकुल है और आपको बुला रही है ॥ ४ ॥

स्वामी ने पाँसा खेल और बबूल के नीचे फेंक दिया। वे झपटते हुए कोठरी में चले आए और पूछने लगे—मेरी प्यारी रानी! क्या तकलीफ है? ॥ ५ ॥

मेरा सिर बहुत धमक रहा है और कमर कटी जा रही है। हे राजा! कमर की पीड़ा से तो मैं मरी जा रही हूँ। जल्दी दाई को बुलाओ ॥ ६ ॥

हे राजा! तुम पैर की तरफ बैठो और मैं सिरहाने बैठूँगी। हम दोनों मिलकर एक-एक पहर पर आनेवाली पीड़ा को सहेंगे ॥ ७ ॥

हे रानी! छान-छप्पर छवाना होता तो मर्द उसमें मदद कर सकता

भाभी हो मोरी भाभी तुम्हीं मोरी भाभी।
ये मोरी भाभी ! अँचरे में लै तिल चौरी त सुरुज मनावउ ॥ ८॥
न्हाइ धोइ जब ठाढ़ी भई सुरुज मनावईं।
ये मोरे सूरुज हम पर होउ दयाल सजन बोली बोलईँ ॥ ६॥
सुरुज मनावइ न पायउँ होरिल भुईं लोटईं।
बाजै लागी अनंद बधाई गावैं सखि सोहर ॥१०॥
टेरो न गॉव को बढ़ई हाल चलि आवै बेगि चलि आवइ।
मोरे राजा चन्दन बिरिछ कटावइँ औ पलँग बिनावइँ ॥११॥
ई गुर बरनि पलँगिया रेसम उरदावन।
मोरी रानी ! आइ सोवउ सुख नींद मैं बेनिया डोलावउँ ॥१२॥
अब तौ बेनिया डुलौबेउ बहुत निक लगवइ।
मोरे राजा ! एक होरिल के कारन तुँ बोली हनि मारेउ
करेजे मोरे सालइ ॥१३॥

स्त्री जौंर की तरह पतली और फूल की तरह सुन्दरी है। वह अपने प्राणप्यारे की अटारी पर चढ़ गई और सुख की नींद सो गई ॥१॥

पानी से भरा हुआ लोटा सिरहाने रख दिया और ओढ़नी पैरों के पास। स्त्री सुख की नींद सो गई। उसे कुछ ख़बर न रही ॥२॥

सो-सा कर जब वह उठी, तब चौंक कर उठ बैठी। पति से उसने कहा—हे मेरे राजा ! मेरा आँचल छोड़ दो। मैं पलँग से नीचे उतर कर बैठूँगी ॥३॥

पति ने कहा—क्या तेरी सास तुझे बुला रही है ? या ननद पुकार रही है ? या तेरा कोई बालक रो रहा है ? जिसे लेकर तू बैठेगी ॥४॥

स्त्री ने कहा—न सास बुला रही है, न ननद। हे मेरे स्वामी ! भजन की बेला है। मैं अपना प्राण लेकर बैठूँगी ॥५॥

कोठे से उतरकर वह प्रसूता देवी आँगन में खड़ी हुई। बाहर से

देवर ने आकर पूछा—हे भाभी ! तू उदास क्यों है ? ॥६॥

भाभी ने कहा—हे मेरे प्यारे देवर ! तुम्हारे भाई ने विष ऐसी एक बात कह दी है, जो मेरे कलेजे में दुख दे रही है ॥७॥

देवर ने कहा—हे मेरी प्यारी भाभी ! तुम आँचल मे तिल और चावल लेकर सूर्य देवता को मनाओ ॥८॥

स्त्री नहा-धोकर खड़ी हुई और सूर्य को मनाने लगी। हे सूर्य ! मुझ पर कृपा करो। मेरे पति ने ताना मारा है ॥९॥

अभी अच्छी तरह प्रार्थना कर भी न पाई थी कि पुत्र उत्पन्न हुआ और पृथ्वी पर लोटने लगा। आनन्द की बधाई बजने लगी और सखियाँ सोहर गाने लगीं ॥१०॥

मेरे राजा गाव के बढई को जल्दी बुला रहे हैं। चन्दन का वृक्ष कटाकर पलँग बनवा रहे हैं ॥११॥

लाल रंग की पलँग है, जिसमे रेशम की रस्सी लगी है। पति ने कहा—मेरी प्यारी रानी ! आकर इस पलँग पर सुख की नींद सोओ और मै पखा हाँकूँ ॥१२॥

स्त्री ने हँसकर कहा—हाँ, अब तो तुम जरूर पंखा हांकोगे। अब मैं तुमको बहुत अच्छी मालूम होऊँगी। पर एक पुत्र के कारण तुमने ऐसी बोली मुझे मारी थी, जो मेरे कलेजे में चुभ गई है ॥१३॥

जहाँ आपस में बहुत प्रेम होता है, वहाँ इस तरह की छोटी-छोटी बातों को लेकर लड़ाई-झगड़े चलते ही रहते है। यदि यह न हो, तो प्रेम की मिठास मालूम ही न हो।

[४५]

छापक पेड़ छिउल कर पतवन घनविन हो।
जिहि तर ठाढी सीता देई बहुत विपत मे हो ॥१॥

कहाँ पाउब सोने क छुरउना कहाँ पाउब धगरिन।
को मोरी जागइ रइनिया कवन दुख बाँटइ ॥ २ ॥
वन मे निकरीं वन तपसिनि सीतहिं समुझावईं।
चुप रहु बहिनी तु चुप रहु हम देवइ सोने क छुरउना
हम तोरी जागव रइनिया हमहि होवै धगरिन।
विपत महिं बाँटव ॥ ३ ॥
होत भोर लोही लागत कुस के जनम भये।
बाजै लागी अनँद बधाई गावईं सखि सोहर ॥ ४ ॥
जौ पूता होत अजोधिया राजा दसरथ घर हो।
राजा सगरिउ अजोधिया लुटउते कौसल्या देई अभरन ॥ ५ ॥
अब तो पूता जनमेउ वन में बनफुल तोरउ हो।
बेटा! कुस रे ओढ़न कुस डासन बनफल भोजन हो ॥ ६ ॥
हँकरिन वन केर नउवा वेगहि चलि आयउ।
नउवा जल्दी अजोधिया क जाओ रोचन पहुँचाओ ॥ ७ ॥
पहिला रोचन राजा दसरथ दुसर कौसिल्या रानी।
तीसर दिन्ह्यो देवर लछिमन पियहिं न बतायउ ॥ ८ ॥
राजा दसरथ दिहेन घोड़वा कौसिल्या रानी अभरन।
लछिमन देवरा दिहेन पाँचौ जोड़वा त नउवा बिदा कर ॥ ९ ॥
सोनेन केर गेंड़वना तो राम दतिवन करें।
लछिमन भहर भहर होय माथ रोचन कह पायउ ॥१०॥
भौजी तो हमरी सीता देई दोऊ कुल राखनि।
भइया उनके भये नन्दलाल रोचन हम पावा ॥११॥
हांथे क गेडुवा हाथ रहा मुख की दँतिवन मुखै रहि।
ढुरै लागे मोतियन आँसु पटुकवन पोंछईं ॥१२॥

आगे के घोड़वा वशिष्ट मुनि पाछे कै लछिमन।
बीचे के घोड़वा रामचन्दर सीता के मनावन चले ॥१३॥
तुम्हरा कहा गुरू करवइ परग दस चलवइ।
फाटक धरती समावइ अजोधिया न जावइ ॥१४॥

पलाश (ढाक) का छोटा सा पेड़ है, जो हरे पत्तों से खूब घना हो रहा है। उसके नीचे सीता देवी खड़ी हैं, जो घोर विपदा मे पड़ी हैं ॥१॥

सीता सोच रही हैं—यहाँ वन मे सोने का छुरा कहाँ मिलेगा? यहाँ धगरिन (नाल काटने वाली) कहाँ मिलेगी? मेरी शुश्रूषा के लिये रात भर कौन जागेगा? मेरा दु ख कौन बँटायेगा? ॥२॥

वन मे से वन की तपस्विनियां निकलीं। वे सीता को समझाती हैं—हे सीता बहन! चुप रहो, धीरज धरो। हम सोने का छुरा देंगी और हमीं धगरिन होंगी। हमीं तुम्हारे लिये रात भर जागेंगी और हमीं दुःख बँटायेंगी ॥३॥

पौ फटते ही कुश का जन्म हुआ। आनन्द की बधाई बजने लगी और सखियाँ सोहर गाने लगीं ॥४॥

सीता ने कहा—हे बेटा! यदि तुम अयोध्या मे राजा दशरथ के घर पैदा हुये होते तो उनके हर्ष का ठिकाना न होता। वे आज सारी अयोध्या लुटा देते और मेरी सास कौशल्या अपने कुल गहने लुटा देतीं ॥५॥

अब तो तुम वन मे पैदा हुये हो, वन के फूल तोड़ो, कुश बिछाओ, कुश ओढ़ो और वनफल खाओ ॥६॥

वन का नाऊ बुलाया गया। वह तत्काल आ पहुचा। हे नाऊ! जल्दी अयोध्या जाओ और रोचन पहुचाओ ॥७॥

पहला रोचन राजा दशरथ को देना। दूसरा रानी कौशल्या को।

तीसरा रोचन मेरे देवर लक्ष्मण को। पर मेरे पति को कुछ न बताना ॥८॥

राजा दशरथ ने नाऊ को घोड़ा दिया, कौशल्या ने गहने और लक्ष्मण ने पाँचों जोड़े (पगड़ी, दुपट्टा, अँगरखा, धोती और जूता) देकर नाऊ को बिदा किया ॥९॥

सोने के लोटे से राम दातुन कर रहे थे। लक्ष्मण के माथे पर रोली लगी देखकर राम ने पूछा—लक्ष्मण! तुम्हारा माथा दमक रहा है। तुमने यह रोचन कहाँ पाया ? ॥१०॥

लक्ष्मण ने कहा—हे भैया! मेरी भाभी सीता देवी दोनों कुलों की प्रतिष्ठा बढ़ानेवाली हैं। उनके पुत्र हुआ है। वही रोचन मैंने पाया है ॥११॥

यह सुनते ही राम ऐसे व्यथित हुये कि हाथ का लोटा उनके हाथ ही में रह गया और दातुन मुँह ही में रह गई। आँखों से मोती ऐसे आँसू ढलक पड़े। वे दुपट्टे से उसे पोंछने लगे ॥१२॥

आगे के घोड़े पर वशिष्ठ, पीछे के घोड़े पर लक्ष्मण और बीच के घोड़े पर राम सीता को मनाने चले ॥१३॥

सीता ने कहा—हे गुरु! आप की आज्ञा मैं नहीं टालूँगी। दस क़दम चलूँगी। पर अयोध्या में नहीं जाऊँगी और फाटक पर ही पृथ्वी में समा जाऊँगी ॥१४॥

सीता देवी पर मिथ्या सदेह कर के राम ने लोक-मर्यादा की रक्षा के लिये उनको जो बनवास दिया था, स्त्री-समाज ने उसका अनुभव बड़े ही दर्द से किया है। वाल्मीकि और तुलसी दोनों इस घटना को छोड़ गये, पर स्त्रियों ने सहस्र-सहस्र कंठ से उसे गाया है और सीता के साथ सहानुभूति प्रकट की है।

इस गीत का सुर तो "पियहिं न बतायउ" में है। मनस्विनी

तिग्रता का चित्र इस छोटी सी कड़ी मे ऐसा उतर आया है कि देखते
ो बनता है।

[४६]

कमर मे सोहै करधनियाँ पाँव पैजनियाँ।
ललन दूरी खेलन जनि जाओ ढुंढ़न हम न अउबै ॥१॥
सात विरन की वहिनिया वाप धिया एकै।
हरिजी के परम पियारी ढूँढ़न कैसे अउबै ॥२॥
भोर भये भिनसरवा कलेवना की जुनिया।
होइ गै कलेवना की वेर ललन नहिं आये ॥३॥
अँगिया तो फाटै बँदै बँद अँचरा करै कर।
छतिया उठीं हहराय ढूँढन हम आइन ॥४॥
सात विरन की वहिनिया वाप कै एकै।
मैया वावू क परम पियारि ढूँढ़न कैसे आइउ ॥५॥
छाँडेउँ मैं सातौ विरनवा वाप कै नैहर।
छोड़ दिन्हौं हरि की सेजरिया ढूँढ़न हम आइन ॥६॥
जैसे कुम्हार क आँवाँ त भभकि भभकि रहै।
वेटा वैसइ माई क करेजवा त धधकि धधकि रहै ॥७

बच्चे के कमर मे करधनी और पाँव मे पैंजनी शोभा दे रही है।
माँ कहती है—हे वेटा! दूर खेलने मत जाओ। मैं ढूँढ़ने
आऊँगी? ॥१॥

सात भाइयो की तो मै बहन, अपने वाप की एक ही कन्या
अपने प्राणेश्वर की परम प्यारी, भला, मैं तुमको ढूँढ़ने
आऊँगी? ॥२॥

सवेरा हुआ। कलेवे का समय आया। कलेवे का वक्त हो
वेटा घर नहीं आया। कहाँ खेल रहा है ॥३॥

माँ से रहा नहीं गया। बच्चे के लिये हृदय ऐसा उमड़ा कि चोली के बन्द-बन्द टूट गये और आँचल के तार-तार अलग हो गये। हृदय पीड़ा से व्यथित हो गया। तब वह ढूँढ़ने आई ॥४॥

बेटे ने पूछा—तुम सात भाइयों की बहन, बाप की एक ही बेटी तथा मेरे पिता की बड़ी प्यारी, मुझे ढूँढ़ने कैसे निकली? ॥५॥

माँ ने कहा—मैंने सातों भाइयों को छोड़ दिया। नैहर भी भुला दिया। स्वामी की सेज भी छोड़ दी। मैं तुमको ढूँढ़ने आई हूँ ॥६॥

जैसा कुम्हार का आँवाँ सुलगता है, वैसे ही पुत्र के लिये माँ का हृदय धधक-धधक उठता है ॥७॥

किसी स्त्री को पहला ही पुत्र हुआ है। संसार में प्रेम के लिये उसे एक नया पदार्थ मिला है। पहले वह जानती नहीं थी कि पुत्र-प्रेम कितना प्रबल होता है। स्त्री के हृदय में पुराने और नये प्रेम-पात्रों का जब संघर्ष जारी हुआ है, तब उसने पुत्र-प्रेम के पीछे सब को छोड़ दिया। सचमुच, पुत्र के लिये माँ का प्रेम अगाध होता है।

[४७]

राजा दसरथ के पिछवरवाँ अतर भल गमकइ हो।
अरे अतर क वास सुवास कौशिल्या रानी के राम भये ॥ १ ॥
घर में से निकलीं केकैया रानी सुनहु सुमित्रा रानी हो।
बहिनी आव चलि बड़े दरबार दोहॅस फेरि आई ॥ २ ॥
अँगना बटोरति चेरिया त अवरी लऊँडिआ हो।
आवेलीं केकैया सुमित्रा त राम जनि देखावहु हो ॥ ३ ॥
अँगना बटोरति चेरिआ त अवरी लऊँडिआ हो।
चेरिआ झारि बिछाव सुखपलिआ बईठैं रानी केकय ॥ ४ ॥
हम नहिं बैठब कौशिल्या रानी हम नहिं बैठब।
तनि एक राम क देखब घरे हम जाइब ॥ ५ ॥

का हम राम देखाई त का राम सुन्दर
अरे छठिआ बरहिआ के आया त राम देखी जाया ॥ ६ ॥
ई मती जानहु कौशिल्या रानी का राम सुन्दर।
इहै राम लंका फुकैहैं अयोध्या बसैहैं ॥ ७ ॥

राजा दशरथ के पिछवाड़े इत्र खूब महक रहा है। इत्र की सुगन्ध बड़ी मीठी है। जान पड़ता है, कौशल्या के राम हुये हैं ॥१॥

घर में से कैकेयी रानी निकलीं और सुमित्रा से बोलीं—हे बहन! आओ चलें, बड़े दरबार की हाजिरी दे आवें ॥२॥

आँगन बटोरती हुई दासी ने कहा—कैकेयी और सुमित्रा आ रही हैं, इन्हें राम को न दिखाओ ॥३॥

आँगन बटोरती हुई दासियों से कौशल्या ने कहा—जल्दी से सुखपाल झाड़ कर बिछा दो, जिस पर रानी कैकेयी बैठेंगी ॥४॥

कैकेयी ने कहा—हे रानी कौशल्या! हम बैठेंगी नहीं। हम एक बार राम को देखकर घर जायँगी ॥५॥

कौशल्या ने कहा—राम को क्या दिखाऊँ? क्या राम सुन्दर हैं? छठी या बरही को आइयेगा तो राम को देख लीजियेगा ॥६॥

कैकेयी ने कहा—हे कौशल्या रानी! यह मत समझना कि राम सुन्दर नहीं हैं। यही राम लंका फुकायेंगे और अयोध्या बसायेंगे ॥७॥

गीत की पाँचवीं छठी पंक्तियों से मालूम होता है कि घर में राग-द्वेष फैलाने में नौकरानियों का कितना हाथ होता है। अन्तिम पंक्तियों में रूप की अपेक्षा गुण की महिमा अधिक बताई गई है। हिन्दू-समाज का सदा से यही ध्येय रहा है। तभी इस समाज में विश्वविजयी वीर पैदा होते थे।

[४८]

ससुरु दुअरवा जॅम्हिरिआ तो लहर लहर करै, मॅहर मॅहर करै।
मोरे साहव अँगनवाँ रस चूवइ जच्चा रानी भीजैं॥१॥

दुअरवा से आये वीरन भैया छुरिया पहांटैं कटरिया पहाटैं।
सारे कटवौं मैं रुखवा जम्हिरिआ वहिन मोरी भीजैं॥२॥

ओवरी से वोलीं जच्चा रानी नैना कजर दिहे सिरहा सिंदुर दिहे,
मुंह मा ताम्बूल लिहे, कोरवा होरिल लिहे हो।
भैया ससुरे लगाई जम्हिरिआ जम्हिरिआ जनि काटेउ॥३॥

मेरे ससुर के द्वार पर जम्हीरी नीवू का वृक्ष लहलहा रहा है, महक रहा है। उससे आँगन में रस टपका करता है, जिससे जच्चा रानी भीगती हैं॥ १ ॥

बाहर से भाई आया। वह छुरी तेज करने लगा, कटारी तेज करने लगा और कहने लगा—मैं इस नीवू साले को काट डालूँगा। मेरी बहन भीगती है॥२॥

कोठरी से जच्चा रानी निकलीं, जो आँखों मे काजल दिये हुये हैं, सिर पर सिंदूर लगाये हैं, मुँह में पान लिये हुये हैं और गोद में बालक लिये हुये हैं। उन्होंने कहा—हे भाई! इस नीवू को मेरे ससुरजी ने लगाया था, इसे मत काटो॥ ३ ॥

मालूम होता है, ससुर का देहान्त हो चुका है। उनके हाथ का लगाया हुआ जम्हीरी नीवू का दरख्त उनके स्मृति-चिन्ह स्वरूप मौजूद है। ससुर के हाथ की चीज है, इस ख्याल से बहू को उस पर कितना प्यार है, कितनी ममता है, यह गीत से स्पष्ट है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ स्मृति की रक्षा कहीं अधिक करती हैं।

[४६]

काहेक चनना उतारेउ कपुरा भरायउ।
रानी केहिं देखि चढ़लिउ अँटरिया काहे देखि मुरझिउ ॥ १ ॥
होरिला कै चनना उतारेन कपुरा भरायन।
राजा तुम्हैं देखि चढ़लिउँ अँटरिया सवति देखि मुरझिउँ ॥ २ ॥
रानी तुम तो रेंड कै कँड़रिया फट्ट सेती टुटविउ।
रानी हम तो बाँस कै कइनिया नवाये नाहीं टुटवैं ॥ ३ ॥

पति ने पूछा—किसका चन्दन उतार कर कपूरा भराया ? किसे देख कर तुम अटा पर चढ़ी और किसे देखकर कुम्हला गई ? ॥ १ ॥

स्त्री ने कहा—बच्चे का चंदन उतार कर कपूर भराया। हे मेरे राजा ! तुमको देखकर अटा पर चढ़ी और सौत को देखकर मुरझा गई ॥ २ ॥

पति ने कहा—हे रानी ! तुम्हारा स्वभाव तो रेंड के कोमल डंठल की तरह है कि जरा सा धक्का लगा और खट से टूट गया। पर मेरा स्वभाव बाँस की पतली टहनी की तरह है, जो झुक सकता है, पर टूटता नहीं ॥ ३ ॥

पति ने दो स्वभावों की कैसी सुन्दर तुलना की है। पति ने स्त्री को उपदेश किया है कि स्वभाव सहनशील होना चाहिये।

[५०]

चनना कटाइउँ पलँगा बिनाइउँ।
मखमल ईगुर चराइउँ रेशम ओरदावनि ॥ १ ॥
तेहि पर सुतैं कवन रामा कोरवाँ कवन देई।
चेरिया तो बेनियाँ डोलावैं नींद भलि आवइ ॥ २ ॥
छपटि क सूतैं मोर साहब तुम सिर साहब हो।
मोरे बारे ललन की अँगुलिया पसिनवाँ बुड़त है ॥ ३ ॥

बोलेउ तौ धन बोलेउ बोलेउ न जानेउ हो।
तोरे बारे ललन की अँगुलिया मैं दोहरी सिअइहौं ॥ ४ ॥
कहवाँ के दरजी बोलइहौ तौ कहँवा के सुइया हो।
कैसे क बन्द लगइहौ ललन पहिरइहौं हो ॥ ५ ॥
अगरे कै दरजी मँगइहौं पटने कै सुइया हो।
रानी बत्तिस बन्द लगइहौं ललन पहिरइहौ ॥ ६ ॥
हाथन सोने क खगउडा पायन पैजनियाँ।
लालन खेलिहैं बरोठवा बतीसो बन्द झुलिहैं ॥ ७ ॥
बहै पुरवइया पवन मल डोलइ हो।
लालन खेलिहैं बरोठवा दुनौ जन देखब हो ॥ ८ ॥

चन्दन कटाकर पलँग बनवाया, उसके पावों में इंगुर का रङ्ग कराया और रेशम की ओरदावन (पैताने की ओर लगी हुई रस्सी) लगवाया ॥ १ ॥

उस पर राम सोते हैं, जिनकी गोद में देवी हैं। दासी पङ्खा झल रही है ॥ २ ॥

स्त्री की गोद में शिशु है। वह कहती है—मेरे स्वामी, मेरे प्राणनाथ, मुझ से चिपक कर सो रहे हैं। मेरे छोटे बच्चे की कुरती पसीने से तर हो रही है ॥ ३ ॥

पति ने कहा—हे मेरी प्यारी रानी! तुमने कहा तो सही, पर कहना नहीं आया। मै तुम्हारे नन्हे बच्चे के लिये दो-दो कुरते सिला दूँगा ॥ ४ ॥

स्त्री कहती है—कहाँ का दरजी बुलाओगे? और कहाँ की सुई होगी? अँगुली मे कै गो बन्द लगेंगे? जिसे तुम मेरे लाल को पहनाओगे ॥ ५ ॥

पति ने कहा—आगरे का दरजी बुलाऊँगा, पटने की सूई मँगाऊँगा। अँगुली में बत्तीस बन्द लगेंगे। जिसे मै लाल को पहनाऊंगा ॥ ६ ॥

बच्चे के हाथ में सोने का कड़ा होगा, पैरों में पैजनियाँ होंगी। मेरे लाल बैठक में खेलेंगे और बत्तीसो बन्द लटकते रहेंगे ॥ ७ ॥

पूर्वा हवा चल रही है। वायु की लहरें बड़ी सुहावनी लग रही हैं। मेरे लाल बैठक में खेलेंगे और हम दोनों देखेंगे ॥ ८ ॥

पति-पत्नी की एकान्त लालसा इस गीत में चित्रित है। साथ ही किसी समय कहाँ कहाँ की क्या चीज़ें प्रसिद्ध थीं, इसका वर्णन भी है।

[५१]

जेठ तपै दिन रात तो धरती गरम भई।
राजा बाहेर बँगला छवउता दुनौं जने सोइत ॥ १ ॥
रानी न हो मोरी रानी तुहीं मोरी रानी।
लागत मास असाढ दखिन चले जइहैं।
रानी बाहेर बँगला छवावौं अकेले तुम सोवउ ॥ २ ॥
राजा न हो मोरे राजा तुहीं मोरे राजा।
सावन भादों की रात अकेले कैसे रहवै ॥ ३ ॥
रानी न हो मोरी रानी तुहीं मोरी रानी।
मैके से बिरन बुलाओ नइहर चली जावो ॥ ४ ॥
काहे क बिरन बुलौबै नइहर चली जावइ।
राजा ! सासु की करिके टहलिया उमिरि हम बितउब ॥ ५ ॥

जेठ रात-दिन तप रहा है। पृथ्वी गर्म हो गई है। हे मेरे राजा ! बाहर बँगला छवाते, तो हम दोनों उसमें सोते ॥ १ ॥

पति ने कहा—हे मेरी रानी ! तुम मेरी प्यारी रानी हो। मैं तो आषाढ़ लगते ही दक्खिन चला जाऊँगा। कहो तो तुम्हारे लिये बाहर बँगला छवा दूँ, जहाँ तुम अकेले सोना ॥ २ ॥

स्त्री ने कहा—हे मेरे राजा ! तुम मेरे राजा हो। सावन भादों की अँधेरी रात में मैं अकेले कैसे रहूँगी ? ॥ ३ ॥

पति ने कहा—हे रानी ! तुम मेरी रानी हो। नैहर से अपने भाई को बुला लो और नैहर चली जाओ ॥ ४ ॥

स्त्री ने कहा—क्यों भाई को बुलाऊँ ? क्यों नैहर जाऊँ ? हे राजा ! मैं सास की सेवा करके अपनी उम्र बिताऊँगी ॥ ५ ॥

[५२]

पलँग जो आये बिकाइ पलँग अति सुन्दर।
मोरी सासु को देउ बोलाइ पलँग उइ लैहैं होरिल भुइयाँ सोवैं ॥१॥
गरब की माती बहुरिया गरब बोल बोलै।
माँगि पठावो अपने नइहर होरिलवा सोवावो ॥२॥
हँकरौं न नगर के नौवा बेगि चलि आवो।
नौवा हमरे मइके चले जावो पलँग लै आवो होरिल भुइँ सोवैं॥३॥
सभा में बैठे "अमुक" रामा नौवा अरज करै।
साहेब धेरिया के भये नँदलाल पलँग उइ माँगैं ॥४॥
अल्हर चनन कटावैं पलँग बनावैं।
चारों पावन ईंगुरु ढरावैं रेशम ओरदावन ॥५॥
पलँग जो आई दुवारे पलँग अति सुन्दर।
मोरी सासू को देउ बोलाइ पलँग उइ देखैं ॥६॥
बडेरे बापन की धेरिया बडे बोल बोलै।
पलँग बिछावो गज ओबरी होरिलवा सोवावो ॥७॥

बहुत सुन्दर पलँग बिकने आया है। मेरी सास को बुला दो। वे पलँग खरीद लें। मेरा बच्चा ज़मीन पर सोता है ॥ १ ॥

सास ने कहा—अभिमान से मतवाली बहू गर्व की ही बात बोलती है। अपने नैहर से पलँग मँगा न लो, जिस पर अपने बच्चे को सुलाओ ॥ २ ॥

बहू ने गाँव के नाई को बुलवाया और कहा—हे नाई ! तुम मेरे

मैके जाओ और पलँग ले आओ। मेरा बच्चा ज़मीन पर सोता है ॥३॥

बहू का पिता सभा में बैठा था। नाई ने जाकर विनय किया—हे स्वामी! आपकी कन्या के पुत्र हुआ है। कन्या ने पलँग मँगाया है ॥४॥

पिता ने हरा चँदन कटाकर पलँग बनवाया। चारों पावों में ईंगुर लगवाया और रेशम की ओरदावन लगवाकर भेजा ॥५॥

पलँग जब बहू के द्वार पर आया, तब बहू ने कहा—पलँग बहुत सुन्दर है। ज़रा मेरी सासजी को बुला दो, पलँग देख लें ॥६॥

सास पलँग देखकर लज्जित हुई और बोली—बड़े बाप की बेटी है, इससे बड़े बोल बोलती है। बहू! ले जाओ, पलँग को अपनी कोठरी में बिछाओ और इस पर बच्चे को सुलाओ ॥७॥

धनी घर की कन्या छोटी हैसियत वाले घर में ब्याही गई थी। इससे सास-बहू में पटती नहीं थी। एक ओर अभिमान, दूसरी ओर ईर्ष्या। बात-बात में युद्ध।

[४३]

ऊँचे डगरिया कै कुइयाँ सुघर एक पानी भरै हो।
घोड़वा चढ़े राजपुतवा तौ बोलिया बहुत करैं हो॥ १॥
को है घरे मा अति दारुनि पनियाँ क पठइस हो।
जो जेठहिं के दुपहरिया मे पनियाँ भराइस हो॥ २॥
जाकर धना तुम सुन्दरि सो प्रभु कहाँ गये हो।
जो जेठहिं के दुपहरिया मे पनियाँ भराइन हो॥ ३॥
ऐसन धना जौ पाइत परम सुख पाइत हो।
धन! अँखिया मे राखित छिपाय करेजवा मे जोगइत हो॥ ४॥
अस रजपुतवा जो पाइत चाकर हम राखित हो।
अपने प्रभुजी के पायँ कै पनहिया तौ तोहँसे ढोवाइत हो॥ ५॥

रास्ते में ऊँचाई पर एक कुँआ है। एक सुन्दरी स्त्री पानी भर रही

है। घोड़े पर चढ़ा हुआ एक राजपूत वहाँ आया। बोली-ठोली में वह बहुत निपुण है ॥१॥

राजपूत ने कहा—हे सुन्दरी! तुम्हारे घर में ऐसे कठिन हृदय-वाली कौन है? जिसने, तुमको इस जेठ की दुपहरी में पानी भरने भेजा है ॥२॥

तुम जिसकी ऐसी सुन्दरी स्त्री हो, वह तुम्हारा स्वामी क्या कहीं परदेश गया हुआ है? जो तुमको जेठ की दुपहरी में पानी भरना पड़ता है? ॥३॥

आहा! ऐसी सुन्दरी स्त्री यदि मैं पाता तो मैं बहुत ही सुख पाता। उसे मैं आँखों में छिपा रखता और हृदय में चुरा रखता ॥४॥

पतिव्रता स्त्री राजपूत की इस बात से नाराज़ होकर कहती है—तुम्हारे जैसा राजपूत को मैं पाती तो उसे नौकर रखती और अपने प्रभु के पाँव की जूती उससे ढोवाती ॥५॥

[५४]

जौने देश हिंगिया न मॅहकै न जिरिया सुबासित।
तौने देश चलेहैं कवन रामा छुरिया बेसाहै कटरिया बेसाहै ॥ १ ॥
अपना का बेसहैं त छुरिया होरिल क कटरिया।
अपने नाजौ का बेसहैं कँगनवाँ तौ बडेरे जुगुति सेती ॥ २ ॥
कँगना पहिरि धन बैठीं त अपने ओसरवा माँ रे।
येहो लहुरी ननद हाँके बेनिया कँगनवाँ भौजी लेबै हो,
जौ तोरे भौजी होइहैं होरिलवा कँगनवाँ हम लेबै हो ॥ ३ ॥
चूमौं मैं ननदी क ओठवा चउर अस दँतवा।
ननदी जौ मोरे होइहै होरिलवा कँगन हम देबै,
ननदी कँगना कै जोट पछेलवा दुनौ हम देबै ॥ ४ ॥

नहाय धोय ननदी ठाढ़ि भई देवता मनावैं लागीं।
देवता देहु भौजी का पूत कँगना हम पाई ॥५॥
सुरजा मनवहीं न पाइनि होरिला जनम लीन।
लट खोले नाचै ननदिया कँगनत्रॉ भौजी लेवै रे॥६॥
न तोर भैया गढ़ावा न बाबा रौरे मोल लीन।
ननदी ई मोरे नैहरकै कँगना कँगन हम ना देवै रे॥७॥
होउ उपत्तर केर धेरिया सुपत्तर कैसे होवौरी।
भौजी जौन बोल बोलिव ओसरवॉ उहै बोल राखौ॥८॥
मारव मात गड़हरी गले दुइ थप्पड़ रे।
भौजी कँगना कै जोट पछेलवा दुनौ हम लेवै॥९॥
हाथ से काढ़ै कँगनवॉ फुफुनियॉ चुरावैं रे।
ननदी खर बारि करउ उजेर कँगनवॉ मोर हेराय गये रे॥१०॥
दुअरवा से आये ससुर राजा गरजि घुमडि बोलैं।
बहुअरि दै डारो धिया का कँगनवॉ बिटियवा परदेसिनि॥११॥
दुअरवा मे आये साहेब मोरे गरजि घुमडि बोलैं।
दै डारो बहिन का कँगनवॉ बहिन मोर दूखित होइहैं रे॥१२॥
सभवा से आये देवर राजा सॉसि दपटि बोलैं।
भौजी देसवा निकारि हम जावै बहिनिया के कारन,
भौजी बेचवौं मैं ढाल तरवरिया बहिनि क मनैवौं॥१३॥
फुफुनी से काढै कँगनवा अगनवा लै बहावै रे।
अरी पहिरौ सतभतरौ ननदिया सौति मोरि होवौ रे॥१४॥
पहिरि ओढि ननदी ठाढ़ि भई सुरजा मनावैं लागीं।
सुरजा बाढ़ै मोरे भैया क सेजरिया मैं नित उठि आवउँ॥१५॥

जिस देश मे न हींग में सुगंध है, न जीरे मे सुवास। उस देश में छुरी और कटारी खरीदने के लिये ' राम गये हैं॥१॥

अपने लिये उन्होंने छूरी खरीदी और अपने पुत्र के लिये कटारी। तथा अपनी प्राणेश्वरी के लिये खूब जांच बूझकर कगन खरीदा ॥२॥

कगन पहनकर स्त्री अपने ओसारे में बैठी। उसकी छोटी ननद बेनिया (वेणु = बास। बांस की बनी हुई पंखी) डुला रही थी। उसने कहा—भौजो ! तुम्हारे पुत्र होगा तो यह कगन मैं लूँगी ॥३॥

स्त्री ने कहा—मेरी प्यारी ननद ! मैं तुम्हारे ओठ चूमती हूँ। तुम्हारे चावल ऐसे नन्हे-नन्हे दाँत चूमती हूँ। यदि मेरे पुत्र होगा तो मैं तुमको यह कगन दे दूँगी। यही नहीं, मैं कगन का जोड़ पछेला भी दे दूँगी ॥४॥

ननद नहा-धोकर खड़ी हुई और देवता मनाने लगी—हे देवता ! मेरी भौजी को पुत्र दो, जिससे मैं कगन पाऊँ ॥५॥

अभी सूर्य को मना भी न पाई थी कि पुत्र का जन्म हुआ। ननद लट खोलकर नाचने लगी कि हे भौजी ! मैं कगन लूँगी ॥६॥

स्त्री ने कहा—यह कगन न तेरे भाई ने गढ़ाया है, न तेरे बाबा ने इसे खरीदा है। इसे तो मैं अपने नैहर से ले आई हूँ। मैं कगन नहीं दूँगी ॥७॥

ननद ने कहा—तुम कुपात्र की कन्या हो, सुपात्र कैसे हो सकती हो ? भौजी ! तुमने ओसारे में जो वादा किया था, उसे पूरा करो ॥८॥

मैं तुमको सात लात लगाऊगी और दो थप्पड़ मारकर कगन छीन लूँगी और पछेला भी ले लूँगी ॥९॥

स्त्री ने हाथ से कगन निकालकर नीवी में चुरा लिया और कहा—हे ननद ! फूस जलाकर जरा उजाला कर। कगन कहीं खो गया ॥१०॥

बाहर से ससुर राजा आये और गरजकर बोले—हे बहू ! कगन दे डालो। बेटी परदेशिन है ॥११॥

बाहर से स्वामी आये और डपटकर बोले—मेरी बहन को कंगन दे डालो। नहीं तो वह दु खी होगी ॥१२॥

सभा में से देवर राजा घुड़ककर बोले—भौजी! तुम कंगन न दोगी तो मैं बहन के लिये विदेश चला जाऊँगा। अपनी ढाल-तलवार बेचकर बहन को कंगन लाकर दूँगा और उसे मनाऊँगा ॥१३॥

स्त्री ने इतनी कहा-सुनी के बाद नीवी से कंगन निकाला और ननद के आगे आँगन में फेंककर कहा—ले मात भतारवाली! पहनकर मेरी सौत बन ॥१४॥

ननद कंगन पहनकर खड़ी हुई और सूर्य देव से कहने लगी—हे सूर्य भगवान्! मेरे भाई की सेज बढ़े, जिसमें मैं हमेशा आती रहूँ ॥१५॥

यह गीत उस समय का है, जब हिन्दुओं में छुरी-कटारी बाँधने का शौक था, और लोग दूर-दूर जाकर छुरी-कटारी खरीद लाया करते थे।

इस गीत में ननद-भौजाई के चोचले हैं। पुत्र-जन्म पर ननद को गहने आदि चीज़ें मिलती हैं। वह खुशामद करके, कभी-कभी रूठकर और लड़-झगड़कर भी चीज़ें लिया करती है। पर उसकी लड़ाई के मूल में प्रेम का अथाह समुद्र भी होता है। जैसा इस गीत में ननद ने कहा है—

मारब मात गइहरी गले हुईं थप्पड़।
कँगना कै जोट पछेलवा दुनौ हम लेयह ॥

ऐसा वाक्य निधड़क होकर वही कह सकता है, जिसमें पूर्ण प्रेम हो। ननद-भौजाई में हँसी मज़ाक करने का भी रिश्ता है। भौजाई ने कंगन देते समय मज़ाक किया भी है।

यह गीत किसी ननद का बनाया हुआ है। इसमें भौजाई को शर्मिंदा किया गया है। ननद के लालच की तो हद होती ही नहीं।

भौजाई को अपना घर भी तो देखना पड़ता है। इसी से उसे कंजूस कहा गया है।

सबसे मार्मिक और करुणापूर्ण शब्द इस गीत मे 'बिटियवा परदेसिनि' है।

[५५]

गहिरी जमुनवा के तिरवाँ चनन गछ रूखवा हो।
तिन डरिया परे हैं हिंडोलवा झुलहिँ रानी रुकुमिनि हो ॥ १ ॥
झुलतहिँ झुलत अवेर भा है औरौ देर भा है हो।
मोरा टुटला मोतिन केर हार जमुन जल भीतर हो ॥ २ ॥
धावउ बहिनि चकैया तूँ हाली वेगि आवउ हो।
चकई ! चुनि लेव मोतिन क हार जमुन जल भीतर हो ॥ ३ ॥
अगिया लगाओं तोरा हरवा बजर परै मोतिन हो।
बहिनी ! सँझवै से चकवा हेरान ढूँढ़त नहिँ पावउँ हो ॥ ४ ॥

गहरी नदी जमना के किनारे चन्दन का एक घना वृक्ष है। उसकी डाल पर हिंडोला पड़ा है। उस पर रानी रुक्मिणी झूल रही हैं ॥ १ ॥

झूलते-झूलते बहुत देर हो गई। यकायक उनका मोती का हार टूट गया और मोती यमुना के जल मे जा गिरे ॥ २ ॥

रुक्मिणी ने चकई से कहा—हे चकई बहन ! जल्दी दौड़कर आओ, और मेरे हार के मोती यमुना के भीतर से चुनकर निकाल दो ॥ ३ ॥

चकई स्वय चकवा के वियोग मे व्याकुल हो रही थी। उसने कहा—तुम्हारे हार में आग लगे, मोती पर वज्र गिरे। साँझ से ही मेरा चकवा कहीं खो गया है। मैं ढूँढ रही हूँ और पाती नहीं हूँ ॥ ४ ॥

प्रियमम की खोज से बढ़कर ससार में और ज़रूरी काम क्या है ?

[५६]

अँगने में फिरहिं जच्चा रानी हथवाँ गोवर लिहे।
सासु कौन महल मोहिं देहौ तवन घर लीपब हो॥ १॥
मैया तो बोलै न पावैं की ननद उठि बोलै।
अम्मा यहि हरजोतवा की बिटिया दिहौ घर भुसउल॥ २॥
दूर से आए सिर साहेब हड़पि तड़पि बोलैं।
बहिनी बड़े रे साहेब की बिटियवा देहु घर ओबरि॥ ३॥
होत भोर पह फाटत होरिला जनम भए।
बाजै लागीं अनँद बधैया उठन लागे सोहर॥ ४॥
बाहेर बाजै बधैया भीतर उठैं सोहर।
लट खोले झगड़ै ननदिया कँगन भौजी लेवै॥ ५॥
केतनौ ननदी तु नाचौ जियरा नहीं हुलसै।
ननदी समुझौ आपन बोल दिहेउ घर भुसउल॥ ६॥

हाथ में गोबर लिये जच्चा रानी घूम रही हैं। हे सास! मुझे कौन सा घर दोगी? बता दो, तो मैं उसे लीप लूँ॥ १॥

सास बोलने भी न पाई थी कि ननद ने उठकर कहा—माँ! इस किसान की बेटी को भूसे का घर दे दो॥ २॥

इतने में बाहर से स्वामी आ गये। बहन की बात सुनकर उन्होंने घुड़ककर कहा—बहन! यह बड़े घर की कन्या है, इसे ख़ास घर दो॥ ३॥

पौ फटते ही पुत्र का जन्म हुआ। आनन्द की बधाई बजने लगी और सोहर गाया जाने लगा॥ ४॥

बाहर बधाई बज रही है, भीतर सोहर हो रहा है। ननद लट खोलकर झगड़ रही है कि हे भौजी! मैं कंगन लूँगी॥ ५॥

भौजाई ने कहा—हे ननद! तुम कितना ही नाचो, पर मेरे मन

में उत्साह नहीं हो रहा है। तुम अपनी बोली को याद करो, जो तुमने कहा था कि भूसे का घर दे दो॥ ६॥

ननद-भौजाई में मेल बहुत कम देखने में आता है। कहीं-कहीं तो सास-बहू में वैमनस्य करा देने में ननद ही कारण होती है।

[५७]

काहे रे अमवा हरिअर ना जानों कौने गुना।
ललना ना जानों मलिया के सींचे त ना जानों खेत गुना॥ १॥
ना यह मलिया के सींचे ना यह खेत गुना।
ललना रिमिकि झिमिकि दैवा बरिसै त उनही बूँद गुना॥ २॥
होरिल तौ बड सुन्दर ना जानों कौने गुना।
है हो ना जानों अम्मा के सँवारे त ना जानों कोखी गुना॥ ३॥
ना यह अम्मा के सँवारे तौ ना यह कोखी गुना।
ललना मोर पिया तप व्रत कीन त उनहीं के धरम गुना॥ ४॥
बारह वरिस बन सेवलें त गुरू घर से अवले हो।
ललना तब घर बबुआ जनमलें सोहर अब सूनब हो॥ ५॥
मचियहिं बैठी हैं सासु त बहुआ से पूँछइँ हो।
बहुआ कवन कवन फल खायू होरिल बड सुन्दर हो॥ ६॥
फल तो खायूँ नौरँगिया त आम छोहारौ हो।
सासू नरियर दाख बदाम नाहीं रे जानौ वहि गुन हो॥ ७॥
सभवहिं बैठे हैं ससरु त बहुआ से पूँछइँ हो।
बहुआ कवन कवन तप कीहिउ होरिल बड सुन्दर हो॥ ८॥
सासु क बचन न टारेउँ न ननद तुकारेउँ हो।
ससुरु कबहुँ न लाईलूकी लायउँ नाहीं रे जानौं वहि गन हो॥ ९॥
सुपेली खेलत कै ननदिया त भौजी से पूँछइ हो।
भौजी कवन कवन व्रत कीहिउ होरिल बड़ सुन्दर हो॥ १०॥

स्वामी क मानेउँ हुकुमवा देवर क दुलारेउँ हो।
ननदा ! सब कर लिहेउँ असीस त ना जानों वहि रे गुना ॥११॥

यह आम का वृक्ष हरा क्यों है ? मालूम नहीं, माली के सींचने से यह हरा है या खेत के प्रभाव से ? ॥१॥

न यह माली के सींचने से हरा है, न खेत के प्रभाव से। रिमझिम करके जो बादल बरसते हैं, उन्हीं की बूँदों के प्रभाव से यह हरा है ॥२॥

यह बालक बहुत सुन्दर है। इतना सुन्दर यह क्यों है ? नहीं जानता इसकी माँ ने इसको ऐसा सुन्दर सँवार रक्खा है ? या उसकी कोख का ऐसा प्रभाव ही है ? ॥३॥

नहीं, नहीं, न तो यह माँ के संवारने से इतना सुन्दर है और न कोख का ही प्रभाव है। मेरे पति ने बहुत तप-व्रत किया था। उन्हीं के धर्म के प्रभाव से यह इतना सुन्दर है ॥४॥

हे सखी ! मेरे पति बारह वर्ष तक वन में गुरु के घर में रहकर विद्या पढ़ते रहे। फिर घर आये। तब इस बालक का जन्म हुआ। अब सोहर सुनूँगी ॥५॥

मचिये पर बैठकर सास बहू से पूछती हैं—बहू ! तुम ने क्या-क्या फल खाया जो तुम्हारा पुत्र इतना सुन्दर है ? ॥६॥

, बहू ने कहा—मैंने नारंगी, आम, छोहारा, नारियल, दाख और बादाम खाया था। शायद इन्हीं के प्रभाव से बालक सुन्दर हुआ हो ॥७॥

सभा में बैठे हुये ससुर बहू से पूछते हैं—हे बहू ! तुमने कौन सा तप किया है जो तुम्हारा बच्चा बड़ा सुन्दर है ? ॥८॥

बहू ने कहा—हे ससुरजी ! मैंने कभी सासजी की बात नहीं टाली। न ननद का तिरस्कार किया। न कभी इधर की बात उधर लगाई। शायद इसी के गुण से बच्चा इतना सुन्दर हुआ हो ॥९॥

सुपेली (छोटा) सूप खेलती हुई ननद ने पूछा—हे भौजी ! तुमने कौनसा व्रत किया था जिससे तुम्हारा बालक इतना सुन्दर है ? ॥१०॥

बहू ने कहा—हे ननद ! मैंने सदा स्वामी की आज्ञा का पालन किया। देवर को प्यार किया और सब का आशीर्वाद लिया। शायद इसी से मेरा बालक सुन्दर हुआ है ॥११॥

यह गीत क्या है, एक आदर्श-बहू का सुन्दर चित्र है। बालक सुन्दर क्यों हुआ है ? इसके लिये उसके पिता का तपोनिष्ठ और धर्मिष्ठ होना आवश्यक है। साथ ही उसकी माँ भी ऐसी हो, जो गृहस्थी में अपना कर्तव्य-पालन करती हुई, घर के सब छोटे-बड़ों को सुख देकर, उनसे आशीर्वाद प्राप्त करे। उत्तम चरित्र वाले माँ-बाप का पुत्र सुन्दर क्यो न होगा ?

[५८]

जेठ बैसखवा की गरमी पसिनवाँ से व्याकुल।
मोरे साहब बाहर बँगला छवउतेउ दुनौं जन सोइत ॥ १ ॥
ना हम बँगला छवैबै न हम घर रहबै हो।
मोरी रानी ! हम तो जावइ परदेस नैहर चली जावउ ॥ २ ॥
ना मोरे माई न बाबा न मोर सग भैया हो।
स्वामी ! भौजी बोलइ विप बोल करेजवा मँ साले ॥ ३ ॥
सास क चरन पखरबै ननद क दुलरबइ।
साहब ! देवरा कै धोतिया पछरवइ यहीं हम रहबै ॥ ४ ॥
एतना वचन जब सुने घोडे से उतर पड़े।
मोरी रानी हरियर बँसवा कटइबै त बँगला छवइबै ॥ ५ ॥
छरहर बँसवा कटायेन बँगला छवायेन हो।
मोरी रानी सीतल बहै बयरिया सोउ सुख नींदर ॥ ६ ॥

बैसाख-जेठ की गरमी मे मैं पसीने से व्याकुल हो जाती हूँ। हे मेरे

स्वामी ! बाहर एक बँगला छवा दो तो उसमें हम दोनों सोयें ॥१॥

स्वामी ने कहा—न हम बँगला छवायेंगे, न हम घर रहेंगे। हे मेरी रानी ! मैं तो परदेश जाऊँगा। तुम नैहर चली जाओ ॥२॥

स्त्री ने कहा—न मेरी माँ है, न मेरे बाप हैं, न मेरा कोई सगा भाई है। चचेरे भाई की स्त्री ऐसी कड़ी बात बोलती है जो विष की तरह मेरे कलेजे में सालती है ॥३॥

मैं यहीं रहूँगी। सास के पैर धोऊँगी। ननद को प्यार करूँगी। देवर की धोती धोऊँगी। मैं यहीं रहूँगी ॥४॥

स्त्री की यह सहृदयता से भरी हुई वाणी सुनते ही पति घोड़े से उतर पड़ा। उसने प्रेम से गद्गद् होकर कहा—मेरी रानी ! मैं हरे-हरे बाँस कटाकर बँगला छवा दूँगा ॥५॥

पति ने लम्बे और सीधे बाँस कटवा कर बँगला छवा दिया और स्त्री से कहा—हे रानी ! ठंढी-ठंढी हवा चल रही है। जाओ, बँगले में सुख की नींद सोओ ॥६॥

[५६]

चैतहि के तिथि नवमी त नौबति बाजइ हो।
बाजै दसरथ राज दुवार कौशिल्या रानी मंदिर हो ॥ १ ॥
मिलहु न सखिया सहेलरि मिलि जुलि आवहु हो।
जहाँ राजा के जनमे हैं राम करिय नेवछावरि हो ॥ २ ॥
केउ नावै बाजूबन्द केउ कजरावट हो।
केउ नावै दखिनवा के चीर करहि नेवछावरि हो ॥ ३ ॥
भितरा से निकसीं कौशिल्या अगनवहिं ठाढी भई हो।
रानी धड़ धड़ हिरदै लगावैं करैं नेवछावरि हो ॥ ४ ॥
राम के मथवा चननवा बहुत निक लागै हो।
राम नयन रतनारे कजर भल सोहैं।

दीन्हों रचि रचि फूआ सुभद्रा लउ पतरी अगुरियन ॥ ५ ॥
राम के मथवा लुटुरिया बहुत निक लागै हो।
जैसे फूलन के बिच बिच कलियाँ बहुत निक लागै ॥ ६ ॥
राम के गोड़वाँ घुँघुरुवा बहुत निक लागैं हो।
नान्हे गोड़वन चलत बकैंया देखत राजा दसरथ ॥ ७ ॥

चैत की नवमी है। राजा दशरथ के राज-द्वार पर और रानी कौशल्या के महल में नौबत बज रही है ॥१॥

हे सखियो! मिल-जुल कर आओ। चलो, राजा दशरथ के राम जन्मे हैं, चलकर उनकी न्योछावर करें ॥२॥

कोई बाजूबन्द न्योछावर कर रही है। कोई कजरौटा और कोई दक्षिण का चीर न्योछावर कर रही है ॥३॥

कौशल्या भीतर से निकलीं और आँगन में खड़ी हुईं। रानी न्योछावर करनेवालियों को बड़े प्रेम से हृदय से लगा रही हैं ॥४॥

राम के माथे पर चन्दन बहुत अच्छा लग रहा है। राम के रतनारे नेत्रों में काजल बहुत सुन्दर लगता है। फूफी सुभद्रा ने अपनी पतली उँगलियों से खूब बना-बनाकर काजल दिया है ॥५॥

राम के माथे पर घुँघुराले बाल बहुत सुन्दर लगते हैं। जैसे फूलों के बीच में कलियाँ बहुत अच्छी लगती हैं ॥६॥

राम के पैर में घुँघरू बहुत अच्छे लगते हैं। राम नन्हे पैरों से बकैयाँ चल रहे हैं। राजा दशरथ देख रहे हैं ॥७॥

कैसा स्वाभाविक वर्णन है। इस गीत में आँखों में काजल लगाने की कला का ज़िक्र है। राम की फूफी यद्यपि सुभद्रा नहीं थीं, पर गीतों में राम और कृष्ण का सारा परिवार एक कर लिया गया है। सुभद्रा के लिये गीत में कहा गया है कि उन्होंने अपनी पतली उंगली से राम की आँखों में बहुत सुन्दर काजल लगाया था। आजकल की स्त्रियों में इस

कला का ह्रास होता जा रहा है। अब तो स्त्रियाँ भूत-प्रेत और नज़र-टोने ही के डर से अपने बच्चों की आँखों मे काजल लगाती हैं,बल्कि लीपती हैं। पर वे स्वय अपनी आँखों में भी अच्छी तरह रच-रचकर काजल लगावें तो उनका सौन्दर्य और अधिक मनोमोहक हो सकता है।

[६०]

कौने वन उपज सुपरिया कौने वन नरियर हो।
चेरिया कौने वन फुलली कुसुमियाँ मैं चुनरी रंगैवै हो ॥ १ ॥
जेठ वन उपजी सुपरिया ससुर वन नरियर हो।
सैय्याँ वन फुलली कुसुमियाँ तौ चुनरी रँगावउ हो ॥ २ ॥
एक तौ अगवा कै पातरि दूमरे गरभ सेती हो।
पहिरे कुसुम रंग सारी तौ बेदना ब्रेआकुल हो ॥ ३ ॥
साासु मोरी बेनियाँ डोलावैं ननद मुख चूमैं हो।
भौजी छिन एक बेदना निवारौ होरिल तुमने होइहैं,
सोहर अबहिं सुनबिउ हो ॥ ४ ॥
तौ का बिख बोलिउ ननदिया जहर बिस लागै हो।
ननदी सरग नियर भुइयाँ दूरि होरिल कहाँ होइहैं हो ॥ ५ ॥
आपन मैया जे होतीं बेदन हरि लेतीं हो।
हरिजी कै मैया निरबेदनी त होरिल होरिल करैं
सोहर सोहर करैं हो ॥ ६ ॥

किस वन में सुपारी पैदा होती है? किस वन में नारियल? और हे दासी! किस वन में कुसुम फूलता है? मैं चूनरी रँगाऊँगी ॥१॥

दासी कहती है—जेठ के वन मे सुपारी पैदा होती है, और ससुर के वन में नारियल। तुम्हारे स्वामी के वन में कुसुम फूला है। तुम चुनरी रँगा लो ॥२॥

स्त्री एक तो शरीर से पतली, दूसरे गर्भ। वह कुसुम्मी रंग की साढ़ी पहनकर प्रसव-पीड़ा से विकल है ॥३॥

मेरी सास बेनिया डुला रही हैं। ननद मुँह चूम रही है। ननद कहती है—भौजी! जरा धीरज धरो। तुम्हारे पुत्र होगा, अभी तुम सोहर सुनोगी ॥४॥

स्त्री कहती है—हे ननद! क्या विष घोलती हो? तुम्हारी बात मुझे जहर सी लग रही है। हे ननद! मुझे स्वर्ग समीप और धरती दूर दिखाई पड़ रही है। बच्चा कहाँ होगा? ॥५॥

हा! आज जो मेरी माँ यहाँ होतीं तो पीड़ा हर लेतीं। मेरे स्वामी की माँ वेदना नहीं जानतीं। उनको तो बस पुत्र-पुत्र और सोहर-सोहर की रट लगी है ॥६॥

स्वाभाविक वर्णन।

[६१]

पिया मोर चललें नोकरिया त बडे रे गरब से।
हथवा चम्पे केर छडिया त माथे पर चन्दन ॥ १ ॥
पियवा न होउ मोर पियवा तुहीं सिर साहब।
मोर पियवा जब हम गरुए गरभ से तू चललेव नोकरिया ॥ २ ॥
धनिया न होउ मोरी धनिया तुहीं ठकुराइन।
धनिया काहे तोर बदन मलीन कहे मन धूमिल ॥ ३ ॥
पियवा न होउ मोरे पियवा तुहीं सिर साहेब।
मोरे राजा छिन एक बेनिया डोलउतेउ नींद भरि सोइत ॥ ४ ॥
ओरी कै पानी बडेरिया कैसे धन जैहैं।
मोरी रानी हम कैसे बेनिया डोलैवै तु नींद भरि सोइहौ ॥ ५ ॥
सुरजा उवत पह फाटत होरिलवा जनम लिहिन
बबुवा जनम लिहिन।

मोरे साहब बाजै लागी अनँद बधैया उठन लागे सोहर।
सतरंग बाजै सहनैया दुआरे मोरें नौबति ॥ ६ ॥
हँकरौ नगरा के सोनरा हाली बेगि आओ।
मोरे सोनरा तू सोने रूपे गढ़ौ बेनियवा त धनिया मनावों ॥ ७ ॥
हँकरौ नगरा के बरई त हाली बेगि आओ।
अरे मोरे बरई तू सौ सठि बिरवा लगावो तौ धनिया मनावों ॥ ८ ॥
एक हाथे लिहिनि बेनियवा दुसरे हाथे बिरवा।
मोरी रानी अब हम बेनियाँ डोलैबै नींद भरि सोवो ॥ ६ ॥
बेनिया तो हाँको अपनी मैया त सग पितियनिया।
मोरे राजा हमरे तो भये नन्दलाल त हम तौ जुड़ानेन ॥१०॥

बड़े घमंड से मेरे स्वामी नौकरी के लिये चले। उनके हाथ में चम्पा की छड़ी थी और माथे पर चन्दन सुशोभित था ॥१॥

स्त्री कहती है—हे मेरे प्रियतम ! तुम्हीं मेरे प्राणाधार हो। तुम्हीं मेरे मालिक हो। जब मुझे गर्भ का भार है, तब तुम नौकरी को जा रहे हो ? ॥२॥

पति कहता है—हे मेरी प्राणेश्वरी ! तुम मेरी रानी हो। हे धन ! तुम्हारा मुख मलिन क्यों है ? और तुम्हारा मन धूमिल क्यों है ? ॥३॥

स्त्री कहती है—हे मेरे नाथ ! तुम एक घड़ी पंखा हाँकते, तो मैं नींद भर सो लेती ॥४॥

पति कहता है—हे धन ! कहीं खोलती का पानी बड़ेरी जाता है ? मेरी रानी ! मैं पंखा हाँकूँ और तुम नींद भर सोओ ? यह उल्टी बात कैसे हो सकती है ? ॥५॥

सबेरा होते ही बच्चा पैदा हुआ। आनन्द की बधाई बजने लगी

और सोहर गाया जाने लगा। द्वार पर शहनाई और नौबत बजने लगी ॥६॥

पति कहता है—गाँव के सुनार को बुलाओ, जल्दी बुलाओ। हे सुनार! तुम सोने और चाँदी को पंखी बना दो। मैं अपनी रानी को मनाने जाऊँगा ॥७॥

गाँव के तम्बोली को जल्दी बुलाओ। हे तम्बोली! जल्दी आओ। एक सौ बीड़े लगाकर दो। मैं अपनी लाडिली को मनाने जाऊँगा ॥८॥

पति ने एक हाथ में पंखी ली और दूसरे में पान के बीड़े। स्त्री के पास जाकर उसने कहा—हे रानी! मैं पखी हाँकूँगा, तुम नींद भर सो जाओ ॥६॥

स्त्री कहती है—हे पतिदेव! तुम जाकर अपनी माँ और सगी चची को पखी हाँको (उनकी सेवा करो)। हे राजा! मुझे पखे की आवश्यकता नहीं रही। मेरे लाल पैदा हुये हैं, मेरा हृदय तो अब यों ही शीतल हो गया है ॥१०॥

पुत्रवती होने पर पति की दृष्टि में पत्नी का आदर अधिक हो जाता है। एक बार प्रार्थना करने पर भी पति ने पंखी नहीं हाँकी, बल्कि परिहास किया। पर जब पत्नी पुत्रवती हुई, तब वह उसे मनाने चला। बाँस की पखी से नहीं, बल्कि सोने-चाँदी की पखी से। पति-पत्नी का यह प्रेम-कलह हिन्दुओं में घर-घर पाया जाता है। और सच पूछा जाय, तो गृहस्थी के सुख का एक अंश इस प्रकार के प्रेम-कलह में भी है।

[६२]

दिन तौ सून सुरुज बिनु राति चंदा बिनु रे।
बहिनी नैहर सून अपनी मैया बिनु ससुरे पुरुष बिनु रे॥ १॥
गरुई गठरिया केन बँधिहैं मैया बिनु रे।
एहो लपकि खबरिया केन लेइ हैं तो अपने भैया बिनु रे॥ २॥

जैसे सूर्य के बिना दिन सूना है और चन्द्रमा के बिना रात सूनी है, वैसे ही माँ के बिना नैहर और पुरुष बिना ससुराल सूनी है ॥१॥

माँ के बिना भारी गठरी बाँधकर कौन देगा? भाई न हो तो झपटकर बहन के दुख-सुख की ख़बर कौन लायेगा? ॥२॥

[६३]

कुँअवा खोदाये कवन फल हे मोरे साहब!
झोंकवन भरैं पनिहारिन तबै फल होइहैं ॥ १ ॥
बगिया लगाये कवन फल हे मोरे साहब!
राहे बाट अमवा जे खैहै तबै फल होइहैं ॥ २ ॥
पोखरा खोदाये कवन फल हे मोरे साहब!
गौआ पियैं जूड पानी तबै फल होइहैं ॥ ३ ॥
तिरिया के जनमे कवन फल हे मोरे साहब!
पुतवा जनम जब लैहैं तबै फल होइहैं ॥ ४ ॥
पुतवा के जनमे कवन फल हे मोरे साहेब!
दुनिया अनन्द जब होइ तबै फल होइहैं ॥ ५ ॥

हे मेरे स्वामी! कुँवा खोदाने का फल तभी है, जब झुंड की झुंड पनिहारिनें पानी भरें ॥१॥

बाग लगाने का फल तभी है जब राह चलने वाले आम खायँ ॥२॥

तालाब खुदाने का फल तभी है, जब गायें ठंडा पानी पीयें ॥३॥

स्त्री होने का फल तभी है, जब उसके पुत्र हो ॥४॥

पुत्र होने का फल तभी है, जब संसार आनंदित हो जाय ॥५॥

इस गीत का अंतिम पद बड़ा मार्मिक है। 'पुत्र होने का फल तभी है जब संसार आनन्दित हो जाय।' संसार आनंदित तभी होगा जब किसी उत्तम गृहस्थ के घर पुत्र उत्पन्न होगा, जिससे संसार को अपने कल्याण की आशा होगी। अथवा पुत्र उत्पन्न होकर अपने पुरुषार्थ से

और सोहर गाया जाने लगा। द्वार पर शहनाई और नौबत बजने लगी ॥६॥

पति कहता है—गाँव के सुनार को बुलाओ, जल्दी बुलाओ। हे सुनार! तुम सोने और चाँदी को पंखी बना दो। मैं अपनी रानी को मनाने जाऊँगा ॥७॥

गाँव के तम्बोली को जल्दी बुलाओ। हे तम्बोली! जल्दी आओ। एक सौ बीडे लगाकर दो। मैं अपनी लाडिली को मनाने जाऊँगा ॥८॥

पति ने एक हाथ में पखी ली और दूसरे में पान के बीडे। स्त्री के पास जाकर उसने कहा—हे रानी! मैं पखी हाँकूँगा, तुम नींद भर सो जाओ ॥९॥

स्त्री कहती है—हे पतिदेव! तुम जाकर अपनी माँ और सगी चची को पखी हाँको (उनकी सेवा करो)। हे राजा! मुझे पखे की आवश्यकता नहीं रही। मेरे लाल पैदा हुये हैं, मेरा हृदय तो अब यों ही शीतल हो गया है ॥१०॥

पुत्रवती होने पर पति की दृष्टि मे पत्नी का आदर अधिक हो जाता है। एक बार प्रार्थना करने पर भी पति ने पखी नहीं हाँकी, बल्कि परिहास किया। पर जब पत्नी पुत्रवती हुई, तब वह उसे मनाने चला। बाँस की पंखी से नहीं, बल्कि सोने-चाँदी की पखी से। पति-पत्नी का यह प्रेम-कलह हिन्दुओं में घर-घर पाया जाता है। और सच पूछा जाय, तो गृहस्थी के सुख का एक अंश इस प्रकार के प्रेम-कलह में भी है।

[६२]

दिन तौ सून सुरुज बिनु राति चदा बिनु रे।
बहिनी नैहर सून अपनी मैया बिनु ससुरे पुरुष बिनु रे ॥ १ ॥
गरुई गठरिया केन बँधिहैं मैया बिनु रे।
एहो लपकि खबरिया केन लेइहैं तो अपने भैया बिनु रे ॥ २ ॥

जैसे सूर्य के बिना दिन सूना है और चन्द्रमा के बिना रात सूनी है, वैसे ही माँ के बिना नैहर और पुरुष बिना ससुराल सूनी है ॥१॥

माँ के बिना भारी गठरी बाँधकर कौन देगा ? भाई न हो तो झपटकर बहन के दुख-सुख की खबर कौन लायेगा ? ॥२॥

[६३]

कुँअवा खोदाये कवन फल हे मोरे साहब !
झोंकवन भरैं पनिहारिन तबै फल होइहैं ॥ १ ॥
बगिया लगाये कवन फल हे मोरे साहब !
राहे बाट अमवा जे खैहैं तबै फल होइहैं ॥ २ ॥
पोखरा खोदाये कवन फल हे मोरे साहब !
गौआ पियैं जूड़ पानी तबै फल होइहैं ॥ ३ ॥
तिरिया के जनमे कवन फल हे मोरे साहब !
पुतवा जनम जब लैहैं तबै फल होइहैं ॥ ४ ॥
पुतवा के जनमे कवन फल हे मोरे साहेब !
दुनिया अनन्द जब होइ तबै फल होइहैं ॥ ५ ॥

हे मेरे स्वामी ! कुँवा खोदाने का फल तभी है, जब झुंड की झुंड पनिहारिनें पानी भरें ॥१॥

बाग लगाने का फल तभी है जब राह चलने वाले आम खायँ ॥२॥

तालाब खुदाने का फल तभी है, जब गायें ठंडा पानी पीयें ॥३॥

स्त्री होने का फल तभी है, जब उसके पुत्र हो ॥४॥

पुत्र होने का फल तभी है, जब संसार आनन्दित हो जाय ॥५॥

इस गीत का अंतिम पद बड़ा मार्मिक है। 'पुत्र होने का फल तभी है जब संसार आनन्दित हो जाय।' संसार आनन्दित तभी होगा जब किसी उत्तम गृहस्थ के घर पुत्र उत्पन्न होगा, जिससे संसार को अपने कल्याण की आशा होगी। अथवा पुत्र उत्पन्न होकर अपने पुरुषार्थ से

संसार का दुःख दूर करे, उसे आनन्दित करे, तभी उसका जन्म सफल है। कैसी उच्च भावना है! कुँवाँ खुदाना, तालाव खुदाना और बाग लगाना, गाँवों में ये तीन काम पुण्य के गिने जाते हैं। गीत से यह प्रमाणित होता है कि पूर्वकाल में लोग बाग अपने लिये नहीं, बल्कि राही-बटोही के आराम के लिये लगाते थे। आजकल बाग का फल बेंच लेना एक साधारण बात नहीं, बल्कि बुद्धिमानी का काम समझा जा रहा है। पर किसी समय फल और दूध का बेंचना इस देश में पाप समझा जाता था। फल और दूध ही नहीं, पहले शिक्षा, औषधि और न्याय भी मुफ्त मिलता था। समय का फेर है, अब सब के दाम देने पड़ते हैं।

[६४]

मोरे पिछवरवाँ जम्हिरिया त लहर लहर करै।
उनकै महर महर आवै बास जम्हिरिया सुहावन ॥ १ ॥
कटवूँ मैं बिरिछ जम्हिरिया त पलंगा सलैवूँ।
सेइ पलँग हम सोइबै सलोनी धन कोरवाँ।
जेकर कमल फुलै दुनौ नैन बहुत निक लागै ॥ २ ॥
सेजिया से रुठलि तिरियवा जमुन तट ठाडी भई।
केवटा हालि वेगि नइया लेइ आवहु त परवा उतारहु ॥ ३ ॥
जौ मैं नइया लैके आवउँ नेवरिया लैके आवउँ।
तिरिया का उतरौनी मोहिं देइहौ त परवा उतारौं ॥ ४ ॥
देवूँ मैं हाथ की मुदरिया औ गर कै तिलरिया।
केवटा औ गज मोतिन क हार त परवा उतारौ ॥ ५ ॥
अगिया लगावउँ तोरी मुँदरी बजर परे तिलरी।
तिरिया आजु रैन वसि लेतिउ त परवा उतारौं ॥ ६ ॥

चाँद सुरुज अस पियवा मैं सोवत छोड़ेउँ।
केवटा के तोर मति हरि लीन्ह पाप मन ब्यापेउ॥७॥
लहँगा कै बाँधिन मुरायठ ओढ़नी क पिछौरा।
तिरिया उतरि गई हैं पार केवट हाथ मीजै॥८॥
जाते की डइयाँ अकेलिन लौटत बिरन सँग।
केवटा खलवा कढ़ाय भूसा भरतेउँ जौन मुख भाखेउ॥९॥

मेरे पिछवाड़े जम्हीरी नीबू का वृक्ष लहालहा रहा है। उसमें से बड़ी मनोहर सुगंध आया करती है। जम्हीरी बड़ा सुन्दर लगता है॥१॥

पति कहता है—मैं उस नीबू को कटवाकर पलँग बनाऊँगा। उस पलँग पर मैं अपनी सुन्दरी स्त्री के साथ सोऊँगा, जिसके दोनों नेत्र प्रफुल्लित कमल की तरह सुन्दर हैं और बहुत प्यारे लगते हैं॥२॥

किसी कारण से स्त्री और पुरुष में विवाद हो गया। सम्भवतः नीबू के काटने में राय नहीं मिली। इसलिये रूठकर स्त्री जमना के किनारे गई और उसने मल्लाह को कहा—जल्दी आओ, और मुझे पार उतारो॥३॥

मल्लाह ने कहा—मैं नाव लेकर आऊँ और पार उतारूँ, तो मुझे उतराई क्या दोगी?॥४॥

स्त्री ने कहा—मैं हाथ की अँगूठी दे दूँगी। गले की तिलड़ी दे दूँगी। और यदि इतने पर भी तू सन्तुष्ट न होगा तो गजमुक्ताओं का हार दे दूँगी॥५॥

मल्लाह ने कहा—तुम्हारी अँगूठी में आग लगे। तिलड़ी पर वज्र गिरे। हे स्त्री! यदि तुम आज की रात मेरे यहाँ बस जाओ, तो मैं पार उतार दूँ॥६॥

स्त्री ने कहा—चाँद और सूर्य की तरह सुन्दर पति को सो मैं सोता

छोड़ आई हूँ। केवट! तेरी अक्ल किसने हर ली? तेरे मन में पाप समा गया है क्या? ॥७॥

स्त्री ने घाँघरे को तो सिर से लपेट लिया और ओढ़नी को पहन लिया। वह नदी में कूद पड़ी और तैर कर पार हो गई। केवट हाथ मींजकर रह गया ॥८॥

जाते वक्त तो अकेली थी। पर लौटते वक्त उसका भाई साथ था। वापसी में उसने मल्लाह को डाटा—तू ने उस दिन जो बात मुंह से निकाली थी, उसके बदले में, मेरे जी में आता है कि, तेरी खाल खिचवाकर उसमें भूसा भरा दूं ॥९॥

इस गीत मे उस समय के हिन्दू-समाज की दशा का वर्णन है जब स्त्रियाँ ऐसी हिम्मतवाली होती थीं कि अकेली सफ़र कर सकती थीं और नाव न मिलने पर जमुना ऐसी नदी तैर कर पार हो जाती थीं, तथा मल्लाह ऐसे मनचलों की मरम्मत भी कर सकती थीं। यह बेचारा एक गीत उस ज़माने की यादगार बनाये हुये है।

[६५]

अलबेली जच्चारानी खूब बनी।
अपने पिया कै सोहागिन खूब बनी।
जैसे रेशम कै लारछा जच्चारानी केश बनी।
जैसे चन्दन कै होरसा जच्चारानी माथ बनी।
अलबेली जच्चा० ॥ १ ॥

जैसे आम केर फाँकिया जच्चारानी नैन बनी।
अपने पिया कै दुलारी जच्चारानी खूब बनी।
मतवाली जच्चारानी खूब बनी।
जैसे सुग्गा कै ठोरवा जच्चारानी नाक बनी।
अलबेली जच्चा० ॥ २ ॥

जैसे अनारे कै दाना जच्चारानी दाँत बनी।
अपने पिया कै सोहागिन जच्चारानी खूब बनी।
जैसे अनार कै कलियाँ जच्चारानी होंठ बनी।
मतवाली जच्चारानी खूब बनी।
अलबेली जच्चा० ॥ ३ ॥

जैसे केरा केर खँभिया जच्चारानी जाँघ बनी।
अपने पिया कै सुहागिन जच्चारानी खूब बनी।
जैसे केरा केर छीमिया जच्चारानी अँगुली बनी।
मतवाली जच्चारानी खूब बनी।
अलबेली जच्चा० ॥ ४ ॥

अलबेली जच्चारानी खूब सुन्दर लगती है। अपने पति की प्यारी सुहागिन जच्चारानी बहुत सुन्दर लगती है। जच्चारानी के केश ऐसे सुन्दर है, जैसे रेशम के लच्छे। जच्चारानी का माथा ऐसा सुन्दर है, जैसे चन्दन घिसने का होरसा (गोल शकल का पत्थर, जिस पर चन्दन घिसा जाता है) ॥ १ ॥

जच्चारानी के नेत्र ऐसे सुन्दर है, जैसे आम की फाँकें। अपने पति की प्यारी, रूपगर्विता, जच्चारानी बड़ी ही सुन्दर लगती है। जच्चारानी की नाक ऐसी सुन्दर है, जैसे तोते की चोंच ॥ २ ॥

जच्चारानी के दाँत ऐसे सुन्दर हैं, जैसे अनार के दाने। अपने पति की सुहागिन जच्चारानी बड़ी सुन्दर है। जच्चारानी के होंठ ऐसे लाल हैं जैसे अनार की कली। मतवाली जच्चारानी खूब अच्छी लगती है ॥ ३ ॥

जच्चारानी की जाँघ ऐसी है, जैसे केले का खंभा। सुहागिन जच्चारानी बड़ी सुन्दर है। जच्चारानी की उङ्गलियाँ ऐसी सुन्दर हैं, जैसी केले की फलियाँ। मतवाली जच्चारानी बड़ी सुन्दर है ॥ ४ ॥

दुखिया ने भाई से कहा—हे भाई ! विदा करो तो मैं भी अपने घर जाऊँ ॥५॥

भाई ने कहा—हे बहन ! आंचल भरकर कोदौ (एक तरह का निकृष्ट चावल) लो और वही दूब का डंठल लो ॥६॥

दुखिया बहन अभी गाँव की सीमा लाँघने भी न पाई थी कि दूब से मोती झड़ने लगे ॥७॥

उसकी भौजाई कोठे पर चढ़कर पुकारने लगी—मेरी ननद रूठ कर जा रही है। उसे मना लाओ ॥८॥

दुखिया बहन ग़रीब घर में ब्याही थी। भाई के बालक के लिये उसके पास देने को कुछ नहीं था। प्रेम-विवश वह थोड़ी-सी घास लेकर आई थी। सुखिया बहन गहने लेकर आई थी। भाई ने प्रेम का कुछ मूल्य नहीं आँका। केवल गहने और घास का मुक़ाबला किया। उसने दोनों को उनकी लाई हुई चीज़ों के अनुसार बदला देकर विदा किया। पर सुखिया स्वार्थ-वश आई थी, उसके स्वार्थ को दुखिया के विशुद्ध प्रेम से नीचा दिखाने के लिये ही यह रूपक बाँधा गया है। घास से मोती झड़ते देखकर बहू का स्वार्थ फिर प्रबल होता है। दुखिया तिरस्कृत होकर गई थी। अब इसकी ग्लानि बहू को हुई। इस प्रकार स्वार्थ का नग्न नृत्य घर-घर में हो रहा है। पर शुद्ध प्रेम और चीज़ है। वह घास में मोती होकर झड़ता है।

[६८]

डेहरी के ओट धन ठुनकई उनुन ठुनुन करई रे।
राजा हमरे तिलरिआ कै साध तिलरिआ हम लेबइ ॥ १ ॥
एक तो कारी कोइलिआ औ दुसरे छछुन्दरि।
रानी तोहरेउ तिलरिआ क साध तिलरिआ काउ करबिउ ॥ २॥
एतनी बचन रानी सुनलिन मन में बिरोग भआ,

जियरा दुखित भवा।
रानी कोइँछा में लिहीं तिल चउरा न देव मनावईं,
सुरजा मनावईं ॥ ३ ॥
आठ महीना नौ लगतइ, होरिल जनम लिहीं,
बबुआ जनम लिहीं रे।
बहिनी बाजइ लागी अनंद बधइया उठन लागे सोहर ॥ ४ ॥
अँगनइ बजत बधइया भितर मोरे सोहर हो।
बहिनी सतरँग बाजइ सहनइया ससुर द्वारे नौबति रे ॥ ५ ॥
हँकड़हु नगर के सोनरा हाली बेगी आवइ,
आरे जल्दी आवइ रे।
सोनरा गढ़ि लाओ सोने क तिलरिआ मैं
रानी का मनावऊँ ॥ ६ ॥
हँकड़हु नगरके बरई हालही बेगी आवइ जल्दीसे आवइ।
बरई सोहर क बिरवा लगावइ मैं लछमी मनावऊँ ॥ ७ ॥
दहिने हाथे लिहिन तिलरिआ बायें हाथे बिरवाउ रे।
राजा झमकि के चढ़ि गै अटरिआ तो रनियाँ मनावइँ ॥ ८ ॥
सूतल रानिआ मनावइँ जाँघ बैठावइँ।
रानी छोड़ि देव मन कै बिरोग पहिरो रानी तिलरी ॥ ९ ॥
राजा हम तो कारी कोइलिआ तिलरी नाहीं सोहइ।
राजा हमरे पलँग मति बैठो साँवर होइ जाबेउ रे ॥१०॥
राजा होरिला दिहिन भगवान त तुम्हरे धरम से हो।
राजा पाये रतन अनमोल तिलरिआ काउ करबइ हो ॥११॥

देहली की ओट में स्त्री ठुनक रही है। हे राजा! मेरे लिये एक तिलड़ी (तीन लड़ का हार) बनवा दो। मुझे तिलड़ी पहनने की बड़ी इच्छा है ॥१॥

पति ने कहा—वाह ! एक तो तुम कोयल ऐसी काली-कलूटी दूसरे छछूँदर ऐसी गंदी। तुम्हें भी तिलड़ी का शौक चर्राया है? तुम तिलड़ी क्या करोगी? ॥२॥

यह बात सुनकर स्त्री के मन मे बड़ा दुःख हुआ। वह आँचल में तिल और चावल लेकर सूर्य देवता को मनाने लगी ॥३॥

आठवें महीने के बाद नवाँ लगते ही पुत्र का जन्म हुआ। आनन्द की बधाई बजने लगी और सोहर होने लगा ॥४॥

आँगन में बधाई बज रही है। भीतर सोहर हो रहा है। ससुर के द्वार पर शहनाई और नौबत बज रही है ॥५॥

पति ने कहा—नगर के सोनार को बुलाओ। अरे सुनार ! जल्दी आओ। सोने की तिलड़ी बनाकर जल्दी लाओ। मैं अपनी रानी को मनाऊँगा ॥६॥

नगर के बरई (तम्बोली) को बुलाओ। तम्बोली ! तुम जल्दी एक-एक मुहर का एक बीड़ा लगाकर लाओ। मैं अपनी लक्ष्मी को मनाऊँगा ॥७॥

दाहिने हाथ में तिलड़ी और बायें में बीड़ा लेकर पति अटारी पर झपटकर चढ़ गया और स्त्री को मनाने लगा ॥८॥

सोई हुई स्त्री को उसने जगाया, गोद में बैठाया और कहा—मेरी रानी ! मन का विक्षोभ छोड़ दो और यह लो तिलड़ी पहनो ॥९॥

स्त्री ने कहा—हे राजा ! मैं तो काली-कलूटी कोयल हूँ। मुझे तिलड़ी अच्छी नहीं लग सकती। हे राजा ! तुम मेरी पलँग पर न बैठो, नहीं तो साँवले हो जाओगे ॥१०॥

हे राजा ! भगवान् ने तुम्हारे धर्म के प्रभाव से मुझे पुत्र दिया है। ऐसा अनमोल रत्न पाकर अब मैं तिलड़ी लेकर क्या करूँगी ॥११॥

[६६]

ननद भौजाई दूनौं पानी गई अरे पानी गई।
भौजी जौन रवन तुहँ हरि लेइ ग उरेहि दखावहु ॥ १ ॥
जौ मैं रवना उरेहौं उरेहि देखावउँ।
सुनि पैहैं बिरन तुम्हार त देसवा निकरिहैं ॥ २ ॥
लाख दोहइया राजा दसरथ राम मथवा छुवौं।
भौजी लाख दोहइया लछिमन भइया जो भइया से बतावउँ ॥ ३ ॥
मागौं न गाँग गँगुलिया गंगा जल पानी।
ननदी सगुहे कै ओवरी लिपावउ रवना उरेहौं ॥ ४ ॥
मागिन गाँग गंगुलिया गंगा जल पानी।
सीता समुहे के ओवरी लिपाइन रवना उरेहैं ॥ ५ ॥
हँथवहु सिरजिन गोडवहु नयना बनाइन।
आइ गये हैं सिरीराम अँचर छोरी मूँदनि ॥ ६ ॥
जेवन बैठें सिरीराम बहिन लोहि लाइन।
भइया जौन रवन तोर बैरी त भौजी उरेहे ॥ ७ ॥
अरे रे लछिमन भइया त्रिपतिया कै साथी।
सीता के देसवा निकारहु रवना उरेहै ॥ ८ ॥
जे भौजी भूखे के भोजन नांगे को बस्तर।
से भौजी गरुहे गरभ से मैं कैसे निकारौं ॥ ६ ॥
अरे रे लछिमन भइया बिपतिया के नायक।
सीता क देसवा निकारो इ त रवना उरेहैं ॥१०॥
अरे रे भौजी सीतल रानी बड़ी ठकुराइन।
भौजी आवा है तोहका नेवतवा बिहान बन चलबइ ॥११॥
ना मोरे नैहर ना मोरे सासुर।
देवरा ! ना रे जनक अस बाप मैं केहि के जइहौं ॥१२॥

कोंछवा के लिहिन सरसइया छिटत सीता निकुसीं।
सरसौ यहीं के अइहीं लछिमन देवरा कँदरिया तोरी खइहीं ॥१३॥
एक बन डॉकिन दुसर बन डॉकिन तिसरे बिन्द्रावन।
देवरो एक बुँद पनियाँ पिअउतेउ पिअसिया से व्याकुल ॥१४॥
बैठहु न भौजी चँदन तरे चँदना बिरिछ तरे।
भौजी पनिया क खोज करि आई त तुमकाँ पियाई ॥१५॥
बहै लागी जुड़ुली बयरिया कदम जूड़ि छहियाँ।
सीता भुइयाँ परीं कुम्हिलाय पिअसिया से व्याकुल ॥१६॥
तोरिन पतवा कदम कर दोनवा बनाइन।
टागिन लवँगिया कै डरिया लछन चलें घरके ॥१७॥
सोये साये सीता जागीं झझकि सीता उठी हैं।
कहवाँ गये लछिमन देवरा त हमैं न बतायउ।
हिरदइया भर देखतेउँ नजर भर रोउतेउँ ॥१८॥
को मोरे आगे पीछे बैठइ को लट छोरै।
को मोरी जगइ रयनियां त नरवा छिनावइ ॥१९॥
बन से निकरीं बन तपसिन सितै समझावैं।
सीता हम तोरे आगे पीछे बैठब हम लट छोरब।
हम तोरी जगबै रयनिया त नरवा छिनउबै ॥२०॥
होत बिहान लोही लागत होरिल जनम भये।
सीता लकडी क करहु अँजोर सतति मुख देखहु ॥२१॥
तुम पुत भयहु बिपति में बहुतै सँसति में।
पुत कुसै ओढन कुस डासन बन-फल भोजन ॥२२॥
जो पुत होते अजोध्या मे वही पुर पाटन।
राजा दसरथ पटना लुटौतें कौसिल्या रानी अभरन ॥२३॥

अरे रे हँकरौ न घन के नउअवा बेगिहिं चलि आवहु।
नउवा हमरा रोचन लै जाउ अजोध्यइ पहुँचावउ ॥२४॥
पहिले दिहो राजा दसरथ दुसरे कौसिल्या रानी।
तीसरे रोचन लछिमन देवरा पै पिए न जनावउ ॥२५॥
पहिले दिहिन राजा दसरथ दुसरे कौसिल्या रानी।
तिसरे लछिमन देवरा पै पिए न जनायेसि ॥२६॥
राजा दसरथ दिहिन आपन घोड़वा कौसिल्या रानी अभरन।
लछिमन देवरा दिहिन पाँचौ जोडवा बिहसि नउवा।
घर चल्यौ ॥२७॥

चारिउ खूँट क सगरवा त राम दतुइन करैं।
भइया भहर भहर करै माथ रोचन कहँ पायउ।
भइया केकरे भये नँदलाल त जिया जुड़वायन ॥२८॥
भौजी तो हमरे मितल रानी बसहिं बिन्द्रावन।
उनके भये हैं नदलाल रोचन सिर धारेन ॥२९॥
हाथ क दतुइन हथ रहि मुख कै मुख रहा।
दुरै लागी मोतियन आँसु पितम्बर भीजै ॥३०॥
हँकरौ न बन के नउआ बेगि चलि आवहु।
नउआ सीता कै हलिया बतावह मीतै लै अउबै ॥३१॥
कुस रे ओढन कुस डासन बनफल भोजन।
साहब लकड़ी क किहिन अँजोर संतति मुख देखिन ॥३२॥
अरे रे लछिमन भइया बिपतिया के नायक।
भइया एक बेर जातेउ मधुबन क भौजइअउ लै अउतेउ ॥३३॥
अजोध्या के चलि गये मधुबन उतरें।
भौजी राम क फिरा है हँकार त तुम के बुलावैं ॥३४॥

जाव लछ्न घर अपने त हम नहिं जावै।
जौ रे जियैं नंदलाल तो उनही क वजिहैं ॥३५॥

ननद और भौजाई दोनों पानी के लिये गईं। रास्ते में ननद ने कहा—हे भौजी ! जो रावण तुम्हें हर ले गया था, उसका चित्र बनाकर मुझे दिखाओ ॥ १ ॥

भौजाई ने कहा—मैं रावण का चित्र बनाकर तुम्हें दिखाऊँ। पर तुम्हारे भाई सुन पायें, तो मुझे वे देश से निकाल देंगे ॥ २ ॥

ननद ने कहा—मैं राजा दशरथ की लाख शपथ कर के, राम का माथा छूकर और लषमण भाई की लाख क़सम खाकर कहती हूँ, भाई से न कहूँगी ॥ ३ ॥

भौजाई ने कहा—अच्छा,गंगाजल लाओ। और हे ननद ! सामने की कोठरी लीप-पोतकर ठीक कर दो, तो मैं रावण का चित्र बनादूँ ॥ ४ ॥

गंगा जल आया और सामने की कोठरी लिपाई गई। भौजाई ने रावण का चित्र बनाया ॥ ५ ॥

पहले हाथ बनाया, फिर पैर। फिर आँखें बनाईं। इतने में श्रीराम आ गये। सीता ने झटपट आँचल खोलकर उसे ढक लिया ॥ ६ ॥

श्रीराम भोजन करने बैठे। बहन ने चुगली खाई—हे भाई ! रावण, जो तुम्हारा बैरी है, उसका चित्र भौजी ने बनाया है ॥ ७ ॥

राम ने कहा—हे विपत्ति के साथी भाई लषमण ! सीता रावण का चित्र बनाती है, इसे देश से निकाल दो ॥ ८ ॥

लषमण ने कहा—जो सीता भूखों को भोजन और नंगों को वस्त्र बाँटती है, और जिसे गर्भ भी है, मैं उसे देश से कैसे निकालूँ ? ॥ ९ ॥

राम ने फिर कहा—हे विपत्ति के साथी भाई लषमण ! सीता रावण का चित्र बनाती है, इसे घर से निकाल दो ॥ १० ॥

लषमण ने सीता से कहा—हे भौजी ! हे सीतारानी ! हे बड़ी ठकु-

राहन ! मुझको और तुमको न्यौता आया है। कल बन को चलेंगे ॥ ११ ॥

सीता ने कहा—हे देवर ! मेरे न नैहर है, न ससुराल। न जनक ऐसा बाप ही है। मैं किसके यहां जाऊँगी ?।' १२ ॥

सीता आँचल में सरसों लेकर रास्ते में बखेरती हुई निकलीं। इस विचार से कि लषमण इधर से आयेंगे तो सरसों के मुलायम डंठल तोड़कर खायेंगे ॥ १३ ॥

एक बन को पार किया। दूसरे बन को पार किया। तीसरा वृन्दावन था। सीता ने कहा—हे देवर ! प्यास लगी है। बहुत व्याकुल हूं। एक बूँद पानी कहीं मिले तो ले आओ ॥ १४ ॥

लषमण ने कहा—हे भौजी ! इस चंदन के वृक्ष के नीचे बैठ जाओ। मैं खोजकर पानी ले आऊँ, तब तुमको पिलाऊँ ॥ १५ ॥

ठंडी हवा बहने लगी। कदम्ब की छाया शीतल थी ही। सीता प्यास से व्याकुल होकर, कुम्हलाकर, धरती पर लेट गई ॥ १६ ॥

लषमण पानी लेकर लौटे। कदम्ब के पत्ते का दोना बनाकर, उसमें पानी भरकर लषमण ने उसे लवंग की डाल से लटका दिया और स्वयं घर का रास्ता लिया ॥ १७ ॥

सीता सो-सोकर भिभक कर उठीं उन्होंने कहा—हे लषमण देवर ! तुम कहाँ गये ? मुझे नहीं बतलाया। तुमको मैं जी भरकर देख तो लेती और तुमको देखकर आँख भरकर रो तो लेती ॥ १८ ॥

हाय ! यहाँ बन में मेरे आगे-पीछे कौन बैठेगा ? कौन मेरी लट खोलेगा ? कौन मेरी रात जागेगा ? और कौन बच्चे की नाल काटेगा ? ॥ १९ ॥

सीता का विलाप सुनकर बन की तपस्विनियाँ निकलीं। वे सीता को समझाने लगीं—हे सीता ! हम तुम्हारे आगे-पीछे रहेंगी। हम

तुम्हारी लट खोलेंगी। हम तुम्हारी रात जागेंगी और हम बच्चे की नाल काटेंगी ॥ २० ॥

सबेरा हुआ। पौ फटते ही बालक का जन्म हुआ। तपस्विनियों ने कहा—हे सीता! लकड़ी जलाकर उसके उजाले में अपने बच्चे का मुँह तो देखो ॥ २१ ॥

सीता बच्चे से कहने लगीं—हे बेटा! तुम विपत्ति में पैदा हुये हो। कुश ही तुम्हारा ओढ़ना, कुश ही बिछौना और बन-फल ही तुम्हारा आहार है ॥ २२ ॥

हे पुत्र! यदि तुम अयोध्या में पैदा हुये होते, तो आज राजा दशरथ, सारा शहर और रानी कौशल्या अपने कुल गहने लुटा देतीं ॥ २३ ॥

अरे! बन के नाई को बुलाओ न? जल्दी आवे। हे नाई! मेरा रोचन अयोध्या पहुँचाओ ॥ २४ ॥

पहले राजा दशरथ को देना। दूसरे कौशल्या रानी को देना। तीसरे देवर लषमण को देना। पर मेरे पति को न बताना ॥ २५ ॥

नाई ने पहले राजा दशरथ को दिया। फिर कौशल्या को और फिर लषमण को। पर राम को नहीं जनाया ॥ २६ ॥

राजा दशरथ ने नाई को अपना घोड़ा दिया। कौशल्या ने गहना दिया। लषमण ने पाँचो जोड़े (पगड़ी, अँगरखा, दुपट्टा, धोती और जूता) दिये। नाई खुशी से हँसता हुआ घर लौटा ॥ २७ ॥

चौकोर बड़े तालाब के किनारे राम दातुन कर रहे थे। इतने में लक्ष्मण आ गये। उनके माथे पर रोचन का तिलक देखकर राम ने पूछा—हे भाई! तुम्हारा माथा खूब दमक रहा है। यह रोचन कहाँ से आया? किसके पुत्र हुआ है? पुत्र ने किसका हृदय शीतल किया है॥ २८ ॥

लषमण ने कहा—मेरी भौजी सीता रानी, जो वृन्दावन में रहती हैं,

उनके पुत्र हुआ है। उसी का रोचन मैंने माथे पर लगाया है ॥ २९ ॥

यह सुनते ही राम के हाथ की दातुन हाथ ही में और मुँह की दातुन मुँह ही में रह गई। राम की आँखों से मोती जैसे आँसू ढुलने लगे और उनका पीताम्बर भीगने लगा ॥ ३० ॥

राम ने कहा—वन का नाई कहाँ गया? बुलाओ। हे नाई! सीता का समाचार मुझे सुनाओ। मैं सीता को ले आऊँगा ॥ ३१ ॥

नाई ने कहा—हे मालिक! कुश का ओढ़ना, कुश का बिछौना और वन-फल का आहार है। सीता ने लकड़ी का उजाला करके तब अपने पुत्र का मुँह देखा है ॥ ३२ ॥

राम ने कहा—हे मेरे विपत्ति के नायक भाई लक्ष्मण! एक बार तुम मधुवन जाओ और अपनी भौजाई को ले आओ ॥ ३३ ॥

लक्ष्मण अयोध्या से चलकर मधुवन में उतरे। लक्ष्मण ने सीता से कहा—हे भौजी! तुमको राम ने बुलाया है ॥ ३४ ॥

सीता ने कहा—हे लक्ष्मण! तुम लौट जाओ। मैं नहीं जाऊँगी। यदि मेरे लाल जीते रहेंगे, तो ये उन्हीं के कहलायेंगे ॥ ३५ ॥

ऐसा कौन सहृदय है, जो इस गीत को पढ़कर रो न दे। इसमें ननद का, देवर का, पति का और तपस्विनियों का यथार्थ और अद्भुत चित्र खींचा गया है।

इस गीत में कई बातें ध्यान देने की हैं। पहले तो यह कि हिन्दू स्त्रियों में चित्रकला का प्रचार इतना अधिक था कि गीतों में अब तक उसका वर्णन मिलता है।

दूसरे ननद का स्वभाव। ननद ने बार-बार शपथ खाकर भी भौजाई की बात अपने भाई से कह दी। सचमुच बहुत सी ननदें भौजाई की प्रतिष्ठा का ध्यान नहीं रखतीं।

तीसरे देवर का प्रतिवाद। देवर ने भौजाई का पक्ष लिया और बड़े

भाई से एक बार कहा—भौजाई को निकालना नहीं चाहिये। पर जब बड़े भाई ने फिर अपनी आज्ञा दुहराई, तब छोटे भाई ने शिष्टाचार के सामने सिर झुकाया और बड़े भाई की आज्ञा का पालन किया।

चौथे तपस्विनियों की सहानुभूति। अपनी मान-मर्यादा का अभिमान छोड़कर दुःखी के दुःख-निवारण में तत्पर हो जाना आर्य-संस्कृति की एक ख़ास बात है।

पाँचवें माता की दीन-दशा। हाय! वह कैसा हृदय-विदारक दृश्य था, जब माता ने लकड़ी का उजाला करके अपने पुत्र का मुँह देखा। इस अवसर पर माता का विलाप पत्थर को भी पिघला देने वाला है।

छठें पति का अनुताप। छोटे भाई के मुँह से पुत्रोत्पत्ति का समाचार पाकर पत्नी की याद में पति की आँखों से जो आँसू टपके हैं, उनमें अनन्त व्यथा और अपार पश्चात्ताप भरा हुआ है।

सातवें स्त्री का आत्म-गौरव। स्त्री ने नाई से कहा—'पियहिँ न बतायउ' इस एक वाक्य में आत्म-सम्मान दूर से एक पर्वत-शिखर की भाँति दिखाई पड़ रहा है। स्त्री ने पति की बुलाहट का जो उत्तर देवर को दिया है, उसमें भी वेदना का एक विशाल समुद्र लहरें मार रहा है।

इस गीत में आदि से अन्त तक मनुष्यों के भिन्न-भिन्न स्वभावों के यथार्थ चित्र हैं।

[७०]

जब हम रहे जनक घर राजा रे जनक घर।
सखिया सोने के सुपेलिया पछोरीं में मोतिया हलोरीं ॥ १ ॥
जब हम परलीं राम घर राजा दशरथ घर।
जरि वरि भइउँ है कोइलिया त जर के भसम भइउँ ॥ २ ॥

सभवा बैठे हैं रामचन्द्र पुछाइन राजा दसरथ।
पुता कौन सितल दुख दिहेउ सखिन सँग रोवैं ॥ ३ ॥
हँसि कै धनुख उठाइन विहँसि कै पैठिन।
सीता अब सुख सोवऊ महलिया गुपुत होइ जावैं ॥ ४ ॥
अरे रे लछिमन देवरा त्रिपतिया के नायक।
देवरा भइया के लावऊ मनाय नाहीं त विष खावैं ॥ ५ ॥
अरे रे भौजी सितल रानी बड़ी ठकुराइन।
देहुना तिरिया कमनिया मैं भइया खोजैं जैहों ॥ ६ ॥
ढूँढौं मैं नग्र अजोध्या औ़र पुर पाटन।
देवरा ढूँढ़ेउ नाहीं गुपुत तलौवा जहाँ राम गुपुत भये ॥ ७ ॥
केहि के मैं सेजिया बिछावों फूल छितरावौं।
देवरा केहि के मैं लागौं टहलिया त दुख बिसरावौं ॥ ८ ॥
हमरेन सेजिया बिछावहु फूल छितरावहु।
भौजी हमरेन लागौ टहलिया त दुख बिसरावहु ॥ ९ ॥
जौने मुख अमवा खायौं अमिलिया कैसे चीखऊँ।
जौने मुख लछिमन कहि गोहरायउँ पुरुख कैसे भाखउँ ॥ १० ॥
अरे रे पापिनी भौजी पाप जनि बोलौ।
भौजी जैसे कौसिल्या रानी माता वैसेन हम जानौं ॥ ११ ॥
लाख दोहइया राजा दसरथ राम मथवा छुवौं।
बुढ़की मोरे अमिरथा होइ जो धन कहि गोहरावउँ ॥ १२ ॥

सीता ने कहा—जब मैं राजा जनक के घर में थी, तब हे सखियो ! मैं सोने की सुपेली में पछोरती और मोती हलोरती थी ॥ १ ॥

अब मैं राम के घर में—राजा दशरथ के घर में—पड़ी हूँ। दुःख से जलकर मैं कोयल हो गई, राख हो गई हूँ ॥ २ ॥

रामचन्द्र सभा में बैठे थे। राजा दशरथ ने पुछवाया—हे पुत्र ! तुमने

सीता को क्या दुःख दिया ? जो वह सखियों के सामने रो रही थी ॥३॥

राम ने हँसकर धनुष उठाया। मुसकराते हुए वे घर में आये। सीता से उन्होंने कहा—सीता ! अब तुम महल मे सुख से सोओ। मै गुप्त हो जाऊँगा ॥४॥

सीता ने कहा—हे मेरे देवर लछमण ! हे विपत्ति के साथी ! अपने भाई को मनाकर लाओ, नहीं तो मैं विष खा लूँगी ॥५॥

लछमण ने कहा—हे भौजी ! हे बड़ी ठकुराइन ! मेरा तीर-कमान ला दो, मैं भाई की खोज में जाऊँगा ॥६॥

लछमण ने लौट कर कहा—मैंने सारी अयोध्या नगरी ढूँढ़ डाली। सीता ने कहा—हा ! तुमने गुप्त सरोवर तो नहीं ढूँढ़ा, जहाँ राम गुप्त हुये हैं ॥७॥

हाय ! मैं किसकी सेज बिछाऊँ ? किसके लिये फूल बखेरूँ ? किसकी सेवा करके अपना दुःख भूलूँ ? ॥८॥

लछमण ने कहा—हे सीता ! मेरी सेज बिछाओ। मेरे लिये फूल बखेरो। हे भौजी, मेरी सेवा करके दुःख भूल जाओ ॥९॥

सीता ने कहा—जिस मुँह से मैंने आम नहीं खाया, उस मुँह से इमली कैसे चखूँ ? जिस मुँह से मैंने तुमको लछमण कहकर पुकारा, उस मुख से तुमको पति कैसे कहूँगी ? ॥१०॥

लछमण ने कहा—हे पापिन भौजी ! पाप की बात मुँह से न निकालो। मैं तुमको माता कौशिल्या की तरह समझता हूँ ॥११॥

मुझे राजा दशरथ की लाख शपथ है। मैं राम का माथा छूता हूँ। गंगाजी में मेरा डुबकी लगाना व्यर्थ जाय, जो मैं तुमको अपनी स्त्री कहूँ ॥१२॥

सीता और लक्ष्मण का आदर्श ईश्वर करे, हिन्दू-जाति में चिरजीवी हो। गीत में लछमण ने सीता के प्रति जो मनोभाव प्रकट किया है,

यह स्त्रियों की कल्पना-मात्र नहीं है। उसमें ऐतिहासिक तथ्य भी है। सुमित्रा ने लक्ष्मण को राम के वन जाते समय जो उपदेश दिया था, वाल्मीकि के शब्दों में वह यह है—

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथा सुखम्॥

अर्थात्—हे पुत्र! राम को दशरथ समझना। सीता को सुमित्रा समझना। वन को अयोध्या समझना। बस, तुम सुख से जाओ।

लक्ष्मण ने सदा सीता को माता के समान समझा था। लक्ष्मण ने एक स्थान पर अपनी यह मानसिक पवित्रता प्रकट भी की थी। सुग्रीव ने जब पहली मुलाकात के अवसर पर सीता के फेंके हुये गहने लाकर राम के सम्मुख रखे थे, तब राम ने लक्ष्मण से पूछा था—लक्ष्मण! देखो, ये गहने सीता ही के हैं न? तब लक्ष्मण ने कहा था—

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरेत्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्॥

अर्थात्, मैं इन बाजुओं और कुण्डलों को नहीं पहचानता। हाँ, नूपुर (बिछियों) को पहचानता हूँ। क्योंकि प्रतिदिन मैं चरण छूता था (तब इन्हें देखता था)।

अहा, लक्ष्मण केवल नूपुर को पहचानते थे। चौदह वर्ष साथ रह कर भी लक्ष्मण ने सीता के ऊपरी अंगों पर दृष्टि नहीं डाली थी। कैसा उच्च कोटि का समाज था! और कैसे देवर भौजाई थे!

इस गीत में, ऊपर की पंक्तियों में एक बात यह भी ध्यान देने की है कि सीता ने सखियों से एक ज़रा सी शिकायत की थी। इतने ही अपराध में राम घर छोड़कर चले गये। इस प्रकार का स्वभाव देहात के पतियों में खूब देखने में आता है। किसी-किसी घर में तो बहुत ही छोटी छोटी बातों को लेकर स्त्री पुरुष महीनों मुँह फुलाये रहते हैं।

सीता के शिष्टाचार से गुरु बहुत प्रसन्न हुये और बोले—हे सीता! तुम्हारी इतनी अक्ल है! तुम तो बुद्धि की आगरि हो। हे सीता! किसने तुम्हारी मति हरली? जो तुमने राम को भुला दिया ॥६॥

सीता ने कहा—हे गुरु! तुम सब जानते ही हो, फिर अनजान की तरह क्यों पूछते हो? राम ने मुझे ऐसा डाहा कि अब उनसे चित्त कैसे मिलेगा? ॥७॥

राम ने मुझे आग में डाला। उसमें जलाकर भूनकर निकाला। जब मैं गर्भिणी थी, तब मुझे घर से निकाल दिया। भला, उनसे मेरा मन कैसे मिलेगा? ॥८॥

हे गुरु! मैं आपका वचन न टालूँगी और अयोध्या की ओर दो क़दम चलूँगी। पर अयोध्या नहीं जाऊँगी। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह मुझे राम से मिलावें भी नहीं ॥९॥

वशिष्ठ लौट गये। राम ने कहा—नगर से कहार बुलाओ। कहारो! चंदन की पालकी सजाकर लाओ। मैं सीता को मनाने चलूँगा॥ १० ॥

एक बन में गये, दूसरे बन में गये। तीसरा वृन्दावन मिला। वहाँ गुल्ली-डंडा खेलते हुए दो बालकों को देखकर राम मुग्ध हो गये॥ ११ ॥

राम ने पूछा—हे बालको! तुम किसके पुत्र हो? किसके पौत्र हो? और किसके भतीजे हो? किस माता की कोख से जन्म लेकर तुमने उसे शीतल किया है? ॥ १२ ॥

लड़कों ने कहा—हम अपने पिता का नाम नहीं जानते। हम लछमण के भतीजे, राजा जनक के पौत्र और सीता देवी के प्राण-प्यारे हैं॥ १३ ॥

राम यह वचन पूरा-पूरा सुन भी न पाये कि उनकी आंखों मे आँसुओं की धारा बह चली और दुपट्टे से उसे पोंछने लगे॥ १४ ॥

सामने ही ऋषि की कुटी थी। राम उसके समीप पहुँच गये। वह

एक छोटा सा कदम्ब का वृक्ष था, जो बड़ा सुन्दर लगता था ॥ १५ ॥

उसी कदम्ब के नीचे सीता रानी बैठकर अपने केश सुखा रहीं थीं। पीछे पलट कर वे देखती हैं तो रामचन्द्र खड़े हैं ॥ १६ ॥

राम ने कहा—रानी ! मन की ग्लानि छोड़ दो। चलकर अयोध्या को बसाओ। हे सीता ! तुम्हारे बिना मुझे संसार अंधकारमय लगता है और मेरा जीना व्यर्थ हो रहा है ॥ १७ ॥

सीता की आँखों में हृदय की वेदना उमड़ आई थी। वे राम की ओर एकटक देखते देखते पृथ्वी में समा गईं, मुँह से कुछ नहीं बोलीं ॥ १८ ॥

निर्दोष और मनस्विनी सीता के मन की दशा स्त्रियाँ जितनी अच्छी तरह समझ सकती हैं, पुरुष उतना नहीं समझ सकते। सीता को क्या कहना चाहिये, क्या नहीं कहना चाहिये, यह आदर्शवाद स्त्रियों में नहीं चलता। वहाँ तो मन की स्पष्ट दशा का चित्र खींचा जाता है। 'सीता-राम के मुख को एकटक देखती हुई पृथ्वी में समा गईं, मुख से कुछ न बोलीं'—इस एकटक देखने और कुछ न बोलने में ही सीता ने सब कुछ कह डाला।

[७८]

राधे ललिता चन्द्रावलि आवउ जसुमति आवउ हो।
ललना मिलि जुलि चलीं वहि पार जमुन जल भरि लाई हो ॥ १ ॥
कमर में बाधले कछौटा हिरदय चन्दन हार हे।
ललना पइरि के पार उतरलीं तिरिय एक रोवइ हो ॥ २ ॥
किए तोरा दारुनि सासु ननद दुख दीअल हे।
बहिनी की तोरा कन्त बसल दुर देस कवन दुख
रोवलु हो ॥ ३ ॥

नहिं मोरा दारुनि सास न ननद दुख दीअल हे।
बहिनी नहिं मोरा कन्त बिदेस कोखिए दुख रोवलुँ हो ॥ ४॥
सात बलक देव देहलेन कस लइ लेहलेन हो।
बहिनी अठम रहल गरभ से इहौ हरि लेइहै हो ॥ ५ ॥
चुप रहु चुप रहु देवकी आँचर मुँह पोंछहु हे।
बहिनी आपन बलक हम मारब तोहरा जिआउब हो ॥ ६ ॥

हे राधे, ललिता, चन्द्रावलि और यशोदा! आओ, हिलमिलकर उस पार चलें और यमुना का जल भर लायें ॥ १ ॥

सबने कमर में कछौटा बाँध लिया। हृदय पर लटकते हुए चन्दन के हार को कस लिया। वे तैर कर पार उतर गईं। वहाँ देखा तो एक स्त्री रो रही थी ॥ २ ॥

उससे पूछा—क्या तुम्हारी सास कठोर हृदय की है? या ननद ने तुम्हें दुःख दिया है? या तुम्हारा कन्त (पति) दूर देश में है? हे बहन! तुम क्यों रो रही हो? ॥३॥

स्त्री ने कहा—न मेरी सास कठोर है, न ननद् ने ही दुःख दिया है, और न मेरा कन्त ही दूर देश में है। हे बहन! मैं कोख के दुःख से रो रही हूँ ॥ ४ ॥

भगवान ने मुझे सात बालक दिये थे। कंस ने सातों ले लिये। अब आठवाँ बालक गर्भ में है। हाय! वह इसे भी छीन लेगा ॥ ५ ॥

यशोदा ने उसे पहचान कर कहा—हे देवकी बहन! चुप रहो, मत रोओ। आँचल से मुँह पोंछ डालो। मैं अपना बालक देकर तुम्हारा यह बालक बचा लूँगी ॥ ६ ॥

दुःखी के प्रति सच्ची सहानुभूति इसे कहते हैं। अपना बालक देकर दूसरी बहन के बालक की रक्षा करना यह आर्य-जाति की नारियों में ही सँभव है। यशोदा ने अपना वचन अक्षरशः पूरा किया था।

सोहर

[७३]

एक सौ अमवा लगवलीं सवासौ जामुन हो।
अहो रामा तबहुँ न बगिया सोहावन यक रे कोइलि बिनु॥१॥
नइहर में पाच भइया त सात भतीजा बाड़े हो।
अहो रामा तबहुँ न नइहर सोहावन यक रे मयरिया बिनु॥२॥
एक कोरा लिहलों मैं भइया दूसरे कोरा भतीजा हो।
अहो रामा तबहुँ न गोदिया सोहावन अपना बालक बिनु॥३॥
पलँग पर सेजिया हमवलो त फूल छितरइलों हो।
अहो रामा तबहुँ न सेजिया सोहावन एक बलम बिनु॥४॥

मैंने एक सौ आम के वृक्ष लगवाये और सवा सौ जामुन के। तब भी एक कोयल के बिना बाग सुन्दर नहीं लगता॥१॥

नैहर में पाँच तो भाई हैं और सात भतीजे। पर फिर भी एक माँ के बिना नैहर अच्छा नहीं लगता॥२॥

गोद में एक ओर मैंने भाई को ले रक्खा है, दूसरी तरफ भतीजे को। पर अपने पुत्र बिना गोद सुन्दर नहीं लगती॥३॥

मैंने पलग पर सेज बिछाया, उस पर फूल छितराया। पर स्वामी के बिना सेज सुहावनी नहीं लगती॥४॥

[७४]

राहड़ पर एक कुँइया सँवरि एक पानी भरै।
घोड़वा चढल इक रजपूत हसने खियाल करै॥
केकर अस तुहुँ धिदिया केकरी पतोहिया।
कवने नयक क बहुअवा त झुकयन पानी भरौ।
घावड पर हम धिदिया ससुर क पतोहिया
अपने नयक क बहुअवा त झुकयन पानी भरौ

सासु नॅनद घरवॉ दारुनि पनियॉ भरावै।
ऐसनि धनि जउ पवतेउॅ त हार अस रखतेउँ ॥४॥
जैसे मोरे हरि क पनहिॲॉ वइसइ तोर मलपट।
तोहैं अस मरद जो पउतेउँ त पनही ढोवउतेउॅ ॥५॥
गगरी त लिहेन सिरेह पर लेजुरी हथेह पर।
सासु घोडवा चढ़ल इक रजपुत हमसे खिआल करै ॥६॥
वहु कैसेन उनकर घोडवा त कइसनि लगाम लागि।
वहू कवने वरन बनिजरवा कवनि पाग बॉधइ ॥७॥
लालय वोनकर घोड़वा त करिया लगाम लागि।
सॉवरे वरन वनिजरवा मुरेरी पाग बॉधइ ॥८॥
मचियै वैठी हैं सासु विहॅसि वतियॉ वोलईं।
वहुवरि के तोरा हरा है गेयान बिदेसिया न चीन्हिउ ॥९॥

रास्ते पर एक कुँवा था। जिस पर एक सुन्दरी पानी भर रही थी घोड़े पर चढ़ा हुआ एक राजपूत उधर से निकला। वह उससे हँसी करने लगा ॥१॥

ऐसी सुन्दरी तुम किसकी कन्या हो? किसकी पतोहू हो? किस नायक की प्यारी स्त्री हो? जो पानी भर रही हो ॥१॥

स्त्री ने कहा—मैं अपने पिता की पुत्री और ससुर की पतोहू हूँ। मैं अपने स्वामी की प्यारी स्त्री हूँ और पानी भर रही हूँ ॥२॥

राजपूत ने कहा—जान पड़ता है, घर में सास और ननद बड़ी निठुर हैं जो तुम से पानी भराती हैं। मै ऐसी स्त्री पाता तो हार की तरह गले में लटकाए रखता ॥४॥

स्त्री ने कहा—जैसे मेरे प्राणनाथ की जूती है, वैसे तो तुम्हारे गाल हैं। तुम्हारे ऐसे मर्द को पाती तो मैं जूतियाँ ढोवाती ॥५॥

घड़ा सिर पर और रस्सी हाथ में लेकर स्त्री ने सास के पास आकर

मज़ाक करता है ॥६॥

कहा—हे सास! घोड़े पर चढ़ा हुआ एक राजपूत मुझ से मज़ाक करता है ॥६॥

सास ने पूछा—हे बहू! कैसा उसका घोड़ा है? और कैसी लगाम लगी है? वह स्वयं किस रंग का है? और कैसी पगड़ी बाँधे हुये है? ॥७॥

बहू ने कहा—लाल रंग का तो घोड़ा है। काले रंग की उसकी लगाम है। श्याम वर्ण का वह स्वयं है और मोडदार पगडी बाँधे हुये है ॥८॥

मचिए पर बैठी हुई सास हँसकर कहने लगी—बहू! किसने तुम्हारी बुद्धि हर ली? जो तुम ने अपने परदेशी पति को नहीं पहचाना ॥६॥

पहचानती कैसे! ब्याह करने के बाद ही कमाने के लिये पति परदेश चला गया होगा। बारह वर्ष बाद लौटा होगा। स्त्री ने विवाह के बाद फिर कभी उसे देखा होगा ही नहीं, पहचानती कैसे? उसने पति को पर- पुरुष समझ कर जो कुछ कहा, वह उचित ही था। अपरिचित पुरुष का किसी स्त्री से इस प्रकार मज़ाक करना सभ्यजनोचित व्यवहार नहीं कहा जा सकता।

[७५]

चैते की तिथि नौमी कि नौबत बाजै।
राजा राम लिहिन औतार अयोध्या के ठाकुर ॥१॥
दसरथ पटना लुटावैं कौशिल्या रानी अभरन।
रानी कैकेइ वस्त्र लुटावैं सुमित्रा रानी सुवरन ॥२॥
राम के मथवा भझुरिया बहुत निक लागै अधिक छवि लागै।
मानौं कमल कर फूल भँवर सिर लुन करैं ॥३॥
राम के पांय पैंजनियाँ बहुत निक लागै अधिक छवि लागैं।
जे हो चलत मधुरियन चाल त झुनि-झुनि बाजै ॥४॥

राम के कमर करधनियाँ बहुत निक लागै अधिक छवि लागै।
सँवरे बदन पर भँगुलिया दमिन चित चोरै ॥ ५ ॥
राम के नयन कजरवा अधिक निक लागै बहुत छवि लागै।
अब दीन्ह फूफू सहोद्रा अँगुरिया नहीं डोलै ॥ ६ ॥
ऐसी मूरत जौ पउतिउँ हृदया बसउतिवँ।
पीत पितम्बर ओढ़उतिवँ ललन कहि बोलउतिवँ ॥ ७ ॥

चैत्र की नवमी को नौबत बज रही है। अयोध्या के स्वामी राजा राम ने अवतार लिया है ॥१॥

राजा दशरथ गाँव लुटा रहे हैं। रानी कौशिल्या गहने, रानी कैकेयी वस्त्र और रानी सुमित्रा सोना लुटा रही हैं ॥२॥

राम के माथे पर बाल बहुत सुन्दर लगते हैं। मानों कमल के फूल पर भौंरे मुग्ध हो रहे हैं ॥३॥

राम के पैर में पैजनी बहुत शोभा दे रही है। जब राम मंद-मद चलते हैं, तब वह रुन-मुन बजती है ॥४॥

राम की कमर में करधनी बहुत अच्छी लगती है। साँवले शरीर पर पीली भँगुली बिजली का भी चित्त चुरा रही है ॥५॥

राम की आँखों में काजल बहुत शोभा दे रहा है। यह काजल राम की फूफू सुभद्रा का दिया हुआ है, जिनकी उँगली काजल देते समय नहीं हिलती ॥६॥

ऐसी मनोहर मूर्ति जो मैं पाती तो हृदय में बसा लेती। उसे पीताम्बर ओढ़ाती और प्यारे पुत्र कहकर बुलाती ॥७॥

[७६]

सोने के खड़उवाँ राजा दसरथ खुटुरु खुटुरु चले।
राजा गइले केदलिआ के बन में त काँट गाडि गइलनि ॥ १ ॥

जे मोरे कँटवा निकलिहैं वेदन हरि लीहैं।
अरे जवन मगनवाँ जे मँगिहैं तवन हम देइब ॥२॥
घर में से निकलीं केकैया रानी सोरहो सिंगार कइले।
राजा हम तुहरे कँटवा निकरबै वेदन हरि लेइब ॥३॥
अरे जवन मँगन हम मँगबै तवन रउरे देइब।
अँगुली से कँटवा निकरलीं वेदन हरि लिहलीं ॥४॥
राजा जवन मगन हम मँगलीं तवन रउरे देईं।
राजा राम लछन वन जाय भरत राज बैठमें ॥५॥
मँगही के केकई तु मँगलु माँगन नहिं जनलु।
केकई मांगे मोरे प्रान अधार कौसिल्या रानी के अँगन ॥६॥
जे राम चित से न उतरें पलक से न बिसरें।
से राम वन चलि जैहैं त कैसे जिउ बाचब ॥७॥

मोने के खड़ाऊँ पर राजा दशरथ खुटुर-खुटुर करते केदली के वन में गये, तो वहाँ काँटा धँस गया ॥१॥

उन्होंने कहा—जो यह काँटा निकाल लेगा और मेरी पीड़ा हर लेगा, वह जो मांगेगा, मैं वही दूँगा ॥२॥

सोलहो शृंगार किये हुये कैकेयी रानी घर में से निकलीं। उन्होंने कहा—हे राजा ! मैं काँटा निकालकर तुम्हारी पीड़ा हर लूँगी ॥३॥

पर जो मैं माँगूँगी, उसे आपको देना पड़ेगा। यह कहकर उन्होंने उँगली से काँटा निकाल लिया और पीड़ा हर ली ॥४॥

कैकेयी ने कहा—हे राजा ! जो मैं माँगती हूँ, उसे आप दें। मैं माँगती हूँ कि राम, लक्ष्मण वन जायँ और भरत राज करें ॥५॥

दशरथ ने कहा—माँगने को तो तुमने माँगा, पर माँगने नहीं जाना। कैकेयी ! तुम मेरा प्राणाधार और रानी कौशल्या का जीवनाधार माँगती हो ॥६॥

जो राम चित्त से नहीं उतरते, फलक से नहीं दूर किये जा सकते, वे राम यदि बन जायँगे तो मैं धैर्य कैसे धरूँगा ? जी को कैसे समझाऊँगा ? ॥७॥

यद्यपि कैकेयी को यह बरदान एक युद्ध में मिला था, जिसमें राजा दशरथ राक्षसों से लड़ रहे थे। रथ पर कैकेयी भी थी। यकायक रथ का धुरा पहिये के पास टूट गया। कैकेयी झट कूद पड़ी और उसने पहिये को अपनी कलाई पर रोककर रथ को और राजा को गिरने से बचा लिया। राजा को इस घटना की ख़बर भी न होने पाई। इतने में उन्होंने राक्षसों के सरदार का सिर काट लिया। हर्षोद्वेग में भाग लेने के लिये जब उन्होंने कैकेयी की ओर देखा, उस समय वह कलाई पर रथ सँभाले खड़ी थी। राजा के लिये यह दूसरे प्रकार का हर्षोद्वेग था और पहले वाले से कहीं अधिक प्रभावोत्पादक था। क्योंकि इससे राजा के प्राण की रक्षा ही नहीं हुई, बल्कि एक कोमलाङ्गिनी नारी की वीरता भी प्रकट हुई। इसी खुशी में राजा ने कैकेयी को दो वर दिये थे। पर गीत बनाने वाली स्त्रियों ने कैकेयी के इस कार्य्य को शायद स्त्री-जाति के लिये अस्वाभाविक और क्रूर समझकर उसे छोड़ दिया और एक नई घटना गढ़ ली, जो पहले से अधिक सरल, अधिक स्वाभाविक और घरेलू है।

[७७]

बाबाजी बियहिन राजा घर बहुत सम्पति घर।
मोरी माइउ खबरिया न लिहीं न बिरना पठाईं॥ १॥
सासु कहैं तोरे बाबा नाहीं ससुर कहैं तोरे माबा नाहीं।
आपु प्रभु कहैं तोरे भैया नाहीं के तोहरे आवै॥ २॥
अरे गरभैतिन बहुववा गरब जिन बोलो।
तोरे भैया के होरिला जो होतें तो आई तोरे औतें॥ ३॥

इतनी वचन सुनि बहुअरि सुरजू मनावैं।
सुरजू भैया के होते नँदलाल तो हमरे ओई आँतें ॥४॥
होत बिहान पह फाटत होरिला जनम भये।
बाजै लागीं अनन बधैया उठै लागे सोहर ॥५॥
बाबा मोरे गइन बजज घर जोडवा लै आइन।
माई मोरि पियरी रँगावैं बीरन लैके आवैं ॥६॥
भौजी मोर चौरा कुटाईं ढंढिया बन्हाईं।
भौजी मोर पुतरा उरेहैं बीरन लैके आवैं ॥७॥
आगे आगे आवै ढुँढिया पाछे घिउ गागर।
वहि पाछे भैया असवरवा तो बहिनी के देस जाँय ॥८॥
जैसे दौरै गैया तो अपने लेरुअवा खातिर।
वैसेन दौरै तो बहिनियाँ अपने बीरन खातिर ॥९॥
काउ लै आया भैया सासू क काउ गोतिन क।
काउ लै आया भैया भयन क तो काउ तू हमका ॥१०॥
पियरी लै आये बहिनी सासू क ढुंढ़िया गोतिन क।
गूँजा गोड़हरा तो भयन का तुहँका तो कुछु नाहीं ॥११॥

कन्या कहती है—पिता ने मेरा विवाह यद्यपि राजा के घर में किया, जहाँ बहुत धन है। पर मेरी माँ ने न मेरी ख़बर ली और न भैया ही को भेजा ॥१॥

सास कहती है—तेरे पिता नहीं हैं। ससुर कहते हैं—तेरे माँ नहीं है। स्वयं पतिजी कहते हैं—तेरे भाई नहीं है। कौन आवे ? ॥२॥

अरी अभिमानिनी बहू ! घमंड की बात न बोल। तेरे भाई के पुत्र होता तो वही तेरे यहाँ आता ॥३॥

यह बात सुनकर सूर्य देवता को मनाने लगी—हे सूर्य ! भैया के पुत्र होता, तो वही हमारे यहाँ आता ॥४॥

न ? दोपहर होने आया। बहू ! उठो। देखो, तुम्हारा परदेशी तुम्हारे द्वार पर खड़ा है ॥ ६ ॥

बहू झिझक कर उठी। केवाड़ी खोलकर उस ने देखा और पति से कहा—यदि मैं पहले से जानती कि तुम आ रहे हो, तो हे प्रियतम ! मैं धन्य-धान्य लुटाती और नाच कराती ॥ ७ ॥

हे प्रियतम ! जब से तुम गये, तब से मैंने सेज नहीं बिछाई। अपने ससुर को भोजन करा मैं ज़मीन पर पड़ी लोटा करती थी ॥ ८ ॥

पति ने कहा—हे मेरी प्यारी स्त्री ! मैं अपना हाल क्या कहूँ ? जब से तुम से अलग हुआ हूँ, तब से मैंने पान नहीं खाया, और न किसी पराई स्त्री पर दृष्टि डाली। हे मेरी हृदयेश्वरी ! तुम्हारी पीड़ा को मेरा हृदय ही जानता है, या ईश्वर ॥९॥

यह चरित्रवान् दम्पति का बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन है। माँ ने पुत्र को प्रसन्न करने के लिये यह बड़ी ही सुन्दर बात कही थी कि 'हे बेटा ! तुम्हारी स्त्री बहुत दुर्बल हो गई, पर उसका मुँह बड़ा सुन्दर है। अर्थात् विरह के कारण दुबली हो गई है, पर सतवती होने से उसके मुख की कांति, मुख का तेज बढ़ गया है।'

गीत के प्रारभ में बहू ने घटा से प्रार्थना की है कि हे घटा ! मेरे पति के देश में जाकर बरसो, जिससे उनका हृदय हुलसे। इस कथन में एक प्राकृतिक तथ्य छिपा हुआ है। घटा को देखकर, उसकी ध्वनि सुनकर, विरहियों में मिलने की आकांक्षा बड़ी प्रबल होती है। कालिदास ने मेघदूत में मेघ से कहलाया है—

यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानां।
मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरबलावेणि मोक्षोत्सुकानि ॥

अर्थात मेरी गरज में यह गुण है कि वह परदेशियों को तुरन्त अपने-अपने घर जाने का चाव दिलाती है, और उनके मन में उत्सुकता पैदा

करती हैं कि वे अपने घर पहुँचकर अपनी-अपनी स्त्री की देहरी खोलें।

[७६]

सावन भँदौना कै रतिश्रा देखत डर लागइ हो।
राजा, खोलौ न बजर केवरिया अँगन हम जावइ हो ॥ १ ॥
की हमरी मइश्रा जगावइ बहिनि हाँक मारइ हो।
धनिया कवन जरूर तोहैं लागि अगननुहुँ जाबिउ हो ॥ २ ॥
नाहीं तोहरी मइश्रा जगावइँ बहिनि न बुलावइ हो।
राजा छोड़ि देउ हमरा अँचरवा अँगन हम जावइ हो ॥ ३ ॥
एक लात दिही चउकठवा दुसरा लात अँगना में हो।
रामा, बाजै लागै अनँद बधैया उठन लागे सोहर हो ॥ ४ ॥

सावन भादों की रात, देखने में डर लगता है। हे राजा! वज्र ऐसी केवाड़ी खोल दो। मैं आँगन में जाऊँगी ॥१॥

मेरी माँ जगा रही है, या बहन बुला रही है? हे प्यारी स्त्री! क्या ज़रूरत है जो तुम आँगन में जा रही हो? ॥२॥

न आपकी माँ जगा रही है, न बहन बुला रही है। हे राजा! आँचल छोड़ दो। मैं आँगन में जाऊँगी ॥३॥

एक पग चौखट पर रखा। दूसरा पग आँगन में। इतने में (पुत्र पैदा होने से) आनंद की बधाई बजने लगी और सोहर गाया जाने लगा ॥४॥

अन्न-प्राशन का गीत

जिस दिन बच्चे को पहले-पहल अन्न खाने को दिया जाता है, उस दिन जो उत्सव होता है, उसे अन्न प्राशन कहते हैं। यह उत्सव अब सम्पन्न और पुरानी परिपाटी पर चलने वाले घरों में ही मनाया जाता है। साधारण गृहस्थों में अब इसका महत्व नहीं रह गया है।

गाँवों में इस उत्सव के भी बहुत से गीत प्रचलित हैं उनमें से एक यहां दिया जाता है ।—

[१]

आजु मोरे लीपन पोतन, औ अन्नप्रासन हो ॥ १ ॥
सासु अरगन नेवतह परगन, नैहर सासुर,
औ अजियाउर औ ननियाउर रे ॥ २ ॥
अरगन आयनि परगन, और ननिआउर
औ अजियाउर हो ।
सासू एक नहिं आये बिरन भैया, कैसे जियरा बोधौं रे ॥ ३ ॥
सासु भेंटहिं आपन भैया, ननद आपन देवर हो ।
सासू छतिया जे मोरी घहरानी, मैं केहि उठि भेटौं रे ॥ ४ ॥
झमकि के चढ्यूँ अटारिया, खिरिकियन झाँकयों हो ।
ननदी जनु भैया आवैं पहनैया, पगड़िया फहरावै रे ॥ ५ ॥
दुअराईं घोडा हिहियाने, पथर घहराने हो ।
बहूआ मिलि लेहु भैया बेदनैता,
सोहर अत्र सुनो सगुन पर बैठौ रे ॥ ६ ॥
(फतहपुर)

आज मेरे घर में लीपने-पोतने का काम हो रहा है । आज अन्न-प्राशन है ॥१॥

हे सासजी ! अरगन-परगन (आर्यगण और प्रजागण अथवा अपने और पराये सब), नैहर, सासुर, अजियाउर और ननियाउर सबको न्यौता भेज दो ॥२॥

अरगन-परगन वाले आये, ननिआउर और अजियाउर के लोग आये । हे सास ! मेरा भाई नहीं आया, मैं जी को कैसे धैर्य दूँ ? ॥३॥

सासजी अपने भाई को भेंट रही हैं । ननद मेरे देवर को भेंट

रही है। हे माधवजी ! मेरी छाती में आग धधक रही है, मैं उठकर किसे भेटूँ ? ॥४॥

मैं झमककर अटारी पर चढ़ी। खिड़की से झाँका। हे ननद ! जान पड़ता है, भैया पहुनाई करने आ रहे हैं। पगड़ी फहरा रही है ॥५॥

दरवाज़े पर घोड़ा हिनहिनाया, मानो पत्थर घहराया। हे बहू ! अब अपने नेहवाले भाई को मिल लो, सोहर सुनो और सगुन पर बैठो ॥६॥

इस गीत की पहली ही कड़ी में अन्न-प्राशन की चर्चा है, नहीं तो यह गीत प्रायः प्रत्येक उत्सव में, जिसमें सगे-संबंधी न्यौते जाते हैं, गाया जा सकता है। इसमें भाई के लिये बहन के हृदय की वेदना का बड़ा मार्मिक वर्णन है।

मुण्डन के गीत

जन्म के तीसरे, पाँचवें या सातवें वर्ष में पहले-पहल जब बच्चे के सिर के बाल उतारे जाते हैं, उसे मुण्डन कहते हैं। हिन्दू-समाज के सोलह संस्कारों में यह एक संस्कार है।

पहले ज्योतिषी से मुण्डन का दिन और समय नियत किया जाता है। फिर नियत दिन पर देव-पूजन, हवन और ब्राह्मणों और मित्रों को भोजन कराया जाता है और ब्राह्मणों को दक्षिणा दी जाती है।

मुण्डन हो जाने के बाद बच्चे की बहन को, और अगर बहन न हुई तो उसकी फूफी को, जो बाल बटोरती है, तथा मुण्डन करने वाले नाई को नेग चुकाये जाते हैं और उन्हें ख़ुश किया जाता है। बहन को नेग में नक़द रुपये, बरतन या गाय या बछिया-बछड़े दिये जाते हैं। नाई को नक़द रुपये-पैसे, कोई एक बरतन या कपड़े दिये जाते हैं। नेग गृहस्थ के घर की माली हालत पर निर्भर है। ग़रीब गृहस्थ के घर में

कुछ पैसों ही से बच्चे की बहन और नाई को संतोष करना पड़ता है।

घर की स्त्रियाँ टोले-महल्ले की स्त्रियों को जमाकर, सब के साथ गा-बजाकर मुण्डन संस्कार को एक सुखमय उत्सव का रूप दे देती हैं। इस प्रसंग के बहुत से गीत उनमें प्रचलित हैं, जिनमें निकट सम्बन्धियों के परस्पर के प्रेम-भाव और मुण्डन की क्रियाओं का भी वर्णन होता है।

यहाँ मुण्डन के अवसर पर गाये जाने वाले कुछ गीत दिये जाते हैं.—

[१]

सभवहिं बैठे सिर साहब, बोलैं जच्चारानी रे।
साहेब मोरे नैहर लोचना पठावो,
पियरिया भैया भेजैं, होरिलवा के मुंडन ॥ १ ॥
तोहर नैहरवा धन दूरि बसै, कोसवन को गनै हो।
रानी, घर ही मे रँगहु पियरिया, चौक पर बैठहु,
होरिलवा के मूँड़न रे ॥ २ ॥
तोहर पियरिया राजा नित के,निति उठि पहिरब हो।
राजा, हमरे भैया कै पियरिया सगुन के,
चउक पर बैठब हो, होरिलवाँ के मूँड़न हो ॥ ३ ॥
हँकरहु नगर के नौवा बेगहिं चली आवहु रे।
नौवा रंगि रगि पीसहु हरदिया, रोचन पहुँचावहु,
होरिलवा के मूँड़न रे ॥ ४ ॥
सभवहिं बैठे हैं बीरन भैया, नौवा से पूँछई रे।
नौवा केकरे भयन नन्दलाल, रोचन कहाँ पायो हो ॥ ५ ॥
बड़हर कै हम नौवा, सुजन घरवाँ आये हो।
तोहरी बहिनी के भये नन्दलाल,
लोचन लैके आये हो ॥ ६ ॥

हरषि के उठेनि बीरन भैया, धन जी से पूँछैं हो।
रानी, बहिनी के भये नन्द लाल, लोचन हमको आवा हो.
पियरिया लैके जावै रे ॥ ७ ॥
येहि पेटरवा के कुंजिया ना जानों कहाँ गिरि गई हो।
राजा नाहीं रे बजजवा यहि गाँव,
पियरिया कहाँ पौंच्यो रे ॥ ८ ॥
बँचवै मैं ढाली तरवरिया, अरे फाँडि कै कटरिया रे।
रानी, सौ साठि पियरी रँगौवे, चौंक पर पचहुँचव हो ॥ ९ ॥

घर के मालिक सभा में बैठे हैं। जच्चारानी ने उनसे कहा—हे स्वामी! मेरे नैहर को रोचन भेजो, ताकि मेरे भैया पियरी (पीली धोती) भेजें। बच्चे का मुण्डन है ॥१॥

हे धन! तुम्हारा नैहर बड़ी दूर है। कितने कोस है? कौन गिनती करे। हे रानी! घर ही में पियरी रंग डालो, और उसे पहनकर चौक पर बैठो। बच्चे का मुण्डन है ॥२॥

हे राजा! तुम्हारी रंगी हुई पियरी तो हमेशा की है। सदा उसको पहनूँगी। हे राजा! मेरे भैया की सगुन की पियरी है। उसी को पहनकर चौक पर बैठूँगी। बच्चे का मुण्डन है ॥३॥

नगर के नाई को बुलाओ। जल्दी आये। हे नाई! खूब घिस-घिसकर हल्दी पीसो और रोचन ले जाओ। बच्चे का मुण्डन है ॥४॥

भैया सभा में बैठे हैं। नाई से पूछते हैं—हे नाई! किसके पुत्र हुआ है? रोचन कहाँ पाया? ॥५॥

मैं फलाहर (गाँव का नाम) का नाई हूँ। आप बहन के घर आया हूँ। आपकी बहन के पुत्र हुआ है। उसी का रोचन लेकर आया हूँ ॥६॥

भैया प्रसन्न होकर उठे। उन्होंने अपनी स्त्री से पूछा—हे रानी! बहन के पुत्र हुआ है। रोचन आया है। मैं पियरी लेकर जाऊँगा ॥७॥

स्त्री ने कहा—पेटारे की कुञ्जी तो न जाने कहाँ गिर गई। हे राजा! इस गाँव में बजाज भी तो नहीं है, पियरी कहाँ पाओगे? ॥८॥

मैं ढाल-तलवार बेंच दूँगा, कमर की कटारी गेंच दूँगा। हे रानी! सैंकड़ों पियरियाँ रँगाकर और लेकर चौक पर पहुचूँगा ॥९॥

इस गीत में भाई और बहन के प्रेम का सरस वर्णन है। साथ ही स्त्री-स्वभाव की भी झलक है। भाई की स्त्री की इच्छा नहीं थी कि उसकी ननद को पियरी भेजी जाय।

यह गीत उस जमाने का है, जब हमारे घरों में ढाल-तलवार और कमर की कटारी थी।

[२]

ना बाबा बजना बजायो न सुजना बुलायो।
बडे रे कलप कै लफरिया तौ चोरिया मुँड़ायो ॥ १ ॥
हम नाती बजना बजैवै, और सुजना बुलैवै।
बडेरे कलप कै लर्फरिया, मैं हरषि मुड़ैवै ॥ २ ॥
सोने के खड़ौवाँ भैया साहेब, बहिनि बहिनि करैं।
कहाँ गइउ बहिनि हमारि, तौ लोइया बटोरैं ॥ ३ ॥
भितराँ से निकरीं हैं बहिनि तौ हाथ भरि लोइया लिहे।
देव भैया नेग हमार, तौ लोइया बटोरउँ ॥ ४ ॥
देवै गले कै तिलरिया दूनौ काने बिरिया।
देवै बहिनि सोरहौ सिंगार, बिहँसि घर जायो ॥ ५ ॥

(प्रतापगढ़)

हे बाबा! न तुमने बाजा बजवाया, न सुजनों (भले आदमियों) को बुलाया। बड़े लटों की लफरी (लट) को चुपके-से मुँड़ाया ॥१॥

हे नाती! हम बाजा बजवायेंगे, सुजनों को बुलायेंगे बड़ी लटों को बड़े हर्ष से मुँड़वायेंगे ॥२॥

भाई सोने के खड़ाऊँ पर चढ़कर बहन, बहन पुकार रहा है। हे मेरी बहन! कहाँ हो? लटें बटोरो ॥३॥

बहन भीतर से निकली। हाथों में भरकर लटें लिये है। हे भाई! मेरा नेग दो तो लटें बटोरूँ ॥४॥

भाई ने कहा—मैं तुम्हारे गले के लिये तिलरी और कानों के लिये चिरिया (कान का एक गहना) दूँगा। हे बहन! मैं सोलहों शृंगार का सामान दूँगा, तुम प्रसन्न होकर घर जाना ॥५॥

[३]

हाथी चढ़ो बाबा हाथी चढ़ो, बाबा कवन रामा हो।
तुमरे ननिया कै लगन समीप, तौ लफरी मुँड़ाओ हो ॥ १ ॥
हाथी चढ़ो दादा हो हाथी चढ़ो, दादा कवन रामा हो।
तुम रे दुलरु कै लगन समीप, तौ लफरी मुँड़ावउ हो ॥ २ ॥
नौआ ना हउ कासी, तौ बाँभनु बनारस हो।
मोरी धिया गइ हैं ससुरारि, तौ कैसे मुँड़ावउँ हो ॥ ३ ॥
अस्सी कोस कै ननदिया बधीवा लैकै आई हो।
मोरी भौजी ने ठना है केचेंटिया, इहाँ कहाँ आइउ हो ॥ ४ ॥
की भौजी होव जागिनि, की होव भाँटिनि हो।
की होव जगत पतुरिया, दुवारे तुम्हरे नाचौं हो ॥ ५ ॥
नाहीं ननदी मोर जागिनि, नाहीं होइ भाँटिनि हो।
ननदी, बड़े रे हुयल कै बहिनियाँ, आदर बिन आइउ हो ॥ ६
(इटावा

हे बाबा! हाथी पर चढ़ो। हाथी पर चढ़ो। तुम्हारे नाती के मुण्डन की साइत समीप है, मुण्डन करा दो ॥१॥

हे दादा! हाथी पर चढ़ो, हाथी पर चढ़ो। तुम्हारे दुलारे की साइत समीप है, मुण्डन करा दो ॥२॥

नाई तो काशी गया है, पण्डित बनारस गये हैं, मेरी बेटी ससुराल गई है, मुण्डन कैसे कराऊँ ? ॥३॥

अस्सी कोस पर ब्याही हुई ननद बधावा लेकर आई है। भावज ने केवाड़े बन्द कर लिये और कहा— यहाँ कहाँ आई हो ? ॥४॥

ननद ने कहा—अब या तो मैं जागिन होकर या भांटिन या जगत की पतुरिया (नाचने वाली) होकर तुम्हारे द्वार पर नाचूँगी ॥५॥

भावज ने कहा—हे मेरी ननद ! न जागिन हो, न भाटिन हो। हे ननद ! तुम बड़े छैला (उसके पति) की बहन हो, बिना सूचना दिये आई हो ॥६॥

ननद ने अपने भाई की सामाजिक मान-मर्यादा का ध्यान नहीं रक्खा और वह बिना सूचना दिये आगई, इससे उसका उचित स्वागत-सत्कार नहीं हो सका। इससे गाँव में ननद के भाई की हँसी हुई होगी। स्त्रियों को अपने कुटुम्ब की इज़्ज़त का कितना ध्यान रहता है !

जनेऊ के गीत

जनेऊ शब्द यज्ञोपवीत का अपभ्रंश है। यज्ञोपवीत को ब्रह्मसूत्र भी कहते हैं। जनेऊ पहनना आर्य-जाति की बहुत पुरानी प्रथा है।

यज्ञोपवीत का यह श्लोक प्रत्येक द्विज को याद कराया जाता है—

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं
प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं
यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥

भावार्थ—यज्ञोपवीत परम पवित्र है, जो प्राचीनकाल में प्रजापति के साथ उत्पन्न हुआ था। यह आयु, बल और तेज का देने वाला है।

पारसी लोग भी जो आर्यों के सजातीय हैं और ईरान में जाकर बस

गये थे, यज्ञोपवीत पहनते हैं। यज्ञोपवीत का उनका मंत्र यह हैः—

फ्राते मज़दाओ वरन् पौरवनिम आयभ्य ओंघनेम् स्तेहर् पाएसघेम् मैन्यु-तस्तेम वंधुह्मि दायनम् मज़दयास्निम।

अर्थात्, हे मज़दा, यासनिन धर्म के चिह्न! तारों से जड़े हुये यज्ञोपवीत! तुझे पूर्वकाल में मज़दा ने धारण किया है।

पूर्वकाल में, उपनयन संस्कार में यज्ञोपवीत धारण करके तब ब्रह्मचारी आचार्य के पास विद्याध्ययन के लिये जाता था। यज्ञोपवीत धारण करने के दिन से ब्रह्मचारी को कुछ व्रतों अर्थात् नियमों का पालन करना अनिवार्य हो जाता था, इसलिये इसे व्रत-बन्ध भी कहते हैं। यज्ञोपवीत धारण करने के बाद ही मनुष्य की द्विज संज्ञा होती है। नहीं तो, मनु महाराज के निर्णय के अनुसार, यज्ञोपवीत होने के पहले मनुष्य-मात्र शूद्र हैं।

जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद्द्विज उच्यते। मनुस्मृति॥

यज्ञोपवीत क्यों पहना जाता है? इसका उत्तर कौषीतकि ब्राह्मण के इस मंत्र में मिलता है—

यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे।

आचार्य कहता है—हे ब्रह्मचारी! मैं तुझे दीर्घायु, बल और तेज के लिये यज्ञोपवीत से बाँधता हूँ।

यज्ञोपवीत में तीन तागे होते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ तीनों आश्रमों के नियमों को अच्छी तरह पालन करने के लिये प्रतिज्ञाबद्ध होता है। साथ ही प्रत्येक व्यक्ति के साथ जन्म से ही तीन ऋण लगे हुये हैं—ऋषि-ऋण, देव ऋण और पितृ-ऋण।

जायमानो ह वै ब्राह्मणास्त्रिभिर्ऋणैर्ऋणवान् जायते।
ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्य प्रजया पितृभ्य इति॥
(ब्राह्मण ग्रंथ)

अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों तीन ऋणों से ऋणी ही पैदा होते हैं। ब्रह्मचर्य धारण करके, ऋषियों के बनाये ग्रंथों का स्वाध्याय करके, ऋषि-ऋण से, यज्ञों के द्वारा देव-ऋण से और संतान उत्पन्न करके पितरों के ऋण से छुटकारा मिलता है। सन्यासी इन तीनों ऋणों से मुक्त होता है। इससे उसे यज्ञोपवीत-धारण की आवश्यकता नहीं रहती। यज्ञोपवीत में तीन तागे होने का एक अभिप्राय यह भी बताया जाता है कि इसका सम्बध ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीन ही वर्णों से है। शूद्र के लिये यज्ञोपवीत का विधान नहीं है।

यज्ञोपवीत ९६ अंगुल लम्बा होना चाहिये। ९६ अंगुल लम्बा होने का तात्पर्य यह है—

तिथिर्वारश्च नक्षत्रं तत्वं वेदा गुणात्रयम्।
कालत्रयञ्च मासाश्च ब्रह्मसूत्रञ्च षण्नव॥

तिथि १५, वार ७, नक्षत्र २८, तत्व २४, वेद ४, गुण ३, काल ३, मास १२। कुल मिलाकर ९६ हुये। इन सब के साथ नियम निबाहने के लिये प्रतिज्ञाबद्ध होने के प्रमाण-स्वरूप ९६ अंगुल का सूत्र पहना जाता है। कुछ विद्वानों का यह भी कथन है कि ९६ अंगुल का यज्ञोपवीत वेद के ९६००० मंत्रों के अध्ययन का एक प्रमाण है।

यज्ञोपवीत कमर से नीचे नहीं आना चाहिये। इस सम्बन्ध में छन्दोग परिशिष्ट में लिखा है—

स्तनादूर्ध्वमधो नाभेर्न धार्यं तत्कथञ्चन।
ब्रह्मचारिण एकं स्यात् स्नातस्य द्वे बहूनि वा॥

अर्थात्, यज्ञोपवीत स्तन से ऊपर और नाभि से नीचे न पहने। ब्रह्म-

चारी एक और गृहस्थ दो यज्ञोपवीत पहने।

मूत्र और पुरीष त्याग के समय यज्ञोपवीत को दाहिने कान पर तीन बार लपेट लिया जाता है। यह केवल शुद्धता के लिये किया जाता है। एक लाभ यह भी है कि यज्ञोपवीत धारण करने के अवसर पर की हुई प्रतिज्ञायें—खास कर ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध की प्रतिज्ञायें—बार बार याद आती रहें। प्रतिज्ञायें ये हैं—

१—दिवा मा स्वाप्सी.।

दिन में मत सोना।

२—आचार्याधीनो वेदमधीष्व।

आचार्य के अधीन रहकर वेद का अध्ययन कर।

३—क्रोधानृते वर्जय।

क्रोध और झूठ को छोड़ दे।

४—मैथुनं वर्जय।

मैथुन को छोड़ दे।

५—उपरि शय्यां वर्जय।

भूमि से ऊपर पलँग आदि पर सोना छोड़ दे।

६—कौशीलव गन्धाञ्जनानि वर्जय।

गाना-बजाना, नृत्य आदि तथा इत्र इत्यादि का सूँघना और आँखों में अञ्जन लगाना वर्जित है।

७—मांस रूक्षाहारं मद्यादिपानं च वर्जय।

मांस, रूखा-सूखा भोजन और मद्य आदि नशीली चीज़ों का सेवन मत कर।

८—अन्तर्ग्राम-निवासोपानच्छत्रधारणं वर्जय।

गाँव के बीच में, बसना जूता और छाता धारण करना वर्जित है।

९—अकामत स्वयमिन्द्रियस्पर्शेन वीर्यस्खलनं विहाय वीर्य

शरीरे सरक्ष्योर्ध्वरेता सतत भव।

लघु शंका के सिवा कभी उपस्थ इन्द्रिय का स्पर्श मत कर। न वीर्य स्खलित होने दे। ऊर्ध्वरेता बन।

१०—सुशीलो मितभाषी सभ्यो भव।

सुशील, थोड़ा बोलनेवाला और सभा में बैठने योग्य गुणों वाला बन।

समाजरूपी शरीर में वैश्य का स्थान कमर कहा गया है। अतएव वैश्य तक यज्ञोपवीत पहनने के अधिकारी हैं। शूद्रों को अधिकार नहीं है। अतः कमर से नीचे यज्ञोपवीत का पहनना वर्जित है।

यज्ञोपवीत में जो गाँठ दी जाती है, उसका नाम ब्रह्म-ग्रन्थि है। देहात में इसे ब्रह्म गाँठ कहते हैं। गाँठें भी तीन दी जाती हैं।

यज्ञोपवीत के सम्बध में एक नियम और भी है। वह यह है कि यज्ञोपवीत अपने काते हुये सूत का होना चाहिये। बाज़ार से खरीदे हुये सूत का यज्ञोपवीत अपवित्र माना जाता है। इससे प्रत्येक द्विज को सूत कातने की प्रक्रिया का जानना अनिवार्य है। आजकल तो लोग बाज़ार से खरीदे हुये विलायती सूत का यज्ञोपवीत बनाते और पहनते हैं। शहरों में तो जर्मनी से बने-बनाये यज्ञोपवीत आते और बिकते हैं। तीर्थ-स्थानों में, घाटों पर बहुत से ब्राह्मण बैठे जनेऊ बेंचा करते हैं। वे प्रायः वहीं जनेऊ बनाया भी करते हैं। कपड़ा सीने की रीलें वे बाज़ार से खरीद लेते हैं और उसे तिहरा करके उसमें मामूली गाँठ दे लेते हैं। उनको आजकल के बहुत से अंग्रेज़ी पढ़े हुए बाबू लोग (वेरी फाइन) जनेऊ कहकर ख़रीदते और पहनते हैं। इस प्रकार यज्ञोपवीत पहनने का उद्देश्य सर्वथा नष्ट हो गया है। अब कुछ लोग तो समाज के भय-वश, कुछ रूढ़ि-वश और कुछ अन्धविश्वास से जनेऊ पहनते हैं। यज्ञोपवीत की यह दुर्दशा शोचनीय है।

ब्राह्मण बालक का यज्ञोपवीत ८ वर्ष की अवस्था मे होना चाहिये। क्षत्रिय का ११ वें वर्ष में, और वैश्य का १२ वें वर्ष मे यज्ञोपवीत होना शास्त्र-सम्मत है। उपनयन-संस्कार के समय के विषय मे शतपथ ब्राह्मण का यह वचन है·—

वसन्ते ब्राह्मणमुपनयेत्। ग्रीष्मे राजन्यम। शरदि वैश्यम। सर्व काल मेके॥

ब्राह्मण का वसन्त में, क्षत्रिय का ग्रीष्म मे और वैश्य का शरद् ऋतु में यज्ञोपवीत करना चाहिये। अथवा सब ऋतुओं में भी हो सकता है। दिन में प्रात.काल ही नियमित है।

देहातों में अब भी यज्ञोपवीत-संस्कार धूमधाम से मनाया जाता है। संस्कार मे नाते-रिश्ते के प्राय. सब लोग एकत्र होते हैं। यज्ञोपवीत धारण करने के दिन से ब्रह्मचारी को केवल भिक्षा पर जीवन-निर्वाह करके विद्याध्ययन करने का नियम है। समाज का अन्न खाकर जो ब्रह्मचारी विद्याध्ययन करता था, वह जीवन भर समाज का ऋण अपने ऊपर समझता था और ऋणमुक्त होने के लिये जीवन भर समाज की सेवा किया करता था। भिक्षा का यह लक्ष्य अब केवल आधे घंटे में ही प्राप्त कर लिया जाता है। साथ ही विद्याध्ययन के पंद्रह-सोलह वर्ष भी आँगन से ड्योढ़ी तक ही समाप्त हो जाते हैं। ब्रह्मचारी विद्याध्ययन के लिये काशी जाने को तैयार होता है। दो चार कदम चलता है कि घरवाले वापस बुला लेते हैं। इस तरह हिन्दू-समाज में यज्ञोपवीत का यह ढकोसला चला जा रहा है।

ब्रह्मचारी को भिक्षा देना पूर्वकाल में बड़े पुण्य का काम समझा जाता था। भिक्षा देने की इस प्रथा से बड़े-बड़े गुरुकुलों का खर्च सहज ही में चल जाता था। फंड के लिये न किसी अधिवेशन की आवश्यकता होती थी, और न अन्य प्रकार के किसी आयोजन की। उस प्रथा को

त्याग देने ही से आजकल शिक्षा महँगी, सकुचित और केवल स्वार्थमूलक हो गई है।

जनेऊ के अवसर पर जो गीत गाये जाते हैं, वे प्राय. सोहर ही छंद के होते हैं। पर लय में कुछ अंतर होता है।

यहाँ जनेऊ के कुछ गीत दिये जाते हैं।

[१]

देहु न माता मोहिं सतुवा और गुड़ गेंड़ुवा।
जैहों मैं कासी बनारस वेद पढ़ि अइहों॥ १॥
नाहीं मोरे सतुवा नाहीं गुड गेंड़ुवा।
तोरा दादा हैं विद्वान घर हीं वेद पढ़िल्यो॥ २॥
देहु न काकी मोहिं सतुवा और गुड़ गेंडुवा।
जैहों मैं काशी बनारस वेद पढ़ि अइहों॥ ३॥
नाहीं मोरे सतुवा नाहीं गुड़ गेंडुवा।
तोरा काका हैं विद्वान घरहीं वेद पढ़िल्यो॥ ४॥
देहु न बूबा मोहिं सतुवा और गुड गेंडुवा।
जैहों मैं काशी बनारस वेद पढ़ि अइहों॥ ५॥
नाहीं मोरे सतुवा नाहीं गुड़ गेंड़ुवा।
तोरा फूफा हैं विद्वान घरहीं वेद पढ़िल्यो॥ ६॥

ब्रह्मचारी कहता है— हे माता! मुझे सतुआ, गुड़ और लोटा दो। मैं काशी जाकर वेद पढ़ आऊँ॥ १॥

माता कहती है—हे बेटा मेरे सतुवा, गुड और लोटा नहीं है। तेरे पिता विद्वान् हैं, उनसे ही घर पर वेद पढ़ लो॥ २॥

इसी प्रकार ब्रह्मचारी अपनी काकी और बुआ आदि से निवेदन करता है और एक सा उत्तर पाता है कि घर पर ही वेद पढ़ानेवाले विद्वान् हैं, यहीं वेद पढ़ लो।

यह गीत प्राचीन भारत का एक अनुपम दृश्य हमारी आँखों के आगे लाकर खड़ा कर देता है, जब एक-एक घर में दो-दो, चार-चार वेदज्ञ विद्वान रहते थे। विद्या की रुचि इतनी थी कि बालक स्वयं काशी जाकर वेद पढ़ आने के लिये आग्रह करता था। ब्रह्मचारी एक मामूली जल पात्र के साथ घर से निकल जाता था और भिक्षावृत्ति से जीवन-निर्वाह करके गुरुकुल से पूर्ण विद्वान होकर घर लौटता था। अब उसकी स्मृति एक सुख स्वप्न के समान जान पड़ती है।

[२]

इमली क पेड़ सुम्हुर अवरी झुम्हुर।
तेहि तर ठाढ़ी कवनी देई दैव मनावइँ॥ १॥
जनि दैव अर्जहु गरजहु जनि देव बरिसहु।
आवत होइहैं मोर स्वामी झिन्नी बुनिआँ भिजी जइहैं॥ २॥
केतनो तु प दैव गरजहु केतनो तु बरिसहु।
हमरे जे मारे क जनेउ भिजत हम जायउ॥ ३॥
भिजे मोरे माथे क मुरायठ हिरदै कर चंदन।
भिजे मोरे सोरहो सिंगार जनेउवा के कारन॥ ४॥

इमली का वृक्ष सीधा और घनी छाया वाला होता है। उसके नीचे खड़ी अमुक देवी देवता मना रही हैं॥१॥

हे देव! न गरजो, न तरजो, न बरसो। मेरे स्वामी आते होंगे, जो नन्हीं-नन्हीं बूँदों से भीग जायेंगे॥२॥

उस देवी का स्वामी कहता है—हे देव! तुम जितना हो गरजो और बरसो। मेरे गले का यज्ञोपवीत है। मैं भीगता हुआ भी आऊँगा॥३॥

मेरे सिर की पगड़ी और हृदय का चंदन भीग रहा है। जनेऊ के लिये मेरा सोलहो श्रृंगार भीग रहा है॥४॥

इस गीत में यह दिखलाया गया है कि मार्ग में चाहे जैसी भी वाधा उपस्थित हो, पर जनेऊ में अवश्य पहुँचना चाहिये।

[३]

द्वारेन द्वारे बरुवा फिरैं बखरी पूछैं बबा की हो।
द्वारेन उनके हैं कुईया भीती चित्र उरेही हो॥
आँगन तुलसी क बिरवा बेदवन झनकारी है हो।
सभवन बैठै बाबा तुम्हरे बैठे पुरवैं जनेउवा हो॥

नोट—पितामह से लेकर जितने लोग ब्रह्मचारी से बड़े दर्जे के होते हैं, हरएक का नाम लेकर इन्हीं पदों की आवृत्ति की जाती है।

ब्रह्मचारी द्वार-द्वार फिर रहा है और बाबा का घर पूछ रहा है। कोई उसको पता बता रहा है कि उनके द्वार पर कुँवा है। दीवार पर चित्र अंकित हैं। उनके आँगन में तुलसी का वृक्ष है। वेद-ध्वनि हो रही है। सभा में बैठे हुये तुम्हारे बाबा जनेऊ बना रहे हैं।

इस गीत में एक उच्च कोटि के ब्राह्मण गृहस्थ के घर की व्याख्या है। द्वार पर कुँवा, आँगन में तुलसी, दीवारों पर चित्र, घर में वेद-ध्वनि की गूँज और अपने हाथ मे जनेऊ कातना यह दृश्य अब विरले ही कहीं देखने को मिलता है।

[४]

गंगा जमुन बिच ऑतर चन्दन एक रुखवा है हो।
तेहि तर ठाड़े फूफा उनके कातें जनेउना हो॥
सात सखी मिलि पूछें किन्ह काते जनेउना हो।
आठ बरिस के (अमुक राम) उन्हें पंडित करवै हो।
हमरे दुलेरुवा (अमुक राम) उन्हें पंडित करवै हो॥

गंगा और जमुना के मध्य में चन्दन का एक वृक्ष है। उसके नीचे अमुक व्यक्ति के फूफा खड़े जनेऊ कात रहे हैं। सात सखी मिलकर

पूछती है कि किसके लिये जनेऊ काता जा रहा है? फूफा ने कहा—आठ वर्ष के मेरे दुलारे अमुक राम हैं, उनको पंडित बनाऊँगा।

अपने हाथ से काता हुआ यज्ञोपवीत ही पहनने का माहात्म्य है।

[५]

सोने के खड़ाऊँ राजा दसरथ ठाड पडित पुकारें हो।
अरे अरे पडित वशिष्ट जी मेरी अरज अोनाव॥
आठ बरिस के रमइया उन्हें देतेउ जनेउना॥ १॥
इतना सुनिन हैं वशिष्ट जी मलिआ बुलावें।
माली पानेन मडवा छवावौ कलस धरावौ॥ २॥
आठ बरिस कै दुलरुवा मड़ये तर ठाढे।
सिर वाके घाम लागै पॉव भूँभुरि लागै हो॥ ३॥
अरे अरे माय कौशिल्या रानी उठि भीख सँवारौ।
आठ बरिस के रमइया चन्द्र मॅडये तर ठाडे॥ ४॥

राजा दशरथ सोने के खड़ाऊँ पर खड़े हैं और पंडित को बुला रहे हैं। हे पंडित वशिष्ट मुनि! मेरी प्रार्थना सुनिये। आठ बरस के राम हो गये। अब इन्हें जनेऊ (यज्ञोपवीत) देना चाहिये॥१॥

इतना सुनते ही वशिष्ठ ने माली को बुलवाया और आज्ञा दी—पान का मड़वा छवाओ और कलश रखवाओ॥२॥

आठ बरस के लाड़ले राम मण्डवे के तले खड़े हैं। उनके सिर पर घाम लग रहा है और पैर जलती धूल से जल रहे हैं॥३॥

हे हे रानी कौशल्या! उठो और भीख की तैयारी करो। आठ बरस के राम मॉंड़ो के तले खड़े हैं॥४॥

आठ वर्ष की अवस्था में यज्ञोपवीत हो जाने का नियम शास्त्रानुकूल है। राम की अवस्था आठ वर्ष की होने से दशरथ चिंतित हुये और उन्होंने वशिष्ठ से राम को यज्ञोपवीत दिला दिया।

[६]

नदिया के ईरे तीरे वरुवा से वरुवा पुकारे।
आजा पठय देव नाव नेवरिया वरुवा चला आवै ॥ १ ॥
ना हमरे नाव नेवरिया नाहीं घर खेवट।
जेकर जनेउआ के साध पउँरि नदिया आवई ॥ २ ॥
भीजै मोर आगे की अँगिवाँ सिर कै पगिया।
भीजै मोर सौरहौ सिंगार जनेउवा के साध ॥ ३ ॥
देव्यौं मैं आगे के अगिआँ सिर कै पगिया।
देव्यौं मैं सोरहो सिंगार जनेउवा के कारन ॥ ४ ॥

नदी के किनारे एक ब्रह्मचारी पुकार रहा है—हे पितामह! नाव भेज दो, तो मैं पार उतर आऊँ ॥१॥

पितामह ने कहा—न मेरे नाव है, न केवट। यज्ञोपवीत की जिसकी लालसा हो, वह नदी तैर कर आवे ॥२॥

ब्रह्मचारी कहता है—मेरा अँगरखा भीग रहा है, सिर की पगड़ी भीग रही है, जनेऊ के लिये मेरा सोलहो शृंगार भीग रहा है ॥३॥

पितामह ने कहा—मैं अँगरखा दूँगा। मैं पगड़ी दूँगा। मैं जनेऊ के लिये सोलहो शृङ्गार दूँगा ॥४॥

जनेऊ के गीतों में नदी तैर कर आने का ज़िक्र अक्सर मिलता है। जान पड़ता है, आठ वर्ष की उम्र तक तैरना सीख लेना ब्रह्मचारी के लिये पूर्वकाल में अनिवार्य समझा जाता था।

[७]

गयाजी में बरुआ पुकारेले हथवाँ जनेउवा ले ले।
है कोई गयाजी क ठाकुर हमके जनेउवा दिहे ॥ १ ॥
गयाजी क ठाकुर गजाधर उहे उठि बोललें।
हम अही नग्र क ठाकुर हमही जनेउवा देवों ॥ २ ॥

काशी मे बरुआ पुकारेले हथवाँ जनेउवा लेले।
है कोई काशी क ठाकुर हमके जनेउवा दिहे॥ ३॥
काशी क ठाकुर विश्वनाथ बाबा उहे उठी बोललें।
हम अही काशी क ठाकुर हमहीं जनेउवा देबों॥ ४॥
विन्ध्याचल मे बरुवा पुकारेले हथवाँ जनेउवा ले ले।
है कोई विन्ध्याचल मे ठाकुर हमके जनेउवा दिहे॥ ५॥
विन्ध्याचल क ठाकुर भवानी त उहे उठि बोलेलीं।
हम अही विन्ध्याचल क ठाकुर हमहीं जनेउवा देबों॥ ६॥

अर्थ स्पष्ट है। बहुत से ब्रह्मचारी, जिनका यज्ञोपवीत संस्कार किसी कारण से घर पर नहीं होता गया, काशी या विन्ध्याचल आदि तीर्थ-स्थानों मे चले जाते हैं और यज्ञोपवीत धारण कर लेते हैं। यह प्रथा अब भी प्रचलित है। पर अब केवल गरीब और अनाथ ब्राह्मण ही ऐसा करते हैं। क्योंकि आजकल यज्ञोपवीत संस्कार मे गृहस्थ को बहुत खर्च करना पड़ता है। जो खर्च नहीं कर सकते, वे ही तीर्थ में जाकर जनेऊ पहन लेते हैं।

[८]

करो न माया मेरी लडुआ और कछू सतुआ जू।
जावों मैं काशी बनारस बेद पढ़ि आवहिं जू॥ १॥
काहे को जैहो पूता काशी काहे बनारस जू।
घरहीं अजुल मेरे बेटी तो बेद पढ़ाय देहें जू॥ २॥
आजुल न हो मेरे अजुला तुम्हीं मोर अजुला जू।
आजुल अहिर गड़रिया पढ़ाय बामन करि लीयो जू॥ ३॥

ब्रह्मचारी कहता है—हे माँ! लड्डू और कुछ सत्तू दो न ? मैं काशी जाकर वेद पढ़ आऊँ॥१॥

माँ कहती है—बेटा ! काशी क्यों जाओगे ? घर में ही तुम्हारे पितामह बड़े वेदज्ञ हैं, वे वेद पढ़ा देंगे ॥२॥

ब्रह्मचारी कहता है—हे पितामह ! तुम मेरे पितामह हो, तुमने अहीर गड़रियों को पढ़ाकर ब्राह्मण बना दिया है, मुझे भी पढ़ा दो ॥३॥

यह गीत उस समय का स्मरण दिला रहा है, जब विद्वान् होना ही ब्राह्मणत्व का प्रमाण था ।

[६]

राजा दसरथ अँगना मूँजि कौशिल्या रानी भल चीरैं ।
लपकि झपकि चीरैं दूनौ हाथे चीरैं ॥
रामचन्द्र बरुवा भुइयाँ लोटि जायं जनेउवा के कारन ॥ १ ॥
राजा दसरथ झारिन झूरिनि जाँघ बैठाइनि ।
देवै बेटा सोने के जनेउ जनेउवा बड़ा उत्तिम ॥ २ ॥
राजा दसरथ अगना मूँजि सुमित्रा रानी भल चीरैं ।
लपकि झपकि चीरैं दूनौं हाथे चीरैं ॥
रामचन्द्र बरुवा भुइयाँ लोटि जायँ जनेउवा के कारन ॥ ३ ॥
राजा दशरथ झारिनि झूरिनि जाँघ बैठाइनि ।
देवै बेटा सोने कै जनेउ जनेउवा बड़ा उत्तिम ॥ ४ ॥
राजा दसरथ आँगन मूँजि केकई रानी भल चीरैं ।
लपकि झपकि चीरैं दूनौ हाथे चीरैं ।
रामचन्द्र बरुवा भुइयाँ लोटि जायं जनेउवा के कारन ॥ ५ ॥
राजा दसरथ झारिनि झूरिनि जाँघ बैठाइनि ।
देवै बेटा सोने के जनेउ जनेउवा बड़ा उत्तिम ॥ ६ ॥
वशिष्ठ मुनि अँगना मूँजि गुरुआइनि भल चीरैं ।
लपकि झपकि चीरैं दूनौं हाथे चीरैं ।
रामचन्द्र बरुवा भुइयाँ लोटि जायँ जनेउवा के कारन ॥ ७ ॥

वशिष्ठ मुनि झारिनि झूरिनि जाँघ बैठाइनि।
देबै बेटा सोने के जनेउ जनेउवा बड़ा उत्तिम ॥ ८ ॥

राजा दशरथ के आँगन में मूँज है। कौशिल्या रानी उसे अच्छी तरह चीर रही है। लपक-झपक कर चीरती हैं। दोनों हाथों से चीरती हैं। ब्रह्मचारी राम जनेऊ के लिये भूमि पर लोट-लोट जाते हैं ॥१॥

राजा दशरथ ने राम को उठाया। धूल पोंछी। जाँघ पर बैठा लिया और कहा—बेटा! मैं तुम्हें पहनने के लिये सोने का जनेऊ दूँगा, जो बहुत उत्तम होता है ॥२॥

ऐसी ही बातें सुमित्रा, कैकेयी और वशिष्ठ मुनि ने भी कहीं। इस गीत में राम के बहाने यह बताया गया है कि बालकों में जनेऊ लेने की उत्सुकता कैसी होती है।

[१०]

काहे को हरुला काहे की है माछ।
सोने को हरुला, रूपे की है माछ।
राम लछिमन दोनों जोतें खेत।
काहे की डलिया काहे की है डाँक।
राइयो रुक्मिन बीज लै जाँय।
राम लछिमन दोनों बोवैं कपास।
एक पत्ता दो पत्ता तीसरे कपास।
काहे की है चरखी काहे की है डंडी।
चन्दन चरखी सोने की है डंडी।
राइयो रुक्मिनि ओटैं कपास ॥
काहे की है धुनियाँ काहे की है ताँत।
सोने की धुनियो रेसम की है ताँत।
राइयो रुक्मिनि धुनैं कपास ॥

काहे की है रहटा काहे की है माल।
चन्दन रहटा रेसम की है माल।
राइयो रुक्मिन कातैं सूत ॥
एक तागा, दो तागा, तीसरे जनेउ।
तीन तागा, चार तागा, पाँचवें जनेउ।
पाँच तागा, छ तागा, सातयें जनेउ।
सात तागा, आठ तागा, नौवें जनेउ ॥
पहिलो जनेउ गनेसजी को देव।
दुसरो जनेउ ब्रह्माजी को देव ॥
तीसरे जनेउ महादेवजी को देव।
चौथो जनेउ विष्णुजी को देव ॥
पाँचवो जनेउ सब देवतन देव।
छठवों जनेउ सब पुरखन देव ॥
सातवों जनेउ बरुआ को देव।
अहिर गडरिया बम्हन कर लेव ॥

यह गीत इटावा जिले का है। इसमें कपास बोने से लेकर सूत बनने और सूत से फिर जनेऊ बनने तक का क्रम वर्णित है। अन्त में कहा गया है कि इसी सूत के प्रभाव से अहीर गड़रिये भी ब्राह्मण हो सकते हैं।

इस गीत मे यह भी अभिप्राय निकलता है कि हरएक द्विज को स्वयं हल चलाना, कपास बोना, ओटना, धुनना, चरखा चलाना, सूत कातना और सूत से जनेऊ बनाना जानना चाहिये। घर-घर में चरखे की रक्षा के लिये ही तो कहीं यह नियम नहीं बनाया गया था ?

[११]

गंगा किनारे बरुआ फिरैं केऊ पार उतारइ हो।
पठइ दे आजा नवरिया बरुआ चढि आवइ हो ॥

न मेरे नाव न नवरिया नाहीं घर केवट हो।
जेकरे जनेऊ के साध पवरि दह आवइ हो॥
गंगा किनारे बरुआ फिरैं केऊ पार उतारहु हो।
पठई दो पिताजी नावरिया बरुआ चढ़ि आवइ हो॥
न मेरे नाव न नवरिया नाहीं घर केवट हो।
जेकरे जनेउआ के साध पवरि दह आवइ हो॥
गंगा किनारे बरुआ फिरैं केऊ पार उतारहु हो।
पठई दे भइया राम नावरिया बरुआ चढ़ि आवइ हो॥
न मोरे नाव न नवरिया नाहीं घर केवट हो।
जेकरे जनेउआ के साध पवरि दह आवइ हो॥

गंगा के किनारे ब्रह्मचारी फिर रहा है कि मुझे पार उतार दो। हे पितामह! नाव भेज दो तो ब्रह्मचारी उस पर चढ़कर इस पार आ जाय।

पितामह ने कहा—न मेरे नाव है, न केवट। जिसको जनेऊ की लालसा हो, वह दह तैरकर इधर आ जाय।

इसी प्रकार ब्रह्मचारी अपने पिता और भाई से भी प्रार्थना करता है और वही उत्तर पाता है जो पितामह ने दिया था।

पूर्वकाल में यज्ञोपवीत होने से पहले ब्रह्मचारी को तैरना जानना आवश्यक समझा जाता था। देश में नदी-नालों की अधिकता और पुलों की कमी से तैरना जानना शिक्षा का एक अङ्ग माना जाता था।

[१२]

चनन कै बिरछा हरेर तौ देखनै सुहावन।
त्यहि तर ठाढ़ि ···· देई आजी गैंया ननावैं।
दैया आज दसरिया न होयत्र आजु मोरे ललिया कै जनेव॥ १॥

चनन कै बिरछा हरेर तौ देखतै सुहावन।
त्यहिं तर ठाढ़ि दीदी देई दैवा मनावैं।
दैवा आजु बदरिया न होयव आजु मोरे पुतवा कै जनेव ॥ २ ॥
चनन कै बिरछा हरेर तौ देखतै सुहावन।
त्यहिं तर ठाढ़ि देई काकी दैवा मनावैं।
दैवा आजु बदरिया न होयव आजु मोरे पुतवा कै जनेव ॥ ३ ॥
चनन कै बिरछा हरेर तौ देखतै सुहावन।
त्यहिं तर ठाढ़ि बहिनि देई दैवा मनावैं।
दैवा आजु बदरिया न होयव आजु मोरे भैया कै जनेव ॥ ४ ॥

चन्दन का हरा वृक्ष है, जो देखने में बड़ा सुन्दर लग रहा है। उसकी छाया में देवी पितामही खड़ी होकर ईश्वर से विनय कर रही हैं—हे भगवान्! आज बदली न हो। आज मेरे पौत्र का जनेऊ है ॥१॥

यही पद दीदी, काकी और बहन के नाम से भी गाया जाता है। सब का अर्थ वही है, जो ऊपर दिया गया है।

[१३]

मलिया मौर नाहीं गाछै बेइलिया के फूल बिना।
मोरे लाल जनेउवा नाहीं पहिरैं तो अपने आजा बिना ॥
मलिया मौर अब गाछै बेइलिया के फूल पाये।
मोरे लाल जनेउवा अब पहिरैं तौ आजा अब आये ॥
मलिया मौर नहिं गांछै बेइलिया के फूल बिना।
मोरे लाल जनेउवा नाहीं पहिरैं तौ अपने दादा बिना ॥
मलिया मौर अब गाछै बेइलिया के फूल पाये।
मोरे लाल जनेउवा अब पहिरैं तौ दादा अब आये ॥
मलिया मौर नाहीं गाछै बेइलिया के फूल बिना।

मोरे लाल जनेउवा नाहीं पहिरैं तौ अपने काका बिना ॥
मलिया मौर अब गाछै बेइलिया के फूल पाये।
मोर लाल जनेउवा अब पहिरैं तौ काका अब आये ॥
मलिया मौर नाहीं गाछै बेइलिया के फूल बिना।
मोर लाल जनेउवा नाहीं पहिरैं तौ अपने फूफा बिना ॥
मलिया मौर अब गाछै बेइलिया के फूल पाये।
मोर लाल जनेउवा अब पहिरैं तौ फूफा अब आये ॥

माली लता के फूल बिना मौर नहीं बना रहा है। मेरा प्यारा लड़का भी पितामह की उपस्थिति बिना जनेऊ नहीं पहन रहा है।

इसी प्रकार दादा, काका और फूफा के नाम से अगले पद गाये जाते हैं। यज्ञोपवीत के अवसर पर इन सब का उपस्थित रहना आवश्यक होता है।

[१४]

ऊँच ओसरवा कवन रामा आले बाँस छाई।
रँभिया ओठंघलीं दुलहिन सुनो पिया पंडित।
बरहा बरिसवा के लाल भये ब्राभन के देतेउ ॥
चाहीं तौ ये धन चाहीं इस धोती अँगोछा।
चाहीं तौ ये धन चाहीं इस ब्राभन भोजन।
चाहीं तो ये धन चाहीं अमृत फल नरियल ॥
ऊँच ओसरवा कवन रामा आले बाँस छाई।
रँभिया ओठंघलीं दीदी कवनि देई सुनो पिया पंडित।
बरहा बरिसवा के लाल भये ब्राभन कै देतेउ ॥
चाहीं तौ ये धन चाहीं इस धोती अँगोछा।
चाहीं तौ ये धन चाहीं इस ब्राभन भोजन।
चाहीं तौ ये धन चाहीं अमृत फल नरियल ॥

ऊँच बखरिया काका राम आले बाँस छाई।
खँभिया ओठँघली चाची कवनि देई सुनौ पिया पण्डित।
बरहा बरिसवा के लाल भये ब्राभन कै देतेउ॥
चाही तौ ये धन चाही दस धोती अँगौछा।
चाही तो ये धन चाही दस ब्राभन भोजन।
चाही तो ये धन चाही अमृत फल नरियल॥

अमुक व्यक्ति का ऊँचा ओसारा है, जो हरे बाँसों से छाया हुआ है। उसकी स्त्री खंभे की आड़ में खड़ी होकर कहती है—हे प्रियतम! प्यारा लड़का बारह वर्ष का हो गया, उसे ब्राह्मण बना दो।

पति ने कहा—हे प्यारी स्त्री! दस धोती और दस अँगोछा चाहिये। कम से कम दस ब्राह्मणों को भोजन कराने की सामग्री चाहिये। अमृत जैसा मीठा नारियल का फल चाहिये।

इसी प्रकार दीदी और चाची ने भी अपने-अपने पतियों से कहा और सब को उपर्युक्त उत्तर मिला।

यज्ञोपवीत संस्कार में साधारणतः किन-किन चीज़ों की ज़रूरत पड़ती है, यही इस गीत में बताया है।

[१५]

यक तो मोतिया ढुरहुर देखतै सुहावन।
वैसहि ढुरहुर बरुवा तो मागै बरुवा नौ गुन॥
आजी मोरि मारैं गरियावैं ढाढुल झकझोरैं।
आजा कवने राम परमोधैं देवैं नाती नौ गुन॥
एक तौ मोतिया ढुरहुर देखतै सुहावन।
वैसहि ढुरहुर बरुआ राम तौ मागै नौ गुन॥
मैया मोर मारैं गरियावैं ढाढुल झिझकोरैं।
दाता कवन राम परमोधैं देवै बेटा नौ गुन॥

नोट—इसमें कवन की जगह आजा, दादा, फूफा, चाचा, मामा इत्यादि का नाम जोड़ा जाता है।

जैसे मोती गोल और देखने में सुन्दर होता है, वैसा ही ब्रह्मचारी है। वह नौगुणों से युक्त यज्ञोपवीत मांग रहा है।

पितामही मारती हैं। दादा झकझोरते हैं। पर पितामह ढाढ़स देते हैं कि हे पौत्र! मैं तुमको नौगुण दूँगा।

यही अर्थ आगे के पदों का भी है। अन्तर इतना ही है कि उनमें पितामह के स्थान पर क्रम से दादा, फूफा, चाचा, मामा इत्यादि के नाम जोड़ लिये जाते हैं।

यज्ञोपवीत पहनकर व्रती बनने की रुचि बालकों में बचपन ही में होती थी। इस गीत में ब्रह्मचारी ने यज्ञोपवीत माँगा। पितामही और दादा ने उसे रोका। क्योंकि वे उसे बहुत प्यार करते थे और अभी किसी व्रत में बँधने देना नहीं चाहते थे। पर प्रपितामह, जो संस्कारों की मर्यादा के रक्षक थे, उन्होंने उसे आश्वासन दिया कि उसे यज्ञोपवीत दिया जायगा। इस गीत में कुटुम्बियों की मनोदशा का चित्र है।

[१६]

गलिया कै गलिया पंडित घूमैं हथवा पोथिया लिहे।
कवन बखरिया राजा दसरथ तौ रामा कै जनेउ॥ १॥
सोनन धोतिया सुन्दर छोड़ैं बरुवा जेवत होंहैं,
पंडित वेद पढ़ैं रे।
आँगन ढोल धमाकैं, इन्द्र अस गरजैं॥
इहै बखरिया राजा दसरथ तौ रामा कै जनेउ॥ २॥
गलिया कै गलिया नाऊ घूमैं हथवा निमन्तनिया लिहे।
कवन बखरिया राजा दसरथ तौ रामा कै जनेउ॥ ३॥

वाँसन धोतिया सुखत होइहैं, बरूवा जेंवत होइहैं,
पंडित वेद पढ़ैं रे।
आँगन ढोल धमाकै, दइव अस गरजै।
उहै बखरिया राजा दसरथ तौ रामा कै जनेउ॥४॥
गलिया के गलिया बढ़ैया घूमैं हथवा पटुलिया लिहे।
कवन बखरिया राजा दसरथ तौ रामा कै जनेउ॥५॥
बाँसन धोतिया सुखत होइहैं, बरूवा जेंवत होइहैं,
पंडित वेद पढ़ैं रे।
आँगन ढोल धमाकै दइव अस गरजै।
उहै बखरिया राजा दसरथ तौ रामा कै जनेउ॥६॥
गलिया के गलिया कुम्हरवा घूमैं हथवा बरौवा लिहे।
कवन बखरिया राजा दसरथ तौ रामा कै जनेउ॥७॥
बाँसन धोतिया सुखत होइहैं बरूवा जेंवत होइहैं,
पंडित वेद पढ़ैं रे।
आँगन ढोल धमाकै दइव अस गरजै।
उहै बखरिया राजा दसरथ तौ रामा कै जनेउ॥८॥
गलिया के गलिया फूफा घूमैं हथवा जनेउवा लिहे।
कवनि बखरिया राजा दसरथ तौ रामा कै जनेउ॥९॥
बाँसन धोतिया सुखत होइहैं, बरूवा जेंवत होइहैं,
पंडित वेद पढ़ैं रे।
आँगन ढोल धमाकै दइव अस गरजै।
उहै बखरिया राजा दसरथ तौ रामा कै जनेउ॥१०॥

पंडित हाथ में पुस्तक लिये गली-गली में घूम रहे हैं और पूछ रहे हैं—राजा दशरथ की बखरी (घर) कौन सी है? जहाँ राम का जनेऊ होने वाला है॥१॥

जहाँ बाँस पर धोतियाँ सूखती होंगी, ब्रह्मचारी भोजन कर रहे होंगे, पंडित वेदोच्चार कर रहे होंगे, आँगन में ढोल बज रही होगी, मानों बादल गरज रहा है, वही राजा दशरथ की बखरी है, जहाँ राम का जनेऊ है ॥२॥

इसी प्रकार हाथ में किस्बत (उस्तरा आदि रखने का थैला) लिये हुये नाई, पटुली (काठ की तख्ती, जिस पर लड़के लिखना सीखते हैं) लिये हुये बढ़ई, कुल्हड़ लिये हुये कुम्हार, और जनेऊ लिये हुये फूफा राजा दशरथ का घर पूछते हैं और वहाँ उत्तर पाते हैं।

[१७]

ए कनउजवा के ब्राह्मन हमरेहूँ आएहु।
पोथिया पतरवा लैके आएहु हमरे बरत-बन्ध ॥१॥
कैसे क तोहरे आइब घरवा नहिं चीन्हों,
नाम न जानों ॥२॥
आँगन मोरे मोडच ओसरवाँ मोरे कोहबर।
हरदीक बेवरल कवन लाल कवन लाल द्वारे आएहु ॥३॥
ए जवने बन सिकिया न डोलै भवँरा न गुञ्जरै।
ए तवने बन पैठत कवन राम पराम टूटा तोरैं ॥४॥
ए काहे की टाँगिया तुहूँ कटवेउ केथुआ सिहरवेउ।
ए केकरे मण्डप चोटँवइबेउ केकर बरत-बन्ध ॥५॥
ए सोनवाँ की टँगिया हम कटवइ रुपवा सिहुरवइ।
राजा दसरथ मण्डप चोटँवइबै राजा रामचन्द्र क,
बरत-बन्ध ॥६॥
(फतहगढ)

हे कन्नौज के ब्राह्मण ! हमारे यहाँ भी आना। पोथी पत्रा लेकर आना। हमारे यहाँ यज्ञोपवीत-संस्कार है ॥ १ ॥

मैं तुम्हारे यहां कैसे आऊँगा ? मैं घर तो पहचानता ही नहीं, और नाम भी नहीं जानता ॥ २ ॥

मेरे आँगन में माँड़ो छाया है। ओसारे में कोहबर है। हल्दी लपेटे हुए अमुक लाल (बालक का नाम) खड़े होंगे। अमुक लाल (पिता का नाम) के द्वार पर आना ॥ ३ ॥

जिस बन में सींक नहीं डोलती, भौंरा भी गुन्जार नहीं करता। उस सघन बन में अमुक राम (पिता का नाम) पैठकर ढाक का डंडा तोड़ रहे हैं ॥ ४ ॥

किस चीज़ की बनी हुई कुल्हाड़ी से डंडे को काटोगे ? किससे छीलोगे ? किसके मंडप में सीधा खड़ा करोगे ? और किसका व्रत-बन्ध है ॥ ५ ॥

सोने की कुल्हाड़ी से काटूँगा। रूपे की कुल्हाड़ी से छीलूँगा। राजा दशरथ के मंडप में उसे खड़ा करूँगा। राजा रामचन्द्र का व्रत-बन्ध है ॥ ६ ॥

[१८]

चैतहिं बरुआ तेज चले, बइसाख में पहुँचेन हो ॥ १ ॥
मैं तोहसे पूँछहुँ ए बरुआ, तुहुँ जावेउ कवने घर हो ॥ २ ॥
जावेउँ जावेउँ मैं वोही घरा, जहाँ दाता वसैं सब लोग ॥ ३ ॥
जो मैं जनतेउँ ए बरुआ, हमरे घर अउबेउ हो।
बलुहर खेत जोतवतेउँ, धन मोतिया बोअवतेउँ हो ॥ ४ ॥
मोतियन थार भरवतेउँ, भिखिया उठि देतेउँ हो ॥ ५ ॥

(जौनपुर)

बरुआ (ब्रह्मचारी) चैत में चलकर बैसाख में पहुंचे ॥ १ ॥

हे बरुआ ! मैं तुमसे पूछता हूँ कि तुम किस घर को जाओगे ? ॥ २ ॥

मैं उस घर को जाऊँगा, जहाँ के सब लोग दाता हों ॥ ३ ॥

हे बरुआ ! यदि मैं जानता कि तुम मेरे घर आओगे तो मैं बलुआ खेत जोतवा कर उसमें घनी मोती बोवा देता और मोतियों से थाल भरकर तुमको उठकर भीख देता ॥४॥

प्राचीन काल में ब्रह्मचारियों को भिक्षा देना एक गृहस्थ-धर्म समझा जाता था। गृहस्थों में ब्रह्मचारियों को भिक्षा देने की कैसी उत्सुकता रहती थी, इस गीत में उसका आभास मिलता है।

[१६]

सभवाँ बइठल तोहे बाबा अमुक बाबा
करि घालू हमर जनेव।
बिना रे जनेउआ बाबा न सोभे कान्हा
नहिं रउरी जतिया के जोग ॥ १ ॥
जाँघ नहिं जोड़थ भइया रे अमुक भइया,
जिनि भइया दाहिन बाँह।
खाली जनेउआ बरुआ न सोभे कान्हा,
न होयब जतिया के जोग ॥ २ ॥
नित उठि अरे बाबू गंगा नहायब,
सुरुज अरघ हम देब हे।
साँझ सबेरे बाबू गायत्री सुमिरब
तब होयब जतिया के जोग हे।
जाँघ भला जोड़िहैं भइया अमुक भइया,
जिन भइया दाहिन बाँह ॥ ३ ॥

(बलिया)

सभा में बैठे हुए हे बाबा (बाप का नाम) ! मेरा जनेऊ कर डालो। हे बाबा ! जनेऊ बिना कन्धा सुन्दर नहीं लगता और न मैं आप

की जाति-पाँति में बैठ सकता हूँ ॥ १ ॥

मेरे भाई (भाई का नाम), जो मेरी दाहिनी भुजा हैं, (भोजन के समय) जाँघ नहीं जोड़ते। जनेऊ बिना ब्रह्मचारी सुन्दर नहीं लगता, और न स्वजाति में बैठने योग्य होता है ॥ २ ॥

हे बाबू! नित्य उठकर गंगा नहाऊँगा, रोज़ सूर्य को अर्घ्य दूँगा और प्रातःकाल और संध्या को गायत्री का जप करूँगा, तब जाति के योग्य होऊँगा। तब भाई (नाम लेकर) जाँघ जोड़ेंगे, जो मेरी दाहिनी भुजा हैं ॥ ३ ॥

इस गीत में जनेऊ के लिये बालक की स्वाभाविक उत्सुकता प्रकट की गई है।

[२०]

नव दुआरिया नव खंभा गड़ावे रे।
ताही नीचे सुतहिं कवन बाबा सुख नींन री ॥१॥
आहो पैठि जगावइँ कवन देई।
सुनु पिया पंडित रे ॥ २ ॥
बरह बरिस के ललनवा,
बरुआ देइ घालहु रे ॥ ३ ॥
अरे धना सुलछनी बरुवा कुछु चाहेल रे।
अछत, चनन, मोतिया गँठ बन्हन रे ॥ ४ ॥
लाख टका, लाख धोती।
मोतिया गँठ बन्हन रे ॥ ५ ॥

पुत्र बारह वर्ष का हो गया है। माता अपने पति को जगाकर कह रही है कि जनेऊ कर दो। पति कह रहा है कि हे सुलक्षणा देवी, जनेऊ करने के लिये अच्छत, चंदन, मोती, लाख रुपये और लाख धोतियाँ गठबंधन के लिये चाहिये।

नहछू

नहछू विवाह के पहले और कहीं कहीं पीछे भी होता है। यहाँ एक गीत दिया जाता है, जिसमें इसका वर्णन कुछ विस्तार के साथ आ गया है।—

[१]

घर घर घुमहि नउनिया तौ गोतिनी बुलावै।
राम लछन के नहछु सभै कोई आयो ॥ १ ॥
पाँच पाट के जाजिम झारि बिछाओ।
जेकरे जहाँ मनु होय तहाँ ते बैठो ॥ २ ॥
केई दीना चुटकी मुँदरिया केई दीना रूप।
केई दीना रतन जड़ाऊ ता भरिगा है सूप ॥ ३ ॥
केकई ने चुटकी मुँदरिया कौशिल्या रानी रूप।
सुमित्रा रानी रतन जड़ाऊ तौ भरिगा है सूप ॥ ४ ॥
पातर पातर अँगुली तौ नाउनि गोरी।
करत राम जीव के नहछु तौ घूँघुट खोली ॥ ५ ॥
नौआजे झगरै नउनिया ने यह सब थोर।
राम लछन जी के नहछु लेबौं मैं घोड़ ॥ ६ ॥
जनि झगरौ नौआ रे जनि झगरौ यह सब थोर।
राम ब्याहि घर लौटें तौ देबौं मैं घोड़ ॥ ७ ॥

(रुद्रा)

नाइन घर घर घूम रही है, गोतिनों को बुला रही है, आज राम और लक्ष्मण का नहछू है, सब कोई आना ॥ १ ॥

पाँच पाट (सन) का जाजिम झाड़ कर बिछा दो। जिसका जहाँ मन हो वह वहाँ बैठे ॥ २ ॥

किसी ने अँगूठी दी, किसी ने रूपा (चाँदी) दिया, किसी ने जड़े हुये रत्न दिये और इस प्रकार सूप भर गया ॥ ३ ॥

कैकेई ने अँगूठी दी। कौशिल्या ने रूपा दिया। सुमित्रा रानी ने जड़े हुये रत्न दिये और इस प्रकार सूप भर गया ॥ ४ ॥

नाइन की उँगली पतली-पतली है और वह गौर वर्ण की है। घूँघट खोलकर वह रामचन्द्र का नहछू कर रही है ॥ ५ ॥

नाई, नाइन से झगड़ा कर रहा है कि यह सब थोड़ा है। राम-लछमण का नहछू है, मैं घोड़ा लूँगा ॥ ६ ॥

ऐ नाई! झगड़ा मत करो कि यह सब थोड़ा है। राम जब ब्याह करके वापस आयेंगे तो मैं घोड़ा दूँगी ॥ ७ ॥

इस गीत में दिखाया गया है कि जनेऊ के समय नहछू में प्रजा-गण अधिक से अधिक इनाम पाने के लिये झगड़ते हैं। उनके इस झगड़ने में भी आनन्द आता है। उन्हें निराश न कर भविष्य में फिर किसी उत्सव पर देने को कह कर राज़ी कर लिया जाता है।

विवाह के गीत

हिन्दुओं में विवाह एक धार्मिक प्रथा है। यह केवल वासना की तृप्ति के लिये नहीं किया जाता; बल्कि मनुष्य-धर्म का उचित रीति से पालन करना ही इसका एकमात्र उद्देश्य है। हिन्दुओं में विवाह-कर्म इतना पवित्र माना गया है कि एक बार केवल पाणि-ग्रहण कर लेने ही से स्त्री-पुरुष दोनों जीवन भर धर्म के बंधन में बँध जाते हैं। हिन्दुओं के इतिहास में कितने ही उदाहरण ऐसे हैं, जिनमें स्त्री ने पति को मन में वरण कर लिया था और उसने उसे पाणि-ग्रहण से अधिक महत्त्व दिया था। जैसा सावित्री, रुक्मिणी, और संयोगिता ने किया था। वैवाहिक पवित्रता की रक्षा के ऐसे उदाहरण संसार में दुर्लभ हैं।

मनुस्मृति में आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख है। जैसे—

चतुर्णामपि वर्णानां प्रेत्य चेह हिताहितान्।
अष्टाविमान्समासेन स्त्रीविवाहान्निबोधत ॥ १ ॥
ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥ २ ॥
आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम्।
आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः ॥ ३ ॥
यज्ञे तु वितते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते।
अलंकृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते ॥ ४ ॥
एकं गोमिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः।
कन्याप्रदानं विधिवदार्षो धर्मः स उच्यते ॥ ५ ॥
सहोभौ चरतां धर्ममिति वाचानुभाष्य च।
कन्या प्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिः स्मृतः ॥ ६ ॥

ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्वा कन्यायै चैव शक्तित.।
कन्याप्रदानं स्वाच्छन्द्यादासुरो धर्म उच्यते ॥ ७ ॥
इच्छयान्योन्यसंयोग कन्यायाश्च वरस्य च।
गान्धर्व. स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसभव· ॥ ८ ॥
हत्वा छित्वा च भित्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात्।
प्रसह्य कन्याहरण राक्षसो विधिरुच्यते ॥ ९ ॥
सुप्ता मत्ता प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति।
स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोऽधम. ॥१०॥

अर्थात्—लोक और परलोक मे चारों वर्णों के हित और अहित के साधक-रूप जो आठ प्रकार के विवाह हैं। उन्हें संक्षेप से कहता हूँ ॥१॥

१—ब्राह्म, २—दैव, ३—आर्ष, ४—प्राजापत्य, ५—आसुर, ६—गान्धर्व, ७—राक्षस, ८—पैशाच। पैशाच सब में अधम है ॥२॥

अच्छे शीलवान्, गुणवान् वर को स्वय बुलाकर उसे भूषण-वस्त्र से अलंकृत और पूजित करके कन्या देना ब्राह्म-विवाह है ॥३॥

यज्ञ में सम्यक् प्रकार से कर्म करते हुये ऋत्विज को अलङ्कारादि से पूजित कर कन्या देने को दैव-विवाह कहा है ॥४॥

वर से एक या दो जोड़े गाय, बैल धर्मार्थ लेकर विधिपूर्वक कन्या देने का नाम आर्ष-विवाह है ॥५॥

"तुम दोनों साथ मिलकर गृह-धर्म का पालन करो" वर से यह कह कर और पूजन करके जो कन्या-दान किया जाता है, वह प्राजापत्य-विवाह कहलाता है ॥६॥

कन्या के बाप या चाचा आदि को और कन्या को भी यथाशक्ति धन देकर स्वच्छन्दता-पूर्वक कन्या का ग्रहण करना आसुर-विवाह कहलाता है ॥७॥

कन्या और वर की इच्छा से उनका सयोग होना गान्धर्व-विवाह है।

यह काम-भोग की इच्छा से होता है और मैथुन के लिये है ॥८॥

मारकर, घायलकर, गृह आदि को तोड़कर, रोती-विलपती कन्या को जबरदस्ती हरण कर ले जाने का नाम राक्षस-विवाह है ॥९॥

नींद में सोई हुई या मदमाती, या पागल कन्या के साथ एकान्त में उपभोग करना अत्यन्त पाप-पूर्ण पैशाच-विवाह कहलाता है ॥१०॥

इनमें पहले के चार तो श्रेष्ठ और अन्त के चार निकृष्ट हैं। हिन्दुओं के इतिहास में निकृष्ट विवाहों के भी उदाहरण मिलते हैं। जैसे—

कन्या-विक्रय के रूप में आसुर-विवाह तो आज-कल बहुत होने लगा है।

शकुन्तला और दुष्यंत का गन्धर्व-विवाह लोक-प्रसिद्ध है।

भीष्म ने काशिराज की कन्या का हरण लड़-झगड़ कर ही किया था। आल्हा-ऊदल के ज़माने में इस प्रकार के राक्षस-विवाह तो क्षत्रियों में खूब होने लगे थे।

पुराणों में पैशाच-विवाह के भी उदाहरण मिलते हैं।

आजकल जो विवाह प्रचलित है, उसे ब्राह्म और दैव का मिश्रण ही कहना चाहिये। परन्तु उसमें भी बाहरी आडंबर इतना मिल गया है कि उसकी सच्ची व्याख्या करनी कठिन है।

विवाह में सप्तपदी, जिसे भाँवर घूमना या फेरे लेना भी कहते हैं, मुख्य है। सप्तपदी का अर्थ बड़ा ही महत्वपूर्ण है। यहाँ सप्तपदी के वाक्य उद्धृत किये जाते हैं—

१—इष एक पदी भव। सा मामनुव्रता भव।

वर कहता है—हे वधू! इच्छाशक्ति प्राप्त करने के लिये एक पग चल। मेरा व्रत पूर्ण करने में सहायता कर।

कन्या कहती है—मैं तुम्हारे प्रत्येक सत्य संकल्प में सहायता करूँगी।

२—ऊर्जे द्विपदी भव। सा मामनुव्रता भव।

तेज प्राप्त करने के लिये दूसरा पग चल। मेरा व्रत पूर्ण करने में सहायता कर।

३—रायस्पोषाय त्रिपदी भव। सा मामनुव्रता भव।

कल्याण की वृद्धि के लिये तीसरा पग चल। मेरा व्रत पूर्ण करने में सहायता कर।

४—मायोभव्याय चतुष्पदी भव। सा मामनुव्रता भव।

आनन्दमय होने के लिये चौथा पग चल। मेरा व्रत पूर्ण करने में सहायता कर।

५—प्रजाभ्य. पचपदी भव। सा मामनुव्रता भव।

प्रजा के लिये पाँचवाँ पग चल। मेरा व्रत पूर्ण करने में सहायता कर।

६—ऋतुभ्यः पट्पदी भव। सा मामनुव्रता भव।

नियम-पालन के लिये छठाँ पग चल। मेरा व्रत पूर्ण करने में सहायता कर।

७—सखा सप्तपदी भव। सा मामनुव्रता भव।

हम दोनों में परस्पर मैत्री रहे, इसके लिये सातवाँ पग चल। मेरा व्रत पूर्ण करने में सहायता कर।

कन्या वर के प्रत्येक आदेश के उत्तर में उसके सभी सत् संकल्पों में सहायता देने की प्रतिज्ञा करती है।

यही सात पदों की प्रतिज्ञा है जो हिन्दू स्त्री-पुरुष को जीवन भर के लिये धर्म में बाँध देती है। विवाह के इतने सुन्दर नियम संसार की शायद ही किसी अन्य जाति में प्रचलित हों।

आजकल के विवाहों में बहुत से नये रस्म-रिवाजों का मिश्रण हो गया है। जैसे, वर का जामा पहनना—यह मुसलमानों की नकल है।

जामा शब्द ही विदेशी है। तरह तरह के बाजे बजना—पूर्व काल में वीणा आदि सुमधुर बाजे ही बजते थे। मुसलमानी काल में ताशा और दफला आया। अँगरेजी राज में अब बैंड भी विवाह का एक अंग हो गया है। इस तरह हिन्दू-विवाह की विशुद्धता जाती रही।

विवाह के गीतों में एक प्रथा का और भी वर्णन मिलता है, जो आजकल योरप में प्रचलित है। वह है, वर का कन्या के कुटुम्बियों से विवाह का प्रस्ताव करना। हमारे पास कुछ गीत ऐसे हैं, जिनमें वर कन्या के आँगन में जाकर बैठा है और आने का कारण पूछे जाने पर उसने कहा है कि इस घर में एक कुमारी कन्या है, मैं उससे विवाह करना चाहता हूँ। इस प्रकार का एक गीत आगे दिया भी गया है। आजकल की प्रथा तो यह है कि कन्या का पिता वर की खोज करता है और योग्य वर मिलने पर वह कन्यादान करता है। वर के लिये कन्या के पिता की परेशानी का जैसा चित्र गीतों में खींचा गया है, वैसा शायद ही कोई महाकवि खींचने में समर्थ हो।

विवाह के गीतों में दो प्रकार के गीत हैं। एक तो कन्या के घर में गाये जाने वाले, दूसरे वर के घर में गाये जाने वाले। कन्या-पक्ष के गीत वर-पक्ष के गीतों से अधिक करुण और मधुर हैं। खास कर बेटी की विदा के गीत तो पत्थर को भी पिघला देने वाले हैं। वर-पक्ष के गीत ज्यादातर शोभा-सजावट और धूमधाम के होते हैं।

विवाह के गीतों मे सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण बात यह है कि उनमें ऐसे वर-कन्या के मनोभाव वर्णित हैं, जो अल्पवयस्क नहीं होते, बल्कि युवक और युवती होते हैं। कहीं-कहीं तो वर स्वयं कन्या खोजता फिरता है, और कहीं-कहीं कन्या स्वयं वर के लिये लालायित होती है। कहीं-कहीं कन्या स्वयं यह कहती हुई मिलती है कि 'हे पिता! मेरे लिये ऐसा वर खोजना।' अल्पवयस्का कन्या ऐसा नहीं कह सकती। इससे प्रकट होता

है कि ये गीत हिन्दू-समाज में बाल-विवाह प्रचलित होने से पहले के हैं। समाज बदल गया, पर गीत ज्यों के त्यों रहे। गीत स्त्री-धन है, इससे पुरुषों ने उसमें हाथ नहीं लगाया।

विवाह के गीतों में भाई-बहन के अकृत्रिम प्रेम-सम्बन्धी गीत भी बड़े मनोहर हैं। बहन अपने बेटे या बेटी के विवाह में अपने भाई और भौजाई को निमन्त्रित करती है। भाई न्योता लेकर आता है। इससे बहन का हृदय उमड़ आता है। इस प्रसंग के हृद्गत भावों का वर्णन गीतों में बड़ी ही सरसता से किया गया है।

विवाह के गीतों में खाने-पीने की चीज़ों की एक लम्बी सूची भी रहती है। विवाह के अवसर पर चाहे सभी चीज़ें न बनती हों, पर घर के जीमते समय व्यञ्जनों के नाम तो गिना ही दिये जाते हैं।

यहाँ विवाह के कुछ गीत दिये जाते हैं—

[१]

कौन की ऊँची अँटरिया सुरुज मुख छाई।
किन घर कन्या कुँवारी त दुलहो चाहिए ॥१॥
अजुल की ऊँची अँटरिया सुरुज मुख छाई।
बबुल घर कन्या कुँवारी त दुलहो चाहिए ॥२॥
कौन को पूत तपसिया आँगन मेरे तपु करै।
सजना को पूत तपसिया आँगन मेरे लघु करै ॥३॥
भीतर से निकसीं अजिया थार भर मोती लिहें।
भीतर से निकसीं मैया थार भर मोती लिहे ॥४॥
भीतर से निकसीं भौजिया थार भर मोती लिहें।
लेहु न पूत तपसिया आँगन मेरो छाँडौ ॥५॥
कहा करौं थार भर मोतिया आँगन नहिं छाँड़ौ।
तुम घर कन्या कुँवारी तु हमका ब्याहि देव ॥६॥

बाहर ते आये विरन भइया हाथ खड़ग लिहें।
मारौं मैं पूत तपसिया बहिन मोरी माँगै ॥७॥
भीतर से निकसीं लाड़ली मोतियन माँग भरे।
जिन मारौ पूत तपसिया जनम मेरो को खेइहैं ॥८॥

यह ऊँची अटारी किसकी है? जिसका द्वार पूर्व ओर है। किसके घर में क्वारी कन्या है? जिसे दूल्हा चाहिये ॥ १ ॥

यह ऊँची अटारी आजा (पितामह) की है, जो पूर्वाभिमुख छाई है। बाबा के घर में क्वारी कन्या है, जिसे वर चाहिये ॥ २ ॥

यह किसका तपस्वी पुत्र है? जो मेरे आँगन में तप कर रहा है। यह पुत्र सजन (समधी) का है, जो आँगन में तप कर रहा है ॥३॥

पितामही थाल भरकर मोती लिये भीतर से निकलीं। माता थाल भरकर मोती लिये भीतर से निकलीं। भावज थाल भरकर मोती लिये भीतर से निकलीं। सब ने कहा— हे तपस्वी पुत्र! यह मोती लो और मेरा आँगन छोड़ दो ॥ ४,५ ॥

मैं थाल भरकर मोती क्या करूँ? मैं आँगन नहीं छोड़ूँगा। तुम्हारे घर में क्वारी कन्या है, वह मुझे ब्याह दो ॥ ६ ॥

बाहर से भाई हाथ में तलवार लेकर आया। उसने कहा—मैं इस तपस्वी को मार डालूँगा, जो मेरी बहन माँग रहा है ॥ ७ ॥

भीतर से लाड में पली हुई कन्या निकली, जिसकी माँग मोतियों से भरी थी। उसने कहा—हे भाई! इस तपस्वी को मत मारो। इसे मार डालोगे तो मेरे जीवन की नैया खेकर पार कौन लगायेगा? ॥ ८ ॥

यह गीत उस समय का स्मरण दिला रहा है, जब वर और कन्या दोनों विवाह के लिये स्वतन्त्र थे। संसार-यात्रा सुख-पूर्वक और निर्विघ्न समाप्त करने के लिये दोनो अपनी-अपनी रुचि के अनुकूल साथी चुनते थे। इस गीत में वर स्वयं कन्या की खोज में निकला है और एक ऐसे

घर के आँगन में आ बैठा है, जिसमें एक क्वारी कन्या रहती है। जान पड़ता है, कन्या की स्वीकृति वह पहले ले चुका था, जैसा कि कन्या ने उस समय, जब कन्या का भाई वर को मारने चला है, आगे बढ़कर कहा है कि तुम इसको मारोगे तो मेरा जीवन खेकर कौन पार लगायेगा? अब कन्या के माता-पिता की स्वीकृति अंतिम थी, जिसके लिये वर आया है। यह प्रथा भारत देश में नहीं है। योरप में है। वहाँ कन्या की स्वीकृति लेकर वर उसके माता-पिता से विवाह का प्रस्ताव करता है। जब वे स्वीकार कर लेते हैं, तब विवाह होता है।

गीत में जिस प्रथा का चित्र है, वह हिन्दू-सभ्यता में एक नई वस्तु है। क्योंकि हिन्दुओं के इतिहास और काव्यों में जैसा वर्णन मिलता है, उसके अनुसार कन्या ही पहले वर पर आसक्त होती है। जैसे सावित्री सत्यवान् पर, सीता राम पर, रुक्मिणी श्रीकृष्ण पर और संयोगिता पृथ्वीराज पर पहले आसक्त हुई थीं। यही यहाँ का आदर्श है, और संस्कृत के कवि सदा इसी आदर्श को महत्त्व देते रहे हैं। गीत में इसके विपरीत जिस प्रथा का वर्णन है, वह प्रथा भी कभी हिन्दुओं में रही होगी, जो अब बिलकुल उठ गई है।

उस प्रथा का वर्णन इस गीत की प्राचीनता का सब से प्रबल प्रमाण है।

इस गीत से यह भी स्पष्ट होता है कि विवाह कम से कम उस उम्र में होता था, जब कन्या यह कह सकती थी कि "जनम मेरो को खेइहैं" मेरा जन्म कौन खेयेगा? जिस अवस्था में कन्या के हृदय में अपने भावी जीवन की चिंता उत्पन्न हो जाती है और वह अनुभव करने लगती है कि मुझे एक ऐसे योग्य साथी की आवश्यकता है जिसके साथ मैं अपना जीवन सुख-पूर्वक बिता सकूँ, उस अवस्था में यह विवाह हुआ था, जिसका वर्णन इस गीत में है।

हमे इस गीत से और भी कई बातों का पता चलता है। जैसे, घर का द्वार पूर्व ओर होना चाहिये। देहात के लोग प्राय पूर्व ओर द्वार रखना बहुत पसन्द करते हैं और शुभ समझते है। दूसरे तलवार का उपयोग आज जिस तरह लाठी घर-घर मे है, उसी तरह पूर्वकाल मे प्रत्येक पुरुष के पास होती थी।

भाई तलवार लेकर मारने क्यों दौड़ा? क्योंकि वह अभी नादान था। बहन के मनोभाव को समझ नहीं सकता था। वह तो केवल इस लिये दुखी था कि उसकी बहन को कोई उससे छीन ले जायगा। प्रकृति कन्या को उसके भाई की पहुच से बहुत दूर निकाल लाई है। अबोध भाई का यह क्रोध कितना करुणाजनक है!

[२]

सावन सुगना मैं गुर घिउ पाल्यों चैत चना कै दालि।
अब सुगना तू भयउ सजुगवा बेटी क बर हेरइ जाव ॥ १ ॥
उड़त उड़त तू जायो रे सुगना बैठेउ डरिया ओनाय।
डरिया ओनाय बैठा पखना फुलायउ चितया नजरिया घुमाय ॥२॥
जे बर सुगना तु देखउ सुन्दर जेकरि चाल गम्हीर।
जेहि घरा सुगना तु सम्पति देख्यो वोह घर रचेउ बिआह ॥३॥
हेरेउँ बर मैं सजुग सुलच्छन भहर भहर मुँह जोति।
साठि बरद मैं चन्नि में देखेउँ वोही घर रचहु बिआह ॥४॥

हे सुआ! तुम को मैंने सावन में गुड़, घी और चैत में चने की दाल खिला कर पाला। अब तुम समझदार हुये। जाओ बेटी के लिये वर ढूँढ आओ ॥ १ ॥

हे सुआ! तुम उड़ते उड़ते जाना और पेड़ की डाल झुकाकर बैठना। डाल झुकाकर बैठना, पंख फुलाना और इधर-उधर दृष्टि दौड़ा-कर देखना ॥ २ ॥

हे सुआ! जिस वर को तुम सुन्दर देखना, जिसकी चाल में गभीरता देखना और जिस घर में धन देखना वहीं विवाह ठीक करना ॥ ३ ॥

सुआ कहता है—मैंने अच्छे लक्षणोंवाला और चैतन्य वर ढूँढ लिया है। जिसके मुँह पर ब्रह्मचर्य की आभा दमक रही है। उसके घर में साठ बैल मैंने चन्नि या चरनी (बैल जहाँ पर बाँधकर खिलाये जाते हैं) में देखे। उस घर में विवाह करो ॥ ४ ॥

इस गीत से कई बातों का पता चलता है। पहले तो यह कि देहात के लोग किस ऋतु में तोते को क्या-क्या खिलाते हैं। दूसरे विवाह-योग्य वर और घर की व्याख्या। इस व्याख्या में वर की गभीर चाल और उसके मुँह की ज्योति विशेष ध्यान देने योग्य हैं। गभीर चाल से वर के विचारवान् होने का और मुँह की ज्योति से उसकी युवावस्था का और विशुद्ध ब्रह्मचर्य का पता चलता है। वर में ये दो विशेषतायें काफी हैं। और घर में ३० हल चलते हैं। इससे जान पड़ता है कि वह अच्छा किसान है।

[३]

बाबा जे चलेन मोर बर हेरेन पाट पितम्बर डारि।
छोटे देखि बाबा करबै न करिहैं बड़ा नाहीं नजरि समाय ॥ १ ॥
अरे अरे बाबा सुघर वर हेरेव हम बेटी तोहरी दुलारि।
तीनि लोक मा हम बड़ि सुन्दरि हँसी न करायउ मोरि ॥ २ ॥
उसरा माँ गोड़ि गोड़ि ककरी बोवायों ना जानौं तीत न मीठ।
देसवा निकरि बेटी तोर बर हेरौं ना जानौं करम तोहार ॥ ३ ॥
पूरब हेरेउँ पछुवाँ मैं हेरेउँ हेरेउँ मैं दिल्ली गुजरात।
तुमहिं जोग वर कतहुँ न पावा अब बेटी रहहु कुँवारि ॥ ४ ॥
पूरब हेरेव पछुवाँ में हेरेव हेरेव दिल्ली गुजरात।
चारि परग भुइयाँ नगर अयोध्या दुइ वर अहैं कुँवार ॥ ५ ॥

वै वर मांगैं बेटी घोडा औ हाथी मागैं मोहर पचास।
वै वर मांगैं बेटी नौलख दायज मोरे बूते देइ न जाइ॥ ६॥
जेकरे न होय बाबा हाथी औ घोड़ा नहिं होय मोहर पचास।
जेकरे न होय बाबा नौ लख रूपैया ते वर हेरै हरवाह॥ ७॥
हर जोंति आवै कुदार गोड़ि आवै बइठै मुंह लटकाय।
उनही क तिलक चढ़ाया मोरे बाबा वै वर दयजा न लेयँ॥ ८॥
आसन देखि बाबा डासन दीहौ मुख देखि दीहौ बीरा पान।
अपनी संपति देखि दाइज दीहौ वर देखि दिहौ कन्या दान॥ ६॥

रेशमी पीताम्बर ओढ़कर बाबा मेरे लिये वर खोजने चले हैं। छोटे वर से तो वे मेरा विवाह करेंगे ही नहीं। बड़ा उनकी आँख में समायगा ही नहीं॥१॥

हे बाबा! सुघर वर ढूँढ़ना। मैं तुम्हारी दुलारी बेटी हूँ। मैं तीनों लोकों में सबसे अधिक सुन्दरी हूँ। देखना, मेरी हँसी न कराना॥२॥

बाबा ने कहा—ऊसर को गोड़-गोड़कर मैंने ककड़ी बोआई है। पर मालूम नहीं ककड़ियाँ तीती होंगी या मीठी? इसी तरह हे बेटी! मैं देश-विदेश जाकर तुम्हारे लिये वर ढूँढ़ता हूँ। पता नहीं, तुम्हारे भाग्य में क्या बदा है? वर अच्छा मिलता है या अयोग्य॥३॥

बाबा ने कहा—मैंने पूरब ढूँढ़ा, पश्चिम ढूँढ़ा, दिल्ली और गुजरात भी ढूँढ़ लिया। पर हे बेटी! तुम्हारे अनुरूप कहीं वर नहीं पाया। अब तुम कुमारी रहो॥४॥

बेटी ने कहा—हे पिता! तुमने पूरब भी ढूँढ़ डाला, पश्चिम भी ढूँढ़ डाला, दिल्ली और गुजरात भी ढूँढ़ लिया। पर चार ही क़दम पर अयोध्या नगरी है, जहाँ दो वर क्वांरे हैं॥५॥

बाबा ने कहा—हे बेटी! वे वर घोड़ा-हाथी और पचास मोहरें

तथा नौ लाख का दहेज माँगते हैं। मेरी हिम्मत तो इतना देने की नहीं है ॥६॥

बेटी ने हँसी किया—हे पिता! जिसके हाथी-घोड़ा न हो, पचास मोहरें न हों और जो नौ लाख का दहेज न दे सके, वह हल जोतने वाला वर ढूँढ़े ॥७॥

जो हल जोतकर आवे, कुदार से खेत गोड़कर आवे तो मुँह लटकाकर बैठे। हे बाबा! उन्हीं को तिलक चढ़ाना। वे वर दहेज नहीं लेते ॥८॥

जैसे आसन हो, वैसा डासन (बिछौना) देना। मुँह देखकर पान का बीड़ा देना। अपना धन देखकर दहेज देना। और वर देखकर कन्यादान देना ॥९॥

इस गीत की कन्या इतनी सयानी हो चुकी है कि अपने बाबा के मन की पसन्द का उसे पता है। साथ ही कन्या को यह भी पता है कि योग्य वर कहाँ-कहाँ हैं? वह अपने बाबा से कहती भी है कि तुम सब जगह तो दौड़ आये, पर वहाँ नहीं गये। वह इतनी समझदार भी हो चुकी है कि किसान के जीवन की आलोचना कर सकती है। जैसा उसने हलवाहे का मज़ाक उड़ाया है। खासकर मुँह लटकाकर बैठने वाली बात तो बड़ी ही विनोद-पूर्ण है।

[४]

पहिलै मँगन सीता मांगैली से हो विधि पुरवहु हो।
ललना मांगैली जनकपुर नैहर अवधपुर सासुर हो॥१॥
दुसर मँगन सीता मागैली से हो विधि पुरवहु हो।
ललना मागैली कौसिल्या ऐसन सासु ससुर राजा दसरथ हो॥२॥
तिसर मँगन सीता मांगैली से हो विधि पुरवहु हो।
ललना मांगैली पुरुष रामचंद्र देवर बबुआ लछिमन हो॥३॥

चौथा मँगन सीता मांगैली उहो विधि पुर वैलैं हो।
ललना लव कुश ऐसन मागैं पूत जनम अहिवाती हो ॥४॥

सीता ने पहला माँगन यह माँगा, जिसे ब्रह्मा पूरा करें, कि जनकपुर नैहर और अवधपुर ससुराल हो ॥१॥

सीता ने दूसरा माँगन यह माँगा, जिसे ब्रह्मा पूरा करें, कि कौशिल्या ऐसी सास और राजा दशरथ ऐसे ससुर मिलें ॥२॥

तीसरा माँगन सीता ने यह माँगा, जिसे ब्रह्मा पूरा करें, कि पति भगवान् रामचन्द्रजी हों और देवर लक्ष्मण ॥३॥

चौथा माँगन सीता ने यह माँगा, जिसे ब्रह्मा पूरा करें कि लव, कुश ऐसे पुत्र हों और मैं जन्म भर सौभाग्यवती रहूँ ॥४॥

प्रत्येक हिन्दू-परिवार में दशरथ, कौशिल्या, राम, सीता, लक्ष्मण और भरत आदर्श-रूप होते हैं। हिन्दुओं ने अपने आदर्श को प्रत्येक घर में प्रतिबिम्बित कर रक्खा है।

[५]

कौन गरहनवाँ वावा साँझे जे लागै कौन गरहन भिनुसार।
कौन गरहनवाँ वावा औघट लागै कव धौं उगरह होइ ॥१॥
चन्द्र गरहनवा वेटी साझे जे लागै सुरुज गरहनवा भिनुसार।
धेरिया गरहनवा वेटी औघट लागै कव धौं उगरह होइ ॥२॥
कॉपइ हाथी रे कॉपइ घोड़ा कॉपइ नगरा के लोग।
हाथ में कुस लिहे कॉपइँ वावा कव धौं उगरह होइ ॥३॥
रहँसइँ हाथी रे रहँसइँ घोड़ा रहँसइँ सकल वरात।
मड़ये मुदित मन समधी रे विहँसइ भले घर भयहु विआह ॥४॥
गंगा पैठि वावा सुरुज से विनवइँ मोरे वूते धेरिया जिनि होइ।
धेरिया जनम तव दीहा विधाता जव घर सम्पति होइ ॥५॥

कन्या पूछती है—हे पिता! कौन ग्रहण रात में लगता है?

कौन दिन में ? और कौन ग्रहण बेवक्त लगता है ? और कब छूटता है ? ॥१॥

पिता कहता है—हे बेटी ? चन्द्र ग्रहण रात में लगता है और सूर्य-ग्रहण दिन में। कन्या-ग्रहण का कोई ठिकाना नहीं कि कब लगे और कब छूटे ॥२॥

हाथी काँप रहे हैं, घोड़े काँप रहे हैं, नगर के लोग काँप रहे हैं, हाथ में कुश लिये बाबा काँप रहे हैं। न जाने कब छुट्टी मिलेगी ॥३॥

हाथी प्रसन्न हैं, घोड़े प्रसन्न हैं, सारी बारात प्रसन्न है। माँड़ों के नीचे बैठा हुआ समधी (वर का बाप) प्रसन्न है कि अच्छे गृहस्थ के यहाँ मेरे पुत्र का विवाह हुआ है ॥४॥

पिता गंगाजी में खड़े होकर सूर्य से विनय करते हैं—हे सूर्य ! मेरे बल पर कन्या न देना। कन्या का जन्म तभी हो, जब घर में सम्पत्ति हो ॥५॥

गीत के अन्त में कन्या के पिता ने कैसी मार्मिक बात कही है। जब वर और कन्या अपनी पसंद के अनुसार विवाह कर लेते थे, तब उनके पिताओं पर इतना भार नहीं पड़ता था। पर जब से पिताओं ने यह जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली है, तब से उनकी चिन्ता बढ़ गई है। और आजकल तो कन्या के पिता को इतना कष्ट, इतना अपमान सहना पड़ता है कि कन्या का पिता होना पूर्वजन्म के किसी अपराध का फल ही समझना चाहिये।

[६]

देउ न मोरी माई बासे क डेलैया फुलवा लोढ़न हम जाय।
फुलवा लोढ़त भइली खड़ी दुपहरिया हरवा गछत
भइली साँझ रे ॥ १ ॥

घुमरि घुमरि सीता फुलवा चढ़ावैं शिव बाबा देलेन असीस।
जौन मॉगन तुहुँ मांगौ सीतल देई उहै मॉगन हम देब ॥ २ ॥
अन धन चाहै जो दिहा शिव बाबा स्वामी दिहा सिरी राम।
पार लगावैं जे मोरि नवरिया जेहि देखे हिअरा जुड़ाइ ॥ ३ ॥

हे मेरी माँ! बाँस की डलिया मुझे दो। मैं फूल लोढ़ने (चुनने, तोड़ने) जाऊँगी। फूल लोढ़ने में दुपहरी हो गई और हार गाँछने (बनाने) में शाम हो गई ॥१॥

घूम-घूम कर सीता फूल चढ़ा रही हैं। शिव बाबा ने प्रसन्न होकर कहा—हे सीता देवी! जो तुम माँगो, मैं वही दूँगा ॥२॥

सीता ने कहा—हे शिव बाबा! अन्न और धन तो चाहे तुम जितना देना, पर स्वामी श्रीरामचन्द्र देना। जो मेरी नाव को खेकर पार लगावें और जिन्हें देखकर हृदय शीतल हो जाय ॥३॥

सच है, स्त्री को तो केवल एक योग्य स्वामी चाहिये, जो उसकी नाव को खेकर पार लगा दे।

[७]

पुरुब पछिम मोरे बाबा क सगरवा पुरइनि हालर देइ।
तेहि घाटे दुलहे धोतिया पखारैं पूछैं दुलहिन देई बात ॥ १ ॥
केकर अहे तु नतिया रे पुतवा कौने बहिनिया क भाय।
कौने बनिजिया चले वर सुन्दर केकरे सगरे नहाउ ॥ २ ॥
अजवा कौन सिंह क नतिया रे पुतवा कौन कुँवरि कर भाइ।
सेन्दुर बनिजिया चले हम सुन्दरि ससुर के सगरे नहाउँ ॥ ३ ॥
येतनी वचन सुनि दुलही कौन कुँवरि धाय माया लगे जायँ।
जेवर मोरे माया नगरा ढुँढ़ाये से वर सगरे नहायँ ॥ ४ ॥
राम रसोइयाँ भौजी कौन कुँवरि धाय भौज लग जाय।
जे वर भौजी नगरा ढुँढ़ाये से वर सगरे नहायँ ॥ ५ ॥

आवहु ननदोइया पलँग चढ़ि बैठहु कुँचहु मोहोबे के पान।
अपने कमिनिया क डँडिया फँदावहु लै जाउ बैरिनि हमारि ॥ ६ ॥
की भौजी तोर नोनवा चुरायउँ की तेल दिहौं ढरकाय।
की भौजी तोर भइया गरिआयउँ कौने गुन बैरिनि तोहारि ॥ ७ ॥
ना ननदी मोर नोनवा चुरायउ न तेलवा दिह्यो ढरकाय।
ना ननदी मोर भइया गरिआयउ बोली गुन बैरिनि हमारि ॥ ८ ॥

पूरब से पच्छिम तक खूब लम्बा चौड़ा मेरे बाबा का तालाब है। जिसमें पुरइन (कमल का पत्ता) लहरा रहे हैं। उसी तालाब के घाट पर दुलहा धोती पछार रहा है। उससे दुलहिन बात पूछती है ॥१॥

तुम किसके नाती और किसके पुत्र हो ? तुम किस बहन के भाई हो ? हे सुन्दर वर ! किस चीज़ का व्यापार करने के लिये तुम निकले हो ? और किसके तालाब में नहा रहे हो ? ॥२॥

वर कहता है—अमुक सिंह मेरे पितामह हैं और अमुक देवी का मैं भाई हूँ। हे सुन्दरी ! सिन्दूर का व्यापार करने के लिये हम निकले हैं और अपने ससुर के तालाब में नहा रहे हैं ॥३॥

यह बात सुनते ही कन्या अपनी माँ के पास दौड़कर गई और कहने लगी—माँ, जिस वर के लिये सारे शहर ढूँढ़ डाले गये, वह वर तो तालाब पर नहा रहा है ॥४॥

कन्या की भौजाई रसोई में थी। वह उसके पास जाकर बोली—भौजी ! जिस वर के लिये सारे शहर ढूँढ़ डाले गये, वह वर तो तालाब पर नहा रहा है ॥५॥

भौजाई ने कहा—आओजी ननदोई जी ! पलँग पर बैठो और महोबे का पान कूँचो। अपनी कामिनी के लिये पालकी सजाओ और मेरी इस बैरिन को ले जाओ ॥६॥

ननद ने कहा—हे भौजी ! तुम मुझे बैरिन क्यों कहती हो ? क्या

मैंने तुम्हारा नमक चुराया था ? या तेल गिरा दिया था ? या तुम्हारे भाई को गाली दी थी ? ॥७॥

भौजाई ने कहा—हे ननद ! न तुमने मेरा नमक चुराया, न तेल ढुलकाया और न मेरे भाई ही को गाली दी। केवल बोली के कारण से तुम मेरी वैरिन हो ॥८॥

इस गीत से यह बात मालुम होती है कि कन्या अवस्था में इतनी बड़ी हो चुकी थी कि वह अपने भावी पति के रूप और गुण की प्रशंसा सुनकर उस पर हृदय से आसक्त हो चुकी थी। उधर वर भी कन्या की खोज में चला हुआ जान पड़ता है। पहले से उसे कन्या और उसके पिता आदि का हाल ज्ञात न होता तो वह कैसे कहता कि 'ससुर के सगरे नहाऊँ'। मालूम होता है, वह कन्या को एक बार अपनी आँखों से देखने आया था।

दूसरी बात इस गीत में यह है कि भौजाई ने ननद को अपनी वैरिन बताया है। कारण पूछने पर उसने ननद को बताया है कि तुम बहुत कटुवचन बोलती हो। ननद भौजाई में प्रायः झगड़े हुआ करते हैं और इसमें प्रधान कारण कटुवचन ही होता है।

[८]

पिया अपने को प्यारी, पिया अपने को प्यारी,
सो अपने पिया पै सिंगार करो ॥ १ ॥
पहिरो धर्म की जेहरि, पहिरो धर्म की जेहरि,
सो भजन की दुन्दुभि बाजि रही ॥ २ ॥
ओढ़ो चुप्प चुनरिया, ओढ़ो चुप्प चुनरिया,
सो ज्ञान को घाँघरो घूम रह्यो ॥ ३ ॥
पहिरो अकिल की अँगिया, पहिरो अकिल की अँगिया,
सो श्रुति स्मृति दोऊ बंद लगे ॥ ४ ॥

पहिरो हरी पीरी चुरियाँ, पहिरो हरी पीरी चुरियाँ,
सो बीच बँगलियाँ अजब बनी ॥ ५
पहिरो दसहु मुँदरिया, पहिरो दसहु मुँदरिया,
सो पोरन पोरन पहिर लई ॥ ६
पहिरो शील को सूता, पहिरो शील को सूता,
सो दया की हमेल गले में डरी ॥ ७
पहिरो नेह नथुनिया, पहिरो नेह नथुनिया,
सो प्रेम को लटकन झूम रहो ॥ ८
करो मान को काजर, करो मान को काजर,
सो बिरह की बेंदी लिलार दई ॥ ९
पाँचो तत्व को तेलवा, पाँचो तत्व को तेलवा,
सो सुमति की डोरी से चोटी गुही ॥ १०
इतनो धन पहिरो, इतनो धन पहिरो,
तब रूठे पिया को मनावै चलो ॥ ११
साईं मो तन हेरो, साईं मो तन हेरो,
सो उठ के कबीरा गुरु बाँह गही ॥ १

हे अपने प्रियतम की प्यारी स्त्री! अपने प्रियतम के लिये शृङ्गार करो।

पतिव्रत-धर्म की माला पहनकर, भजन का नगाड़ा बजाकर, की चुनरी, ज्ञान का घाँघरा, बुद्धि की अंगिया—जिसमें श्रुति और दो बंद लगे हैं, हरी पीली चूड़ियां, दसो उँगलियों में अंगूठियाँ, के सूत में दया की हमेल, स्नेह की नथनी, प्रेम का लटकन, मा काजल, विरह की बेंदी पहनकर, पाँचों तत्वों का तेल लगा कर, सु की डोरी से चोटी गूँथकर हे स्त्री! अपने प्रियतम को मनाने चल

इस गीत का अभिप्राय यह है कि धातु के गहनों से शरीर

शोभा नहीं बढ़ सकती और न उसे देखकर पति ही प्रसन्न हो सकता है। बल्कि गुणों के गहनों ही से स्त्री की शोभा बढ़ती है। गुणवती स्त्री ही पति को प्यारी हो सकती है। इस गीत का आध्यात्मिक अर्थ भी है, जो जीव को स्त्री और ब्रह्म को पति मानकर किया जाता है।

[६]

सासु तो चली हैं निहारन झीने झीने कापड़।
केकरे मैं आरती उतारौ कवने वर सुन्दर ॥१॥
ओढ़े हैं पीत पितम्बर और बघम्बर।
सिर की मउरिया लपकत आवइ, इन्हई के आरती
उतारौ यही वर सुन्दर ॥२॥
सासु तौ आरती उतारिन बिनती बहुत करैं।
अबै मोर धिया लरिका अजान कुछौ नाहिं जानै ॥३॥
तोरि धिया लरिका अजान कुछौ नाहिं जानै।
हमहूँ कमल कर फूल दुहूँ जन बिहँसब ॥४॥

बारीक कपड़े पहनकर सास देखने चली है। वह सुन्दर वर कौन है? मैं किसकी आरती उतारूँ? ॥ १ ॥

जो पीताम्बर और बाघम्बर ओढ़े हैं, जिनके सिर पर मौर चमक रहा है, ये ही सुन्दर वर हैं। इनकी आरती उतारो ॥ २ ॥

सास ने आरती उतारी और बड़ी बिनती की कि अभी मेरी कन्या बहुत नादान है, कुछ नहीं जानती ॥ ३ ॥

पति ने कहा—तुम्हारी कन्या नादान है और कुछ नहीं जानती तो क्या हुआ? मैं भी तो कमल के फूल सा हूं। दोनों जन प्रसन्न होंगे ॥ ४ ॥

[१०]

राजा जनक अइलें नहाई के मनहिं उदासल।
कवन चरित्र आज भइलें धनुष तर लीपल ॥१॥
हम नहिं जानीला ए हरि पुछि ल सीताजी से।
सीता के सखिआ बहुती जनकजी के आँगन ॥२॥
जनक सीता बलावेलें जान्ह बैठावेले।
बेटी कवने हाथ धनुष उठाव कवन हाथे लीपेलु ॥३॥
बाँयें हाथे धनुषा उठाइ दहिने हाथ लिपीला।
इहे चरित्र आज भइले धनुष तर लीपल ॥४॥
जनक मन पछितालनी मन मे दुखित भये।
अब सीता रहेले कुँवारी जनम कैसे बीती ॥५॥
काहे के बाबा पछिताला त मन में दुखित होला।
अब हम पुजबों भवानी त राम बर पाइब ॥६॥
कंचन थाली गढ़ावेलों आरती साजेलीं।
चलौ न सखि फुलवारी त पूजें भवानी ॥७॥
घुमरि घुमरि सीता पूजेलीं पूजेलीं भवानी।
परसन होई न भवानी त पुरव मनोरथ ॥८॥
देवि जे हँसली ठठाई के बडे परसन से।
पुजिहें मने क मनोरथ राम बर पावेलु ॥९॥

जनक स्नान करके उदास मन से घर आये। पूछने लगे कि आज यह क्या अद्‌भुत काम हुआ कि धनुष के नीचे लीपा हुआ है ॥ १ ॥

जनक की रानी ने कहा—हे नाथ! मैं नहीं जानती। देखिये, सीता से पूछती हूँ। जनक जी के घर में सीता को बहुत सी सखियाँ हैं ॥ २ ॥

जनक ने सीता को बुलाया, प्यार से जाँघ पर बैठाकर पूछा—बेटी! किस हाथ से धनुष उठाया और किस हाथ से लीपा?

सीता ने कहा—बायें हाथ से धनुष उठाकर दाहिने से लीपा है। आज धनुष के नीचे लीपा है। यही बात है ॥ ४ ॥

जनक मन ही मन पछताने लगे कि अब सीता कुँवारी रहेगी। इसका जन्म कैसे बीतेगा ? ॥ ५ ॥

सीता ने कहा—पिता ! पछताते क्यों हो ? दु:खित क्यों होते हो ? अब मैं देवी की पूजा करूँगी और राम को वरूँगी ॥ ६ ॥

सीता ने सोने की थाली बनवाई, आरती सजाया और सखियों से कहा—सखियो ! फुलवारी में चलो, देवी की पूजा करें ॥ ७ ॥

सीता घूम-घूम कर, बार-बार देवी की पूजा करती है और प्रार्थना करती हैं—हे देवी ! प्रसन्न हो, मनोरथ पूर्ण करो ॥ ८ ॥

देवी बहुत प्रसन्न होकर, ठठाकर हँसी और बोलीं—बेटी ! तुम्हारे मन का मनोरथ पूर्ण होगा और तुम को राम वर मिलेंगे ॥ ९ ॥

हिन्दू-स्त्रियों में सीता के विवाह के लिये जनक के चिन्तित होने की कथा इसी तरह प्रचलित है। इससे प्रकट होता है कि सीता जब इस अवस्था को पहुँची कि बायें हाथ से धनुष उठा सकीं, तब जनक को उनके विवाह की चिन्ता हुई। आश्चर्य है कि ऐसे गीत गा-गाकर भी स्त्रियाँ नन्हीं-नन्ही बच्चियों का विवाह पसंद करती हैं।

[११]

सात सखी सीता चढ़ि गईं अटरिया इन्द्र झरोखे लाग।
कौन दुल्हा कौन दुल्हे क बाबा कौन दुलहे जेठ भाय ॥१॥
माती हथिनिया रे घुमरत आवै घुमरि-घुमरि डारै पाँव।
सोने कै मटुकवा बिराजत आवै वै दुलहे कर बाप ॥२॥
नदिया के ईरे तीरे घोड़ा दौड़ावैं मोछिया भँवर मननाय।
हाथे सुवरना गरे मोती माला वै दुलहे जेठ भाय ॥३॥

चन्नना कै डँड़िया चमाकत आवै जूमत चारिउ कहाँर।
पीत पितम्बर झलाकत आवैं ओई अहैं दुलरू दमाद ॥४॥

सात सखियों के साथ सीता अटारी पर चढ़ गईं। अटारी इतनी ऊँची थी कि उसके झरोखे से इन्द्र झांक सकता था। सीता पूछती हैं— कौन वर है? कौन वर का पिता है? और कौन वर का जेठा भाई है? ॥ १ ॥

सखियाँ कहती हैं—मतवाली हथिनी झूमती आती है, और घूम-घूम कर पाँव रखती है। उस हथिनी पर वर का बाप है, जिस के सिर पर सोने का मुकुट शोभायमान है ॥ २ ॥

जो नदी के किनारे-किनारे घोड़ा दौड़ा रहा है, जिसकी मोंछ भौंरे के समान काली है, और जिसके हाथ में सोने का कड़ा और गले में मोती की माला है, वह वर का जेठा भाई है ॥ ३ ॥

चन्दन की पालकी चमकती हुई आ रही है। उसको उठाये हुए चार कहार झूमते हुये आ रहे हैं। जिसका पीला रेशमी वस्त्र झलक रहा है, वही प्यारे दामाद हैं ॥ ४ ॥

[१२]

नीले नीले घोड़वा छैल असवरवा कुरुखेते हनइ निसान।
खिरकी उघेरि के अम्माँ जौ देखैं धिया दस आउरि होईं ॥१॥
होइगा वियाह परा सिर सेंदुर नौ लख दाइज थोर।
भितराँ कइ भाँड़ वाहर दइ मारीं सतरू के धिया जिनि होइ ॥२॥

नीले घोड़े पर जो छैल सवार है, वह ऐसा वीर है कि कुरुक्षेत्र (रणभूमि) में विजय का झंडा खड़ा करता है, या रण भूमि में शत्रु का झंडा तोड़ डालता है। उसे जब खिड़की खोलकर माँ देखती है, तब उसका जी हुलसता है और वह चाहती है कि दश कन्यायें और होतीं तो ठीक था। ॥ १ ॥

पर जब ब्याह हो गया, माँग में सिंदूर पड़ गया और नौ लाख का दहेज भी थोड़ा समझा गया, तब माँ ने भीतर का बरतन-भाँडा बाहर पटक दिया और कहा—शत्रु को भी कन्या न हो ॥ २ ॥

इन चार पंक्तियों में कन्या के विवाह का वर्तमान चित्र बहुत अच्छी तरह खींचा गया है। तरुण और रणबाँकुरा दामाद देखकर कन्या की माँ का हृदय आनंद से उमड़ आता है, यह स्वाभाविक ही है। पर दहेज की कुप्रथा से जो कष्ट कन्या के माँ-बाप को उठाना पड़ता है, और उसमे जो विक्षोभ पैदा होता है, उसका बहुत ही तथ्य-वर्णन गीत की चौथी पंक्ति में आ गया है।

गीत से यह भी मालूम होता है कि जिस समय का यह गीत है, उस समय बाल-विवाह नहीं होता था। ७, ८ वर्ष का बालक न छैल ही हो सकता है, न घोड़े की सवारी ही कर सकता है, और न कुरुक्षेत्र मे झंडा ही गाड़ सकता है।

[१३]

घोड़े चढ़ु दुलहा तू घोड़े चढ़ु यहि रन वन मे।
दुलहा बाधि लेहु ढाल तरुवारि त यहि रन वन में ॥ १ ॥
पहिनौ पियरी पीतामर यहि रन वन मे।
दुलहा बांधि लेहु लटपट पाग त यहि रन वन मे ॥ २ ॥
कैसे के बाँधौ पाग त यहि रन वन मे।
दुलहिनि मरम न जान्यौं तोहार त यहि रन वन मे ॥ ३ ॥
जतिया तो हमरी पंडित कै यहि रन वन मे।
दुलहा मुगुल के डरिया लुकानि त यहि रन वन मे ॥ ४ ॥
मारि डारेन भाई औ बाप त यहि रन वन मे।
दुलहा मुगुल के डरिया लुकानि त यहि रन वन मे ॥ ५ ॥

यतनी वचनिया के सुनतइ यहि रन वन मे।
दुलहा घोडे पीठि लिहेनि बैठाय त यहि रन वन मे ॥ ६ ॥
यक वन गैलैं दुसर बन यहि रन वन मे।
दुलहा तिसरे मे लागी पियास त यहि रन बन में ॥ ७ ॥
अरे अरे जनम सँघाती त यहि रन वन मे।
दुलहा बुँद यक पनिया पियाव त यहि रन वन में ॥ ८ ॥
ताल औ कुँइयाँ सुखानी त यहि रन वन मे।
पनिया रकत के भाव बिकाय त यहि रन वन मे ॥ ६ ॥
उँचवै चढि के निहारेनि यहि रन बन मे।
दुलहिनि झरना बहै जुड़ पानि त यहि रन बन मे ॥१०॥
दुलहिनि झरना बहै जुड पानि त यहि रन बन में।
दुलहिनि ठाड़े हैं मुगुल पचास त यहि रन वन में ॥११॥
अरे अरे जनम सँघाती त यहि रन बन में।
दुलहा बुँद एक पनिया पिआउ त यहि रन बन में।
दुलहा मोरी तोरी छूटै सनेहिया त यहि रन वन में ॥१२॥
यतना वचन सुनि पायेन त यहि रन बन में।
दुलहा खींचि लिहेनि तरवरिया त यहि रन वन मे ॥१३॥
ठाढ़े एक ओर मुगुल पचास त यहि रन बन में।
दुलहा एक ओर ठाढ़े अकेल त यहि रन वन में ॥१४॥
रामा जूझे हैं मुगुल पचास त यहि रन वन में।
राजा जीति के ठाढ़ अकेल त यहि रन वन में ॥१५॥
पतवा के दोनवा लगायनि यहि रन वन मे।
दुलहिनि पनिया पियहु डभकोरि त यहि रन वन मे ॥१६॥
पनिया पियै दुलहिन वैठीं त यहि रन वन में।
दुलहा पटुकन करैं बयारि त यहि रन वन मे ॥१७॥

दुलहा मोर धरम लिहेउ राखि त यहि रन वन में।
दुलहा हम तोहरे हाथ बिकानि त यहि रन वन में ॥१८
यतनी वचनिया के साथ त यहि रन वन मे।
दुलहिन मलवा दिहिन गर डारि त यहि रन वन में ॥१६

हे दुलहा ! घोड़े पर चढ़ लो, घोड़े पर चढ़ लो। इस निर्जन औ भयानक वन में ढाल-तलवार बाँध लो ॥१॥

पीला पीताम्बर पहन लो और जल्दी-जल्दी पगड़ी बाँध लो ॥२॥

पुरुष ने कहा—मैं कैसे पगड़ी बाँधू ? मैं तो जानता ही नहीं कि तुम कौन हो ? ॥३॥

स्त्री ने कहा—मैं तो ब्राह्मण-कन्या हूँ। मुग़लों के डर से इस जंगल में छिपी हूँ ॥४॥

मुगलों ने मेरे भाई और बाप को मार डाला। मैं मुग़लों के डर से इस जंगल में लुकी हूँ ॥५॥

इतना सुनते ही पुरुष ने स्त्री को घोड़े पर बैठा लिया ॥६॥

वे एक वन से दूसरे में गये। तीसरे वन में स्त्री को प्यास लगी ॥७

स्त्री ने कहा—हे जीवन के संगी ! बड़ी प्यास लगी है। एक बूँद पानी पिलाओ ॥८॥

पुरुष ने कहा—इस वन में सभी ताल और कुएँ सूख गये हैं पानी तो लोहू के भाव का हो गया है ॥६॥

पुरुष ने ऊँचे चढ़कर देखा तो वन में ठंडे पानी का एक झरना बहता दिखाई दिया। उसने कहा—हे दुलहिन ! ठंढे पानी का एक झरना बह तो रहा है ॥१०॥

पर वहाँ पचास मुग़ल खड़े हैं ॥११॥

स्त्री ने कहा—हे दुलहा ! हे जीवन के संगी ! इस घोर वन में तुम

मुझे एक बूँद पानी पिलाओ। हे दुलहा! नहीं तो हमारी तुम्हारी प्रीति अब छूट रही है ॥१२॥

इतना सुनते ही पुरुष ने हाथ में तलवार खींच ली ॥१३॥

उस वन में एक ओर तो पचास मुगल खड़े हैं और एक ओर अकेला दुलहा ॥१४॥

पचासों मुग़लों को मारकर दुलहा राजा युद्ध जीतकर अकेला खड़ा है ॥१५॥

पत्ते के दोने में दुलहे ने दुलहिन को पानी दिया और कहा—दुलहिन! खूब तृप्त होकर पानी पिओ ॥१६॥

दुलहिन बैठकर पानी पीती है और दुलहा दुपट्टे के छोर से हवा कर रहा है ॥१७॥

दुलहिन ने कहा—हे दुलहा! तुमने मेरा धर्म रख लिया। मैं तुम्हारे हाथ बिक गई हूँ ॥१८॥

इतना कहकर दुलहिन ने दुलहे के गले में अपनी माला डाल दी। अर्थात् उसको वरण कर लिया ॥१९॥

यह गीत मुगलों के ज़माने का जान पड़ता है। मुग़लों ने किसी ब्राह्मण की रूपवती कन्या को ज़बरदस्ती छीन लेने की नीयत से उसका घर घेर लिया, और कन्या देना अस्वीकार करने पर कन्या के बाप और भाई को मार डाला था। कन्या भागकर एक वन में छिप गई थी। मुग़ल उसे ढूँढते-ढूँढते एक झरने के पास पहुँचे थे। उसी समय कन्या के पास से कोई हिन्दू वीर निकलता है, जो कन्या का कष्ट सुनकर उसे घोड़े पर बैठाकर ले चलता है। रास्ते मे कन्या को प्यास लगती है। पानी के लिये युवक झरने के पास पहुँचता है और पचासों मुगलों को मारकर कन्या को पानी पिलाता है। युवक उसकी थकान मिटाने का प्रयत्न भी करता है। युवक ने कन्या का धर्म और प्राण दोनों बचाये।

उसके बाप और भाई की मृत्यु का बदला भी लिया तथा अकेले पचास मुग़लों से लड़कर और उसे मारकर अपनी शूरता का भी परिचय दिया। इससे हिन्दू-कन्या का हृदय स्वाभाविक कृतज्ञता से उमड़ आया। उसने वहीं उस धीर और सहृदय युवक को सब उपकारों के बदले मे अपना हृदय समर्पण कर दिया और उसके गले में जयमाला डालकर उसे वरण कर लिया।

एक समय वह था, जब हमारे घरों में ऐसे युवक पैदा होते थे, जो पचास-पचास से अकेले लडकर विजयी होते थे। इस गीत में उस समय की एक क्षीण-आभा वर्तमान है।

[१४]

ऊँच ऊँच बखरी उठाओ मोरे बाबा ऊँच ऊँच राखो मोहार।
चाँद सुरुज दोनों किरनी बसत हैं निहुरैं न कन्त हमार ॥ १ ॥
अम्मर सेनुरा मँगावो मोरे बाबा पिया से भरावो मोरी माँग।
सूघर बँभना से गँठिया जोरावहु जनम जनम अहिवात ॥ २ ॥
अम्मर डँडिया फनाओ मोरे बाबा बिदवा करावो हमार।
सात परग सँग चलि के हो बाबा अब मैं भइउँ पराइ ॥ ३ ॥

हे बाबा! ऊँची ऊँची बखरी (घर) बनवाओ और उसमें ऊँचे-ऊँचे मोहार (दरवाज़े) रक्खो। जिससे मेरे स्वामी को निहुरना (झुकना) न पड़े ॥१॥

हे बाबा! अमर करने वाला सिन्दूर मँगाओ और प्रियतम से मेरी माँग भराओ। सुवर ब्राह्मण से मेरी गाँठ जोड़ाओ, जिससे जन्म-जन्मान्तर तक मेरा सुहाग बना रहे ॥२॥

हे बाबा! अमर करने वाली पालकी सजाओ और मुझे बिदा करो। सात पग साथ चलकर अब मैं पराई हो गई हूँ ॥३॥

सात पग साथ चलकर पराई हो जाने वाली कन्या धर्म के महत्त्व

को समझती है। इसी से कहा है—

सता सप्तपदी मैत्री।

सात क़दम साथ चल लेने ही से सज्जनों में मैत्री हो जाती है।

[१५]

ऊँच ऊँच कोठवा उठइहा मोर बाबा हो बिचबिच झँझरी लगाइ।
बियहन अइहैं बाबा तिन लोक राजा हो रहिहैं झँझरिया लोभाइ हे ॥१॥
सब कोइ देखेल बाग बगइचा देखेल फूल फुलवारि हो।
रामचन्द्र देखेलें बाबा के झँझरी के अइसन झँझरी उरेह हे ॥२॥
दान दहेज सासु कुछ नाहीं लेवौं हो ना लेवों चढ़ने के घोड़ हे।
जउन तिवइया यहि झँझरी उरेहले तिन्हका मैं सँग लइ जाव हो ॥३॥
दान दहेज बाबू सब कुछ देवों हों देवों मैं चढ़ने के घोड़ हे।
बेटी सीता देई झँझरी उरेहली तिन्हहू क सँग लइ जाहु हो ॥४॥

हे बाबा! ऊँचे-ऊँचे कोठे बनवाना, और बीच-बीच में खिड़की लगवाना। तीन लोक के मालिक विवाह करने आवेंगे। वे खिड़की देखकर लुभा जायँगे ॥१॥

बारात के लोग बाग-बगीचा और फूल-फुलवाड़ी देख रहे हैं। पर रामचंद्र बाबा की खिड़की देख रहे हैं और मोहित हो रहे हैं कि ऐसी खिड़की पर चित्र किसने बनाये हैं? ॥२॥

रामचन्द्र ने कहा—हे सास! मैं न दान लूँगा, न दहेज। न चढ़ने के लिये घोड़ा ही लूँगा। जिसने इस खिड़की पर चित्र बनाये हैं, उसे मैं साथ ले जाऊँगा ॥३॥

सास ने कहा—हे बेटा! दान-दहेज भी मैं दूँगी और चढ़ने को घोड़ा भी दूँगी। सीता बेटी ने ये चित्र बनाये हैं, उसे भी दूँगी। उसे

अपने साथ ले जाओ ॥४॥

प्राचीन भारत में चित्रकला का घर-घर प्रचार था। चित्रकला का जानना कन्या की शिक्षा का एक अंग समझा जाता था। कन्यायें ऐसा चित्र बना सकती थीं, जो देखने वालों का चित्त हरण कर लेते थे और वर भी उत्तम चित्र की पहचान ही नहीं करते थे, बल्कि उस पर मुग्ध होने वाला हृदय भी रखते थे।

[१६]

उत्तर हेरयों दक्खिन ढूँढ्यों ढूँढ़यों मैं कोसवा पचास रे।
बेटी के वर नहिं पायों मालिनि मरि गयों भुखिया पियास ॥ १ ॥
बैठो न बाबूजी चनन चौकिया पियौ न गेडुअवा जुड़ पानि रे।
कइसन घर रौरा चाही ये बाबू कइसन चाही दमाद ॥ २ ॥
सभवा बैठ हम समधी जे चाहिल जैसे तरैया में चाँद रे।
मचिया बैठलि हम समधिन चाहिल खोलि खोलि बिरवा
चबाति ॥ ३ ॥
सातहिं पाँच हम देवर चाहिल ननद जे चाही अकेल।
दमदा जे चाहिल सब कर नायक सभा बिच पंडित होय रे ॥ ४ ॥

मैंने उत्तर ढूँढ़ा, दक्खिन ढूँढ़ा, पचास कोस तक मैं ढूँढ़ता फिरा। पर हे मालिन! अपनी बेटी के उपयुक्त वर मैंने नहीं पाया। भूख-प्यास से मैं मर गया ॥१॥

मालिन ने कहा—हे बाबूजी? इस चन्दन की चौकी पर बैठिये, ठंडा जल पीजिये। आपको कैसा घर और कैसा वर चाहिये? ॥२॥

बाबूजी ने कहा—हे मालिन? मैं ऐसा समधी चाहता हूँ जो सभा के बीच इस तरह बैठता हो, जैसे तारों के बीच में चन्द्रमा। और मचिया पर बैठी हुई ऐसी समधिन चाहता हूँ, जो खोल-खोलकर पान के बीड़े खाती हो ॥३॥

मैं अधिक नहीं, पाँच, सात देवर ही चाहता हूँ और एक ही ननद। दामाद ऐसा चाहता हूँ, जो सब का नायक हो और सभा के बीच में विद्वान् हो ॥४॥

सभा के बीच में विद्वान् कहलाना योग्यता की एक बहुत बड़ी पहचान है।

[१७]

काहे बिन सून अँगनवाँ ये बाबा काहे बिन सून लखराउँ।
काहे बिनु सून दुअरवा ये बाबा काहे बिनु पोखरा तोहार॥ १ ॥
धिया बिनु सून अँगनवा ये बेटी कोइलरि बिनु लखराउँ।
पूत बिनु सून दुअरवा ये बेटी हंस बिनु पोखरा हमार॥ २ ॥
कैसे के सोहै अँगनवा ये बाबा कैसे सोहै लखराउँ।
कैसे के सोहै दुअरवा ये बाबा कैसे सोहै पोखरा तोहार॥ ३ ॥
धरम से बेटी उपजिहैं ये बेटी सेवा से आम तैयार रे।
तप सेती पुतवा जनमिहैं ये बेटी दान से हंसा मँझधार॥ ४ ॥
का देइ बोधव्यो बेटी ये बाबा का देइ अमवा के गाछ।
का देइ पुतवा समोधव्या ये बाबा का देइ हंसा मझधार॥ ५ ॥
धन देइ बिटिया समोधवै ये बेटी जल देइ समोधौं लखराउँ रे।
भुइँ देइ पुतवा समोधवै ये बेटी अन देइ हंसा मँझधार॥ ६ ॥
का देखि मोहै जनवास ये बाबा का देखि रसना तोहार।
का देखि हियरा जुड़ै है ये बाबा का देखि नैना जुड़ाय॥ ७ ॥
धिया देखि मोहै जनवसवा ये बेटी अमवा से रसना हमार।
पुतवा से हियरा जुड़ैहैं ये बेटी हंसा देखि नैना जुड़ाय॥ ८ ॥

कन्या ने पूछा—हे पिता! किसके बिना आँगन सूना है? और किसके बिना लखराँव (लाख आम के पेड़ों का बाग) सूना है? किसके बिना द्वार सूना है? और किसके बिना तुम्हारा तालाब सूना है? ॥१॥

पिता ने कहा—हे बेटी ! कन्या के बिना आँगन, कोयल बिना लखराँव, पुत्र बिना द्वार और हंस बिना तालाब सूना है ॥२॥

कन्या ने पूछा—आँगन कैसे शोभित हो सकता है ? लखराँव कैसे शोभित हो सकता है ? तुम्हारा द्वार कैसे शोभित हो सकता है ? और तुम्हारा तालाब कैसे शोभित हो सकता है ? ॥३॥

पिता ने कहा—हे बेटी ! धर्म से कन्या पैदा होती है। सेवा से आम पैदा होता है। तप से पुत्र पैदा होता है। और दान से हंस मँझधार में जीते हैं ॥४॥

कन्या ने पूछा—हे पिता ! क्या देकर तुम कन्या को संतुष्ट करोगे ? क्या देकर आम के वृक्ष को ? और क्या देकर पुत्र को ? तथा क्या देकर मँझधार में हंस को संतुष्ट करोगे ? ॥५॥

पिता ने कहा—धन दे कर कन्या को, जल देकर लखराँव को, भूमि देकर पुत्र को और अन्न देकर हंस को संतुष्ट करूँगा ॥ ६ ॥

कन्या फिर पूछती है—हे पिता ! जनवासे के लोग क्या देखकर मोहित होंगे ? किस चीज़ से तुम्हारी जीभ लुभायेगी ? क्या देखकर हृदय शीतल होगा ? और क्या देखकर नेत्र तृप्त होंगे ॥ ७ ॥

पिता ने कहा—कन्या को देखकर जनवास मोहित होगा। आम से जीभ प्रसन्न होगी। पुत्र से हृदय शीतल होगा और हंस को देखकर नेत्र तृप्त होंगे ॥ ८ ॥

पूर्वकाल में परदा नहीं था। कन्या को सब लोग देख सकते थे और उसके रूप और गुण पर मुग्ध हो सकते थे।

[१८]

कहँवहिं के गढ़ थवई जिन्ह महल उठाये।
कहँवहिं के पतिमहवा गढ देखन आये ॥ १ ॥

बाहर होइ गढ़ देखलों जैसे चित्र उरेहल।
भीतर होइ गढ़ देखलों जैसे कुन्दन कुँदावल ॥ २॥
ताही पैठि सुतले कवन बाबा रानी बेनियाँ डोलावें।
केवरहीं बोलली कवन बेटी बाबा नींद भल आवै ॥ ३ ॥
कुछ रे सुतिला कुछ जागिला बेटी नींदो न आवे।
जाहि घरे कन्या कुँवारि बेटी नींद कैसे आवे ॥ ४॥
लेहुना कवन बाबा धोतिया हाथे पान क बीड़ा।
करु ना समधिया से मिलनी सिर माथ नवाय ॥ ५ ॥
गिरि नवे पर्वत नवे हम तौ ना नइयो।
बेटी ! तोहरे कारन हम जग में माथ नवाये ॥ ६ ॥

वह थवई (राज, स्थपति) कहाँ का था ? जिसने यह महल उठाया है। वह बादशाह कहाँ के हैं ? जो गढ़ देखने आये हैं ॥ १ ॥

बाहर से गढ़ देखा, तो ऐसा जान पड़ा, मानो चित्र खींचा हुआ है। भीतर से देखा, तो ऐसा जान पड़ा, मानों कुन्दन किया हुआ है ॥ २ ॥'

उसी गढ़ में प्रवेश करके राम सो रहे हैं। रानी पंखी झाँक रही रही हैं। किवाड़े की आड़ से बेटी ने कहा—पिताजी ! आपको नींद खूब आ रही है ॥ ३ ॥

पिता ने कहा—बेटी ! कुछ-कुछ सो रहा हूँ, कुछ-कुछ जाग रहा हूँ। जिसके घर में क्वारी कन्या हो, भला, उसे नींद कैसे आ सकती है ? ॥ ४ ॥

कन्या ने कहा—हे पिता ! हाथ में धोती और पान का बीड़ा लेकर और सिर नवाकर समधी से भेंट करो न ? ॥ ५ ॥

पिता ने कहा—गिरि नै (झुक)गया पहाड़ नै गया;अब तक मैं नहीं (झुका) था। पर हे बेटी ! तुम्हारे कारण मुझे सिर (झुकाना) पड़ा है ॥६॥

बेटी के विवाह के लिये पिता को कितनी चिन्ता होती है, 'जाहि घरे कन्या कुँवारि बेटी नींद कैसे आवे' में वह बड़ी ही मार्मिकता से कहा गया है। इस गीत को कन्या के पिता बड़े मनस्वी जान पड़ते हैं। उन्होंने कभी किसी के सामने सिर नहीं झुकाया था, पर कन्या के पिता को सिर झुकाना ही पड़ता है।

[१६]

बाबा बाबा गोहरावौं बाबा नाहीं जागैं।
देत सुनर एक सेंदुर भइउँ पराई ॥ १ ॥
भैया भैया गोहरावौं भैया नाहीं बोलैं।
देत सुघर एक सेंदुर भइउँ पराई ॥ २ ॥
बन माँ फूली बेइलिया अतिहि रूप आगरि।
मलियै हाथ पसारा तौ होवौ हमारि ॥ ३ ॥
जनि छुवो ये माली जनि छुवो अबहीं कुँवारि।
आधी राति फुलवै बेइलिया तौ होव तुम्हारि ॥ ४ ॥
जनि छुवो ये दुलहा जनि छुवो अबहीं कुँवारि।
जब मोर बाबा संकलपैं तौ होव तुम्हारि ॥ ५ ॥

बाबा, बाबा कहकर पुकार रही हूँ। बाबा जागते हो नहीं। कोई एक सुन्दर पुरुष सेंदुर दे रहा है। मैं पराई हुई जा रही हूँ ॥ १ ॥

भैया, भैया कहकर पुकार रही हूँ। भैया बोलते ही नहीं। कोई एक चतुर पुरुष सेंदुर दे रहा है। मैं पराई हुई जा रही हूँ ॥ २ ॥

बन में अत्यंत रूपवती लता फूली है। माली ने उस पर हाथ पसारा और कहा—तुम मेरी हो ॥ ३ ॥

हे माली ! अभी मत छुओ, अभी मत छुओ। मैं अभी बालिका हूँ, कुमारी हूँ। आधीरात को जब लता फूलेगी, तब वह तुम्हारी होऊंगी ॥ ४ ॥

हे दूल्हा! मत छुओ, मत छुओ। अभी मैं बालिका हूँ, कुमारी हूँ। जब मेरे बाबा समर्पण करेंगे, तब मैं तुम्हारी होऊँगी ॥ ५ ॥

कैसा भाव-पूर्ण यह गीत है। कन्या ने वर को 'सुन्दर और सुघर' दो विशेषणों से व्यक्त किया है। हमने ऊपर सुघर शब्द का अर्थ चतुर दे दिया है। पर सुघर शब्द अपना अलग अर्थ रखता है, जो बहुत व्यापक है। चतुर शब्द उसका पर्यायवाची नहीं हो सकता। और उस का पर्यायवाची दूसरा शब्द है भी नहीं। वर के रूप और गुण का बखान कर के फिर कन्या अपनी तुलना लता से और वर की माली से करती है। स्त्री लता की तरह फूले-फले और पुरुष माली की तरह उसे सींचे, सँभाले, सँवारे और उसका सुख भोगे। कैसी अर्थयुक्त तुलना है।

अंत में कन्या कहती है कि जब तक पिता नहीं समर्पण करता, तब तक वह दूसरे की नहीं हो सकती। इस गीत के समय में कन्या स्वतंत्र नहीं रह गई कि वह अपनी इच्छा से योग्य वर से विवाह कर सके। गीत में आदि से लेकर अंत तक करुण-रस लहरा रहा है।

[२०]

की हो दुलहे रामा अमवा लुभाने की गये बटिया भुलाइ।
कब से रसोइया लिहे हम बैठी जोवउँ मैं एकटक राह ॥१॥
दुलहिन रानी न अमवा लुभाने ना गये बटिया भुलाइ।
बाबा के बगिया कोइलि एक बोलै कोइलि सबद सुनौं ठाढ ॥२॥
चिठिया एक लिखि पठइन दुलहिन दिहो कोइलरि देइ के हाथ।
तनि एक बोलिया नेवरतिउ कोइलरि परभु मोर जिवने क ठाढ ॥३॥
चिठिया एक लिख पठइन कोइलरि दिहो दुलहिन देइ के हाथ।
ऐसइ बोलिया तुँ बोलि क दुलहिन दुलहे न लेतिउ बिलमाय ॥४॥

हे प्रियतम! तुम क्या आम पर लुभा गये थे? या रास्ता ही भूल

गये ? मैं कब से भोजन बनाकर बैठी हूँ और एकटक तुम्हारी राह देख रही हूँ ॥१॥

पति ने कहा—हे मेरी प्यारी रानी ! न मैं आम पर लुभाया हूँ, और न रास्ता ही भूल गया हूँ। मेरे बाबा के बाग में एक कोयल बोल रही है। मैं उसी की बोली सुन रहा हूँ ॥२॥

स्त्री ने कोयल को एक पत्र लिखकर भेजा—हे कोयल रानी ! तुम ज़रा देर के लिये अपनी बोली बन्द करो, मेरे प्राणनाथ भोजन के लिये खड़े हैं ॥३॥

कोयल ने उत्तर लिखकर दुलहिन के पास भेजा—हे दुलहिन रानी ! ऐसी ही बोली बोलकर तुम दुलहे को मुग्ध क्यों नहीं कर लेतीं ? ॥४॥

आशा है, कोयल के इस उपदेश से कटुवचन बोलनेवाली दुलहिनें लाभ उठायेंगी।

[२१]

घर में से निसरेली बेटी हो कवनि देई भइली देवढ़िया धइले
ठाढ़ रे।
सुरुज के उगले किरिनिश्रा छिटिकले हो गोरी बदन
कुम्हिलाइ रे ॥१॥
कहतु त मोरी बेटी छत्र छवउतेउँ नाहीं तनवतेवँ ओहार रे।
कहतु त मोरी बेटी सुरुज अलोपतेउँ हो गोरी बदन रही
जाइ रे ॥२॥
काहे के मोरे बाबा छत्र छवइबा हो काहे के तनइबा ओहार रे।
काहे के मोरे बाबा सुरुज अलोपबा हो एक दिन की है बात।
आजु के दिन बाबा तोहरे मड़उआ हो बिहने सुनर वर साथ रे ॥३॥
खोरवन खोरवन बेटी दुधवा पिअवलीं हो दहिआ खिअवलीं
साढ़ीवाल रे।

दुधवा क नीरव नाही दीहेलु ये बेटी चललु सुनर बर
साथ रे ॥४॥
काहे क मोरे बाबा दुधवा पिअवला हो दहिआ खिअवला
साढ़ीवाल रे।
जानत रहला बेटी पर घर जइहें हो नाहक कइला मोर दुलार रे ॥५॥

घर से अमुक देवी निकली और ड्योढी पकड़कर खड़ी हुई। सूर्य उदय हो चुका था। किरनें छिटक आई थीं। कोमल कन्या का मुँह कुम्हला गया था ॥१॥

पिता ने पूछा—बेटी! कहो तो छत्र छवा दूँ, या परदा डलवा दूँ, या कहो तो किसी तरह सूर्य की धूप को रोक दूँ, जिससे तुम्हारा कोमल मुँह न कुम्हलाय ॥२॥

बेटी ने कहा—हे बाबा! क्यों तुम छत्र छवावोगे? क्यों परदा डालोगे? क्यों धूप को रोकोगे? एक दिन की बात और है। आज तुम्हारे माड़ो में हूँ। कल अपने सुन्दर वर के साथ चली जाऊँगी ॥३॥

बाबा ने कहा—हे बेटी! मैंने कटोरे भर-भर कर तुमको दूध पिलाया और साढ़ीदार दही खिलाया। दूध में कभी पानी भी तो नहीं मिलाया। फिर भी हे बेटी! तुम सुन्दर वर के साथ चली जाओगी? ॥४॥

बेटी ने कहा—हे बाबा! क्यों तुमने दूध पिलाया? क्यों साढ़ी वाला दही खिलाया? तुम तो जानते ही थे कि बेटी पराये घर जायगी। फिर मेरा दुलार क्यों किया? ॥५॥

[२२]

मचियहि बैठीं पुरखिनि रानी पूछैं बिटिया पतोह,
तौ इहै नवा कोहबर।
कहँवा लिखौं सासू पुरइनि रे कहँवा लिखौ बँसवार,
तौ इहै नवा कोहबर ॥१

यक ओरी लिखौ वहुअरि पुरइनि रे, यक ओरी खिलौ बँसवार,
तौ इहै० ।
कहँवॉ लिखौं सासू हसा हसिनि रे, कहॅवॉ लिखौं वन मोर,
तौ इहै० ॥
कहॅवॉ लिखौं सासू सुग्गा मैना रे ढुरत सुग्गा मैना लिखु,
तौ इहै० ।
दनवॉ चुनत गवरैया लिखो रे गैया लिखो वछवा लगाय,
तौ इहै० ।
कलसा लिहे चेरिया लौंड़ीं लिखो रे वाम्हन पोथी लिहे हाथ,
तौ इहै० ॥
गैया दुहत अहिरा छौंड़ा लिखो रे दहिया वेंचत अहिरिनि धेरि,
तौ इहै० ।
आरी आरी वेली के फूल लिखो रे और लिखो पनवारि,
तौ इहै०
झुपसन अमली फरत लिखो रे अमवा घवधवन लाग,
तौ इहै० ।

पुरखिन रानी (घर की मालकिन) मचिये पर बैठी हैं । बेटी और पतोहू पूछ रही हैं—यही नया कोहवर है । हे सासजी ! कहाँ कमल के पत्ते का चित्र बनाऊँ ? कहाँ बँसवारी (बाँस की वाड़ी) बनाऊँ ? ॥१॥

सास ने कहा—हे बहू ! एक ओर कमल के पत्ते बनाओ । एक ओर बँसवारी लिखो ॥२॥

बहू ने पूछा—हे सास ! कहाँ हंस-हंसिनी लिखूँ ? कहाँ वन के मोर लिखूँ ? कहाँ तोता मैना लिखूँ ? कहाँ उड़ती हुई खेमकरी लिखूँ ?

सास ने कहा—ढुरते हुये (केलि करते हुये) तोता और मैना, दाने चुगती हुई गौरैया, बछड़े को दूध पिलाती हुई गाय, क्रमश

हुये दासी, पुस्तक लिये हुये ब्राह्मण, गाय दुहता हुआ अहीर का लड़
दही बेंचती हुई अहीरनी की कन्या का चित्र बनाओ। आसपास फू
हुई लता का चित्र बनाओ और पान की लता का चित्र बनाओ। गु
की गुच्छे फली हुई इमली का चित्र बनाओ और पल्लवों में लगे
आम का चित्र बनाओ। यही नया कोहबर है।

कन्याओं को चित्रकारी की शिक्षा कैसे दी जाती थी, इसका कु
आभास इस गीत में है।

[२३]

मैया दिया है गगरी घैलना बाबा ने आँख तरेरि।
वहि रे ताल बेटी माती हथिनियाँ जनि जाव ताल नहाइ॥ १
बाप कहा नहिं माना है बेटी गई है ताल नहाइ।
अपनी हथिनियाँ सँभारो बनजारे चीर पहिरि घर जाऊँ॥ २
किनके हौ तुम नाती रे पुतवा कौनि बहिन के भाइ।
कौन बनिजिया चले बर सुन्दर कौन के ताल नहाव॥ ३
अपने बाप के नाती रे पुतवा अपनी बहिन के भाइ।
यही हथिनियाँ मैं तुम्हें चढ़ाओं लै जाओं आपने देस॥ ४
धोबी धोवै अपडे रे कपड़े अहिर चरावै सुरा गाइ।
और बोलैहौं मैं बाबा की नगरिया हमको लेइँ छुटाइ॥ ५
लूटौं मैं धोबिया के अपडे रे कपडे अहिर की लेबौं सुरा गाइ।
मारौं मैं बाबा की नगरिया वाले तुमको ब्याहि लै जाऊँ॥ ६
अरे अरे अहिर के बेटवा रे भैया माता से कहेउ सँदेस।
राम रसोई मे गुड़िया रे भूली धरैं पेटरिया के बीच॥ ७

माँ ने पानी भरकर लाने के लिये गगरी (मिट्टी का घड़ा) दिया
बाबा ने आँख तरेरकर कहा—हे बेटी ! उस तालाब पर मतवाल

बेटी ने बाप का कहा नहीं माना और वह तालाब में नहाने चली गई। तालाब पर किसी बनजारे की हथिनी मिली। कन्या ने कहा—बनजारे! अपनी हथिनी को रोको तो मैं चीर पहनकर घर जाऊँ ॥२॥

कन्या ने बनजारे से पूछा—हे सुन्दर वर! तुम किसके पौत्र और पुत्र हो? किस बहन के भाई हो? किस चीज़ का व्यापार करने निकले हो? और किसके तालाब पर नहा रहे हो? ॥३॥

वर ने कहा—मैं अपने पिता-पितामह का पुत्र और पौत्र हूँ, और अपनी बहन का भाई हूँ। इसी हथिनी पर चढ़ाकर मैं तुमको अपने देश ले जाऊँगा ॥४॥

कन्या ने कहा—यहाँ धोबी कपड़े धो रहे हैं, अहीर सुरा गाय चरा रहे हैं, इनके सिवा मैं अपने बाबा के नगर से और भी बहुत से लोगों को बुला लूँगी, वे सब मुझे छुड़ा लेंगे ॥५॥

वर ने कहा—मैं धोबी के कपड़े-सपड़े लूट लूँगा। अहीर की सुरा गाय भी छीन लूँगा और तुम्हारे बाबा के नगरवालों को पीटूँगा भी, तथा तुमको ब्याह करके ले जाऊँगा ॥६॥

वर कन्या को ले चला। कन्या कहने लगी—हे अहीर के लड़के! हे मेरे भाई! मेरी माँ से यह संदेश कह देना कि मैं रसोई-घर में गुड़िया भूल आई हूँ, उसे पिटारी में सँभालकर रख दें ॥७॥

अन्तिम पंक्तियों में कन्या के भोलेपन का ख़ासा निदर्शन है। वह बेचारी नहीं जानती कि गुड़िया खेलते-खेलते अब वह खुद गुड़िया बन गई है और वह अब फिर गुड़िया खेलने के लिये इस घर में नहीं आयेगी।

[२५]

पुरुप पछौंहाँ मोरे बाबा कै बखरिया

पछुनी इमलिया के छाँह।

तेही तर मोरे बावा सोनवाँ सँकलपैं,
गढ़ै लागै सूघर सोनार ॥ १ ॥
गढ़ौ सोनरा अंगन गढ़ सोनरा कगन
टीका गढ़ौ भरि माथ रे ।
इतना पहिरि बेटी चौक जो बैठीं कै मन दलगीर ॥ २ ॥
की तेरो बेटी रे दान दहेज थोर,
की रे सूघर वर छोट ।
की तेरो बेटी सोना खराब भये,
काहे तेरो मन दलगीर ॥ ३ ॥
नाहीं मोर बावा रे दान दहेज थोर,
नाहीं सूघर वर छोट ।
सुनत हौं मोर बावा सास दारुनिया,
एही से मन दलगीर ॥ ४ ॥
चार दिना बेटी राजा कै रजई चार दिना फौज दारि ।
चार दिना बेटी सास है दारुन आखिर राज तुम्हार ॥ ५ ॥
(रायबरेली)

मेरे बाबा की बखरी का पिछवाड़ा पूरब ओर है, उस पर इमली की छाया पड़ गई है । उसी के नीचे मेरे बाबा सोना दे रहे हैं । चतुर सुनार गहने गढ़ने लगे ॥१॥

हे सुनार ! कगन गढ़ो, और कन्या के पूरे माथ पर बैठनेवाला टीका गढ़ो । इतना पहनकर बेटी चौक पर बैठीं । लेकिन बेटी का मन उदास है ॥२॥

हे बेटी ! दान-दहेज थोड़ा है ? या सुन्दर वर छोटा है ? या गहने का सोना खोटा है ? तुम्हारा मन उदास क्यों है ? ॥३॥

हे बाबा ! न दान-दहेज कम है, न सुन्दर वर ही छोटा है ।

सुनती हूँ कि सास बड़ी कर्कशा है। इसी से मन उदास है ॥४॥

हे बेटी! राजा का राज चार दिन का है, चार ही दिन कर्कशा सास हैं, फिर तो तुम्हारा ही राज है ॥५॥

अभिप्राय यह कि कुटुम्ब के अंदर का सुख-दुःख धैर्य के साथ सहते रहकर गृह-स्वामिनी बनने की तैयारी में रहो।

[२५]

अपने पिया की पियारी, अपने पिया की प्यारी।
अपने पिया पे सिंगार करी ॥
अति प्रेम के लहँगा, अति प्रेम के लहँगा।
नेह की चुनरी ओढ़े चली ॥
अति लाज की अँगिया, अति लाज की अँगिया।
मोहन मंत्र कसे रे कसे ॥
अति भाग की बेंदी, अति भाग की बेंदी।
मोहन टीका लिलार दिहे ॥
सौभाग के बीरा, सौभाग के बीरा।
मोहन कज्जल आख दिहे ॥
करपूर चंदन से, करपूर चँदन से।
बास सुगंध बढ़ाय चली ॥
ननदोई कुसल से, ननदोई कुसल से।
बहनोई क सुजस बढ़ै रे बढ़ै ॥
बाढ़ै देवरा तुम्हारा, बाढ़ै देवरा तुम्हारा।
मोहन वृद्धि बढ़ै रे बढ़ै ॥
समधी अति ही रंगीला, समधी छैल छबीला।
समधिन रूप उजागरी ॥

तिया नइया वनी है , तिया नइया वनी है ।
ए पति खेवनहार अरी ॥

अर्थ स्पष्ट है ।

विवाह के अवसर पर, वर को जिमाते समय, यह गारी गाई जाती है ।

[२६]

विमल किरतिया तोहरी कृसन जी
फिराथी उघारी उघारी कि वाह वा ॥ १ ॥
चन्दिनि होइ गगन मे पहुँची
सुरपति कीन वडाई कि वाह वा ॥ २ ॥
भक्ति होइ संतन मे पहुँची
सन्तों ने कीन वड़ाई कि वाह वा ॥ ३ ॥
बुद्धि होइ पंडितन मे पहुँची
पंडितों ने कीन वड़ाई कि वाह वा ॥ ४ ॥
कविता होइ कविन मे पहुँची
कवियों ने कीन वड़ाई कि वाह वा ॥ ५ ॥
दया होइ परजन मे पहुँची
परजों ने कीन वडाई कि वाह वा ॥ ६ ॥
यकमति होइ भाइन में पहुँची
भाइयों ने कीन वड़ाई कि वाह वा ॥ ७ ॥
क्षमा होइ ब्राह्मण मे पहुँची
ब्राह्मणों ने कीन वड़ाई कि वाह वा ॥ ८ ॥
सत्य सुगन्ध समीर लै पहुँची
सब जग होइ वड़ाई कि वाह वा ॥ ९ ॥

हे कृष्ण ! तुम्हारी विमल कीर्त्ति खुली-खुली घूम रही है ॥१॥

चाँदनी होकर वह आकाश में पहुँची, तो इन्द्र ने उसकी बड़ाई की ॥२॥
भक्ति होकर भक्तों में पहुंची, तो सतों ने बडी बड़ाई की ॥३॥
बुद्धि होकर पंडितों में पहुंची, तो पडितों ने बड़ी बडाई की ॥४॥
कविता होकर कवियों में पहुँची, तो कवियों ने बड़ी बड़ाई की ॥५॥
दया होकर प्रजा में पहुंची, तो प्रजाओं ने बड़ी बड़ाई की ॥६॥
एक मति होकर भाइयों में पहुँची, तो भाइयों ने बड़ी बड़ाई की ॥७॥
क्षमा होकर ब्राह्मण में पहुँची, तो ब्राह्मणों ने बड़ी बड़ाई की ॥८॥
सत्य की सुगंध होकर हवा में पहुंची, तो सारे संसार ने बडाई की ॥९॥

यह गारी विवाह में, वर को भोजन कराने के अवसर पर, गाने के लिये दिअरा राज (सुलतानपुर) की राजमाता रानी रघुवंशकुमारी जी ने बनाई है। उधर इसका प्रचार भी है। इस सग्रह में, जिसमें प्राय सब प्राचीन गीत ही हैं, यह दिखाने के लिये कि गीत-रचना में स्त्रियों का प्रयत्न बराबर जारी है, और वे समय के अनुकूल गीत रचा करती हैं, यह गीत दे दिया गया है।

[२७]

खाइ लेहू खाइ रे लेहू दहिया मे रे भात।
तोहरी ऊ बिदवा ऐ बेटी बडे भिनु रे सार ॥ १ ॥
बिरना कलेउवा ऐ अम्मा हँसी खुशी रे द।
हमरा कलेउवा ऐ अम्मा दिहेउ रीसीयाइ ॥ २ ॥
हम अउ बिरना गे अम्मा जन्मे एक रे संग।
सँग सँग खेलेऊँ रे अम्मा खायेउ एक रे संग ॥ ३ ॥
भइआ के लिखला ऐ अम्मा बाबा कइ रे राज।
हमरा लिखला ऐ अम्मा अति बड़ी दूरि ॥ ४ ॥
अँगना घूमि आ रे घूमि बाबा जे रोवैं।
कतहू न देखउँ ऐ बेटी नेपुरवा झनकार ॥ ५ ॥

कन्या का विवाह हो चुका है। दूसरे दिन वह विदा होनेवाली है। माँ कहती है—हे बेटी! दही से भात खा लो। कल बड़े सवेरे तुम्हारी विदा है ॥१॥

बेटी कहती है—माँ! भाई को तो तुम बड़ी हँसी-खुशी से कलेवा देती थी, पर मेरा कलेवा तुम नाराज़ी से दिया करती थी ॥२॥

भाई और मैं, दोनों एक साथ जन्मे थे। साथ-साथ खेले और साथ-साथ खाये थे ॥३॥

भाई को तो पिता का राज लिखा है, और मुझे, हे माँ! बड़ी दूर जाना है ॥४॥

कन्या के विदा होने पर पिता आँगन में घूम-घूमकर रो रहा है—हाय! बेटी के पाज़ेब की आवाज़ कहीं से सुनाई नहीं पड़ती ॥५॥

बेटी की विदा का दृश्य बहुत ही करुण-रस-पूर्ण होता है। इस गीत में माँ को बेटी का प्रेमपूर्ण उलहना कि "तुम भाई को और मुझे कलेवा देने में पक्षपात करती थी," बड़ा ही हृदय-वेधक है। बेटी के बड़ी दूर जाने की बात भी हृदय को हिला देनेवाली है। प्यारी बेटी के चले जाने पर बाबा का आँगन में पागल की तरह घूमना और विलाप करना स्वाभाविक ही है।

[२८]

अरे अरे बेटी पियारी रानी! तोरी बोल भली।
तोरी बचन भली ॥
ऐसन बपैया घर छोड़ि के बेटी! कहवाँ चली,
बेटी! कहँवाँ चली ॥ १ ॥
जैसे बना की कोइलिया, उड़ि बागों गई, फुलवरियों गई।
तैसे बाबा घरा छोड़ि के, अब मैं ससुरे चली,
ससुरिया चली ॥ २ ॥

घोड़वा चढ़ा भैया आगे खड़े हाथे तीर कमाँ, हाथे तीर कमाँ।
रोकहिं वहिन के डगरिया वहिन मोरी कहवाँ चली,
वहिनी कहवाँ चली ॥ ३ ॥
जाने दे भैया जाने दे वावा लगन धरी, अम्मा साज करी।
ऐहौं मैं काजे परोजन विरन तोरे वेटा भये,
तोरे वेटा भये ॥ ४ ॥

हे मेरी प्यारी वेटी! तेरी वात वड़ी मीठी है। तू ऐसे पिता का घर छोड़कर कहाँ चली? ॥ १ ॥

वेटी ने कहा—जैसे वन की कोयल, कभी उड़कर वाग में गई, कभी फुलवारी में। वैसे ही मैं अपने पिता का घर छोड़कर ससुराल चली ॥२॥

घोड़े पर चढ़ा, हाथ में तीर धनुष लिये भाई आगे खड़ा है। उसने रास्ता रोककर कहा—हे मेरी वहन! तू कहाँ जा रही है? ॥३॥

वहन ने कहा—हे भैया! जाने दो। पिता ने विवाह ठीक किया और माँ ने तैयारी कर दी। मैं अव जा रही हूँ। कभी कोई काम-काज पड़ेगा या तुम्हारे वेटा होगा, तव आऊँगी ॥४॥

हिन्दुओं में वेटी की विदा का अवसर वड़ा ही करुणा-जनक होता है। यह गीत उसी अवसर का है। यह गीत जव स्त्रियाँ करुण-स्वर में गाती हैं, तव सुनने वालों का धैर्य थामे नहीं थमता।

गीतों में जहाँ कहीं छोटे भाई का वर्णन आया है, वहाँ वह तीर धनुप या तलवार लिये हुये दिखाया गया है। कभी इस देश में छोटे वच्चे तीर, धनुप और तलवार ही खेला करते थे।

[२६]

मोरे मन वसि गयें चतुरगुन हृदय नारायन।
सखिया सव विसरैं तो विसरैं मोर राम नाहिं विसरैं॥ १ ॥

सब सखिया मिल पूछलीं अपनी सीतल देई से ।
सीता कइसन तोहार राम बाटेन तोहैं नाहिं बिसरैं ॥ २ ॥
रेखिआ भिनत अति सुन्दर चलत धरती दलकै
बिजुली चमाकै ।
सखिया हँसत देव गराजैं राम नहिं बिसरैं ॥ ३ ॥
सब सखिया मिल पूछन लागीं अपनी सीतल देइ से ।
मोरी सीता चलतिउ अजोध्या मैं राम देखि आइत ॥ ४ ॥
छोटै मोट पेड़वा छिउलिया क मोतियन गहदल ।
तेहिं तर राम आसन डाले ओढ़ले पीताम्बर ॥ ५ ॥
सब सखिया मिलि गइलिन चरन धोई पिअलिन ।
सीता कौन तपेस्या तुँ कइलिउ राम वर पउलिउ ॥ ६ ॥
भूखल रहलिउँ एकादसिया दुवादसिया क पारन ।
विधि से रहिउँ अइतवार राम वर पायों ॥ ७ ॥
तीनि नहायों कतिकवा तेरह बैसखवा ।
माघै मास नहायों अगिन नहिं ताप्यों,
करेउँ तिलौवा क दान, राम वर पायों ॥ ८ ॥

सीता कहतीं हैं—मेरे मन में गुणवान् राम बस गये हैं। हे सखियो ! सब भूलें तो भूलें, राम नहीं भूलते ॥ १ ॥

सब सखियाँ अपनी सीता से पूछती हैं—हे सीता ! तुम्हारे राम कैसे हैं ? जो तुम्हें नहीं भूलते ॥ २ ॥

सीता कहती हैं—राम अभी युवक हैं। रेख भिन रही है। बहुत सुन्दर हैं। ऐसे वीर हैं कि उनके चलने से धरती हिलती है, बिजली चमकती है। हे सखियो ! जब वे गंभीर हंसी हंसते हैं, तब बादल गरज उठता है। वह राम मुझे नहीं भूलते ॥ ३ ॥

सब सखियाँ अपनी सीता से पूछने लगीं—हे सीता ! अयोध्या चलो

तो एक बार राम को देख आवें ॥४॥

छिउल का छोटा सा पेड़ है, जो मोती ऐसे फूलों से खूब घना हो रहा है। उसी के नीचे पीताम्बर ओढ़े राम आसन पर बैठे हैं ॥५॥

सब सखियाँ मिलकर गईं, चरण धोकर पिया और सीता से पूछा—हे सीता! कौन सी तपस्या से तुमने राम ऐसा वर पाया? ॥६॥

सीता ने कहा—एकादशी भूखी रहकर द्वादशी को पारण किया। विधिपूर्वक रविवार का व्रत किया। तब मैंने राम ऐसा वर पाया ॥७॥

तीन कार्तिक और तेरह वैसाख नहाया। माघ महीने भर स्नान किया, अग्नि नहीं तापा और तिल से बने मिष्टान्न का दान किया। तब राम ऐसा वर पाया ॥८॥

व्रत रहने और किसी खास महीने में स्नान से अच्छा वर मिल सकता है, इस बात पर इस समय के शिक्षित लोग विश्वास करें या न करें; पर यह तो निश्चितरूप से कहा जा सकता है कि गीत बनाने वाले के मस्तिष्क में राम और सीता का विवाह जिस अवस्था में हुआ, उस अवस्था में राम के रेख भिन रही थी अर्थात् मूछों के स्थान पर नन्हें-नन्हें बाल निकल रहे थे। सीता ने सखियों से राम के बलवान् शरीर और प्रभाव का जो वर्णन किया है, वह भी कम महत्त्व का नहीं है। कोई स्त्री जब किसी दूसरी स्त्री से उसके पति की प्रशंसा करती है, तब वह हर्ष से बहुत ही गद्गद हो जाती है। यही दशा सीता की भी हुई होगी।

[३०]

सासु गोसाईं बड़ी ठकुराइन लागौं मैं चेरिया तुम्हारि रे।
जौनी बनिज सासु तोरे पुत गे सो बाटा देउ बताइ ॥१॥
हाथ कै लेउ बहुआ तेलवा फुलेलवा अउर गंगाजल नीर रे।
पूँछत पूँछत तुम जायउ बहुरिया जहाँ बसे कंत तुम्हार रे ॥२॥

घोड़वा तो बाँधे वहि घोड़सरिया हथिनी लौंग की डार रे ।
अपना तो सूतैं मलिनिया के कोरवा मालिन बेनिया डोलाइ रे ॥३॥
कहउ तो स्वामी मोरे लाउँ तेलवा फुलेलवा कहउ तो दावउँ पाँउ रे ।
कहउ तो एक छिन बेनियाँ डोलावउँ कहउ लवटि घर जाउँ ॥४॥
काहे का लइहो धना तेलवा फुलेलवा काहे का दबिहउ पाउँ रे ।
काहे का छिनु यक बेनिया डोलइहो तुम रे उलटि घर जाउ ॥५॥
ऊँचवे ऊँचवे जायउ री रनिया खलवैं पैग जनि दीन्हेउ रे ।
पराये पुरुष जनि चितयउ री रनियाँ आखिर होब तुम्हार ॥६॥
ऊँचवे ऊँचवे जाबे रे स्वामी खलवे पैगु नहि धाब रे ।
परारि पुरुष स्वामी भय्या रे भतिजवा कउने जुग होइहो हमार ॥७॥

वहू कहती है—हे सास ! हे स्वामिनी ! मैं तुम्हारी दासी लगती हूँ। जिस व्यापार के लिये तुम्हारे पुत्र जिस मार्ग से गये हैं, वह मुझे बता दो ॥ १ ॥

सास कहती है—हे बहू ! हाथ में तेल फुलेल और गंगा-जल ले लो। पूछते-पूछते तुम वहाँ चली जाना, जहाँ तुम्हारा स्वामी बसता है ॥ २ ॥

वह ढूँढ़ते-ढूँढ़ते पति के पास पहुँचती है। क्या देखती है कि घोड़ा तो घोड़सार में बँधा है और हथिनी लौंग की डार से बँधी है। पति मालिन की गोद में सो रहा है। मालिन पंखा झल रही है ॥ ३ ॥

स्त्री कहती है—हे स्वामी ! कहो तो तेल फुलेल लगा दूँ। कहो, पैर दाब दूँ। कहो तो थोड़ी देर पंखी हाँक दूँ या कहो तो घर लौट जाऊँ ॥ ४ ॥

पति कहता है—हे स्त्री ! क्यों तेल-फुलेल लगाओगी ? क्यों पाँव

दायोगी ? और क्यों पंखा हांकोगी ? तुम घर लौट जाओ ॥ ५ ॥

हे मेरी रानी ! ऊँचे ऊँचे जाना, नीचे पैर न देना। पराये पुरुष की ओर दृष्टि न डालना। अंत में मैं तुम्हारा ही होऊँगा ॥ ६ ॥

स्त्री कहती है—हे स्वामी ! मैं ऊँचे ही ऊँचे जाऊँगी। नीचे पैर न रक्खूँगी। पराये पुरुष को भाई-भतीजे के समान देखती ही हूँ। पर तुम किस युग में मेरे होगे ? ॥ ७ ॥

इस गीत में स्त्री के हृदय की महिमा चित्रित की गई है। पुरुष व्यापार करने परदेश गया। वहाँ वह एक मालिन के प्रेम में फँस गया, अपनी स्त्री को भूल गया। स्त्री बेचारी उसकी खोज में घर से निकली। खोजते-खोजते वह उस मालिन के घर पहुँची, जिसने उसके प्राणेश्वर को विलमा रक्खा था। पतिव्रता ने पति के अपराध की ओर ध्यान ही न दिया ; बल्कि सेवा करनी चाही। पति ने उसे विदा करते समय जो उपदेश दिया, वह प्रत्येक सती साध्वी का कर्त्तव्य ही है। पर स्त्री ने जो क्षमा दिखलाई है, वह अद्भुत है। वह स्त्री के उच्च मनोबल का द्योतक है। कोई पुरुष अपनी स्त्री को पर पुरुष के साथ सम्बन्ध रक्खे हुये देखकर क्षमा नहीं कर सकता। यद्यपि ऐसी दशा में क्षमा करना हम उचित नहीं समझते। पर पुरुष को भी एक स्त्रीव्रत होना चाहिये।

[३१]

पनवा कतरि कतरि भाजी बनावउ लौंगा दिहौ धौंगार।
अच्छे अच्छे जेवना बनावो मोरी कामिनि हमहूँ जावै
गंगा नहाय ॥ १ ॥
केके तू सौंपे अनधन सोनवा केके तू नौरँग बाग।
केके तू सौंपे हमें अस धनिया तूँ चले गंगा नहाय ॥ २ ॥
बाबा के सौंपेउँ अनधन सोनवा भइया के नौरँग बाग।
माया के सौंपेउँ तोहैं अस धनिया हम चले गंगा नहाय ॥ ३ ॥

घरही में कुँइयाँ खोदावो मोरे सइयाँ घर ही मे
गगा नहाउ।
माता पिता कै धोतिया पखारउ उनहीं हैं गंगा तोहारि ॥ ४ ॥

हे मेरी प्यारी स्त्री ! पान कतर-कतर कर उसकी तरकारी बनाओ और उसको लौंग से बघार दो। आज अच्छा-अच्छा भोजन बनाओ। हे कामिनी ! मैं गंगा नहाने जाऊँगा ॥ १ ॥

हे मेरे प्राणेश्वर ! अन्न, धन और सोना तुमने किसको सौंपा ? नौरंग बाग किसे सौंपा है ? और मेरी जैसी अपनी प्यारी स्त्री किसको सौंपी है ? जो तुम गंगा नहाने चले हो ॥ २ ॥

पति ने कहा—पिता को अन्न, धन और सोना सौंप दिया है, भाई को नौरंगबाग, और तुमको माँ के सुपुर्द करके मैं गगा नाहने जा रहा हूँ ॥ ३ ॥

स्त्री ने कहा—हे प्रियतम ! घर ही में कुआँ खुदवा लो और घर ही में गङ्गा-स्नान करो। माता-पिता की धोती धोओ; वे ही तुम्हारी गगा हैं ॥ ४ ॥

बहू ने सच कहा है। वास्तव में माता-पिता की सेवा से बढ़कर पुत्र के लिये कोई तीर्थ नहीं। अधिक हर्ष की बात तो यह है कि स्त्री अपने पति को ऐसी शिक्षा दे रही है।

[३२]

तुम पिया की पियारी रूठे पिया को मनावै चली।
तहँ ज्ञान का लहँगा प्रेम की सारी सँवारी चली ॥
तहँ सत्य की चोली दृढ़ता बंधन बाँधि चली।
तहँ नाम का अभरन अंगन अंगन बाँधि चली ॥
तहँ हर्ष का हरवा स्याम रूप दृग आँजि चली।

तुम अपने प्रियतम की प्यारी ! अपने रूठे हुये पति को मनाने चली

हो। ज्ञान का लहँगा और प्रेम की साड़ी सँवारकर, सत्य की चोली दृढ़ता के बन्दों से बाँधकर, नाम के गहने अंग-अंग में पहनकर, हर्ष का हार, और प्रियतम के रूप का अंजन आँखों में आँजकर, तुम अपने रूठे हुये पति को मनाने चली हो।

[३३]

मोरे पिछवरवाँ लवँगिया के बगिया लवँग फूलै आधी राति रे।
बहि लवँगा के शीतल बयरिया महँकै बडे भिनुसार॥ १॥
तेहि तर उतरा है सोनरा बेटौना गहना गढै अनमोल रे।
सभवा बैठ बाबा गहना गढ़ावें बिछुआ मे घुँघुरू लगाय॥ २॥
गढु सोनरा कंगन गढु तुहु बेसर तिलरी मे हीरा जड़ाय रे।
मानिक मोती से बेंदिया सँवारहु चमकै बेटी के माँग॥ ३॥
यतना पहिनि बेटी चौके जे बैठें बेटी के मन दलगीर रे।
गोर बदन बेटी साँवर होयगा मुँहवा गयल कुम्हिलाय॥ ४॥
की तोरे बेटी रे दायज थोरा की रे भैया बोलैं रिसियाय रे।
की तोरे बेटी रे सेवा से चुकल्यू काहे तोरा मुँहवा उदास॥ ५॥
ना मोरे बाबा रे दायज थोरा नाहीं भैया बोलैं रिसियाय रे।
ना मोरे बाबा हो सेवा में चुकल्यो यहि गुन मुँहवा उदास॥ ६॥
तब तौ कह्यो बाबा नियरे बिअहबै बिअह्यो देसवा के ओर रे।
नैहर लोग दुलम हुइहैं बाबा रहबै बिसूरि बिसूरि॥ ७॥
बोलिया तौ बस तुहू बोल्यू बेटी मरल्यू करेजवा में बान।
अगिले के घोड़वा बीरन तोर जैहैं पीछे लागे चारि कहार॥ ८॥

मेरे पिछवाड़े लौंग का बाग है। लौंग आधीरात मे फूलती है। उस लौंग से शीतल हवा आती है और बड़े सबेरे वह खूब महकती है॥ १॥

उस लौंग के नीचे सोनार का लड़का उतरा है, जो बड़े अनमोल गहने गढ़ता है। सभा में बैठे हुये पिताजी गहना गढ़ा रहे हैं और

बिछुवे में घुँघुरू लगवा रहे हैं ॥ २ ॥

हे सोनार ! कगन गढ़ दो। बेसर बना दो। तिलरी में हीरा जड़ दो। बेंदी को मानिक और मोती से सँवार दो। जिससे मेरी बेटी की माँग चमक उठे ॥ ३ ॥

इतने गहनें पहनकर बेटी बेदी पर बैठी। पर उसका मन बहुत उदास था। बेटी का गोरा शरीर साँवला हो गया ,और मुँह कुम्हला गया ॥ ४ ॥

बाप ने पूछा—हे बेटी ! तू उदास क्यों है ? क्या दहेज थोड़ा है ? या भाई क्रोध से बोलता है ? या मैं किसी सेवा में चूक गया ? तेरा मुँह उदास क्यों है ? ॥ ५ ॥

बेटी ने कहा—हे पिता ! न तो दहेज थोड़ा है, न भाई ही क्रोध से बोलते हैं, न तुम्हीं सेवा में चूके। मैं तो इस कारण से उदास हूँ कि, ॥ ६ ॥

पहले तो तुम कहते थे कि कहीं निकट ही विवाह करेंगे। पर तुम ने तो देश के ओर विवाह दिया। मेरे लिये अब तो नैहर के लोग दुर्लभ हो जायेंगे। मैं बिसूर बिसूर कर रह जाऊँगी ॥ ७ ॥

बाप ने कहा—बेटी ! तुमने ऐसी बात कहकर मेरे कलेजे में तीर मार दिया। बेटी ! घबड़ाओ नहीं। आगे-आगे तुम्हारा भाई घोड़े पर चढ़कर जायगा। उसके पीछे तुमको लाने के लिये चार कहार भी जायेंगे ॥ ८ ॥

[३४]

मोरे पिछरवाँ लवँगिया की बगिया लवँगा फूलै आधिराति रे।
तेहि तर उतरैं दुलहा दुलरुवा तुरहीं लवँगिया के फूल ॥ १ ॥
भितरा से निसरैं बेटी के भैया हाथे धनुख गुख पान रे।
कस तुहू आये मोरे दरवजवा तुरहु लवँगिया के फूल ॥ २ ॥

मितरॉ से बोली बेटी छुलाछनि हथवा गजरा मुख पान रे।
जिनि भैया डाटौ आपन बहनोइया फुलवा मैं देव्यों बटोरि॥ ३॥

मेरे पिछवाड़े लौंग का बाग़ है। जिसमें आधीरात में लौंग फूलती है। उस बाग में लौंग के नीचे प्यारे दुलहा उतरे हैं और लौंग का फूल तोड़ रहे हैं॥ १॥

भीतर से कन्या का भाई हाथ में धनुष और मुँह में पान लिये निकला। उसने पूछा—तुम कौन हो? मेरे द्वार पर क्यों आये हो? और लौंग का फूल क्यों तोड़ रहे हो?॥ २॥

भीतर से सुलक्षणा कन्या ने, जिसके हाथ में फूलों का गजरा और मुँह में पान है, कहा—हे भाई! अपने बहनोई को मत डाटो। मैं फूल बटोर दूँगी॥ ३॥

स्त्री अपने पति के मान-अपमान और सुख-दुख सब मे संगिनी है। भाई के मुँह से पति का अपमान होता देखकर पति का पक्ष लेना अब स्त्री के लिये स्वाभाविक हो गया है।

[३५]

सौना भदौंना की रतिया रे बाधा भईसि छँदानेन छुटान।
सोवत सामी मैं कैसे जगावउँ नींद अकारथ जाय॥ १॥
कहत कहत मैं हारेउँ रे राजा बात न मोरि उनाउ।
भइँस बेंचि सामी गहना गढ़उतेउ सोनेउ गोड़ पसारि॥ २॥
एक बचन तोसे कहौं मोरि धनियाँ औरे सुनौ मन लाय।
तुहऊँ बेंचि के भईसी बेसहतेउँ पसरा चरउतेउँ आधीराति॥ ३॥

स्त्री कहती है—सावन भादों की घोर अँधेरी रात, छानी (पैर मे रस्सी लगाकर खूँटे से बँधी) हुई भैंस छूट गई। हाय! मैं सोते हुये स्वामी को कैसे जगाऊ? उनकी नींद व्यर्थ जायगी न?॥ १॥

हे मेरे राजा! मैं कहते-कहते थक गई। तुम मेरी बात सुनते ही

नहीं। भैंस बेंचकर तुम मेरे लिये यदि गहना गढ़ा देते, तो टाँग फैलाकर आराम से सोते ॥ २ ॥

पति सोते-सोते सुन रहा था। उसने कहा— हे मेरी प्राणेश्वरी! तुम मेरी एक बात सुनो तो कहूँ। मेरी बड़ी लालसा है कि तुमको बेंचकर एक भैंस और खरीद लूँ और आधीरात को पसर* चराया करूँ ॥ ३ ॥

इस गीत में किसान स्त्री-पुरुष का विनोद बड़ा ही रोचक है। स्त्री को गहने का बड़ा चाव है और पुरुष को भैंस पालने का।

[३६]

बेरिया क बेर मैं बरजेउँ रे बाबा झँझरा मड़उना जिन छाये।
झँझरे मडउना सुरज दह लागिहैं गोरा बदन कुम्हिलाय ॥ १ ॥
कहहु त मोरी बेटी छत्र तनाऊँ कहहु त अँचल ओढ़ाय।
कहहु त मोरी बेटी मंदिल छवाऊँ काहे के लागै घाम ॥ २ ॥
काहे के मोरे बाबा छत्र तनउवे काहे के अचल ओढ़ाय।
काहे के बाबा मंडिल छवौबे आजु के रतिया बसेर ॥ ३ ॥
होत बिहान पह फाटत बाबा जावै परदेसिया के साथ।
काहे के मोरे बाबा छत्र तनौबा काहे क मडिल छवाव ॥ ४ ॥
टाटक नयनूँ खवायउँ रे बेटी दुधवा पियायउँ सढियार।
एक्हू न गुन मानेउ मोरी बेटी चलिउ परदेसिया के साथ ॥ ५ ॥

पुत्री कहती है—हे पिता! मैंने तुमको बारम्बार रोका कि झाँझर माड़ौ मत छवाना। झाझर माड़ौ मे सूर्य को धूप लगेगी और गोरा शरीर कुम्हला जायगा ॥१॥

पिता कहता है—हे बेटी! कहो तो छत्र तनवा दूँ। कहो तो अचल ओढ़ा दूँ; कहो तो छत बनवा दूँ; घाम क्यों लगे? ॥२॥

पुत्री कहती है—हे पिता! क्यों छत्र तनाओगे? क्यों आँचल ओढ़ा-

---

* रात मे भैंस चराने को पसर कहते हैं।

ओगे ? और क्यों छत्र बनवाओगे ? आज ही की रात तो इस घर में मेरा बसेरा है ॥३॥

कल पौ फटते ही मैं तो परदेशी के साथ चली जाऊँगी। क्यों तुम छत्र तनाओगे और क्यों छत बनवाओगे ? ॥४॥

पिता कहता है—हे बेटी ! मैंने तुमको ताजा मक्खन खिलाया। साढ़ीदार दूध पिलाया। तुमने एक भी एहसान नहीं माना और तुम परदेशी के साथ चली जा रही हो ॥५॥

इस गीत में विवाहिता पुत्री के लिये पिता के हृदय की एक गहरी कलक छिपी हुई है।

[३७]

हटियै सेंदुरा महँग भये बाबा चुँदरी भये अनमोल।
यहि सेंदुरा के कारन रे बाबा छोड़ेउँ मैं देश तुम्हार ॥ १ ॥
बाबा कहैं बेटी दस कोस बियैहौं भैया कहैं कोस पाँच।
माया कहैं बेटी नगर अजोध्या नित उठि प्रात नहाउँ ॥ २ ॥
बाबा दिहिनि अनधन सोनवाँ माया दिहिनि लहर पटोर।
भैया दिहिनि चढ़न कै हाँ घोड़वा भौजी ने अपना सोहाग ॥ ३ ॥
बाबा कै सोनवाँ नवै दिन खावै फटि जैहैं लहर पटोर।
भैया कै घोड़वा नगर खोदैवों भौजी कै बाढ़ै अहिवात ॥ ४ ॥
बाबा कहैं बेटी नित उठि आयेव माया कहैं छठे मास।
भैया कहैं बहिनी काज बियाहे भौजी कहैं कस बात ॥ ५ ॥

हे बाबा ! बाज़ार में सिन्दूर महँगा हो गया। चुँदरी अनमोल हो गई। इसी सिन्दूर के कारण मैंने तुम्हारा देश छोड़ दिया ॥१॥

बाबा ने कहा—बेटी ! तुम्हें दस कोस की दूरी पर ब्याहूँगा। भाई ने कहा—पाँच कोस पर। माँ ने कहा—बेटी ! अयोध्या में तेरा ब्याह करूँगी, जहाँ रोज प्रातःकाल उठकर स्नान करने आऊँगी ॥२॥

बाबा ने अन्न, धन और सोना दिया। माँ ने लहरदार रेशमी धोती दी। भाई ने चढ़ने के लिये घोड़ा दिया। भौजी ने अपना सुहाग दिया अर्थात् सिन्दूर दिया ॥३॥

बाबा का सोना नौ ही दिन खाऊंगी। रेशमी धोती फट जायगी। भैया के घोड़े को नगर में दौड़ाऊंगी और भौजी का सुहाग बढ़ता रहेगा ॥४॥

बाबा ने कहा—बेटी ! रोज़ आती जाती रहना। माँ ने कहा—छठे छमासे आना। भैया ने कहा—कभी कोई काम-काज पड़े तो आना। भौजी ने कहा—आने की ज़रूरत ही क्या है ? ॥५॥

[३८]

सोवत रहलिउँ मैं मैया के कोरवॉ मैया के कोरवॉ हो।
मोरी भौजी जे तेल लगावैं तौ मुड़वा गुँधन करैं हो ॥ १ ॥
आई हैं नाउनि ठकुराइनि तौ बेदिया चढ़ि बैठी हो।
वे तौ ललित मेहावरि देय तौ चलन चलन करै हो ॥ २ ॥
एक कोस गई दुसर कोस तिसरे मा बिन्द्रावन हो।
धना झालरि उघारि जब चितवैं मोरे बाबा के कोई नाहीं हो ॥ ३ ॥
लिल्ले घोड़े चितकाबर दुलहा जे बोले हो।
उनके हथवा सबज कमान अपान हम होई हो ॥ ४ ॥
भूँख मा भोजन खियैहौं मैं पियासे मा पानी देहौं हो।
धनियॉ रखबों मैं हियरा लगाय बबैया बिसरि जैहैं हो ॥ ५ ॥

मैं माँ की गोद में सोया करती थी। मेरी भौजी तेल लगाकर मेरे बाल गूँथ दिया करती थी ॥ १ ॥

यह नाइन ठकुराइन आई है। वेदी चढ़कर बैठी है। बहुत सुन्दर महावरि लगाती है और बार-बार चलने को कहती है ॥ २ ॥

एक कोस गई, दूसरे कोस गई, तीसरे में वृन्दावन मिला। कन्या जब झालर उठाकर देखा तो बाबा की तरफ का कोई दिखाई पड़ा ॥ ३ ॥

नीले चितकबरे घोड़े पर दुलहा चढ़े थे। उनके हाथ मे हरे रंग का नुप था। उन्होने कहा—तुम्हारा मैं हूँ ॥ ४ ॥

भूख लगेगी, मै खिलाऊँगा। प्यास लगेगी, पानी पिलाऊँगा। हे पारी स्त्री! तुमको हृदय मे लगाकर रक्खूँगा। तुम अपने बाबा को भूल जाओगी ॥ ५ ॥

[३६]

ोरे पिछवारे लौंग का विरवा लौंग चुअै आधी रात।
ौंग विनि विनी ढेर लगावों लादत हैं बनिजार ॥ १ ॥
ादि चले बनिजार के बेटा की लादि चले पिया मोर।
महूँ को पलकी सजावो रे पिआरे मोरा तोरा जुरा है सनेह ॥ २ ॥
ूखेन मरिहौ पिआसेन मरिहौ पान विना होठ कुम्हिलाय।
ुसकी साथरी डासन पैहौ अग छुलिय छुलि जाये ॥ ३ ॥
ूख मैं सहिहौं पिआस मैं सहिहौं पान डारौं विसराय।
ुम्हरे साथ पिआ जोगिनि होइहौं ना सँग माई न बाप ॥ ४ ॥

ेरे पिछवाड़े लौंग का पेड़ है। जिसमें आधीरात को लौंग चूती (टपकती) है। मै लौंग बीन-बीन कर ढेर लगाती हूँ, और मेरा पति, ो बनजारा (वाणिज्य करने वाला) है, उसे लादता है ॥ १ ॥

मेरा पति, जो व्यापारी का बेटा है, लौंग लादकर चला। हे मेरे ाणप्यारे! मेरे लिये भी पालकी सजाओ। मुझे भी साथ ले चलो। म और तुम तो स्नेह से बँधे है न? ॥ २ ॥

पति ने कहा—हे प्यारी! भूख से मरोगी। प्यास से मरोगी। पान ेना ओंठ कुम्हला जायगा। कुश की चटाई सोने को पाओगी। जिस

सारा शरीर छिल जायगा ॥ ३ ॥

स्त्री ने कहा—मैं भूख सहूँगी। प्यास सहूँगी। पान को भूल जाऊँगी। हे प्यारे! तुम्हारे साथ मैं जोगिनी होकर रहूँगी। न मैं माँ के के साथ रहूँगी, न बाप के ॥ ४ ॥

सच है, पतिव्रता को पति के सिवा गति कहाँ? जैसे छाया काया से अलग नहीं हो सकती, वैसे ही सती अपने पति से अलग नहीं रह सकती।

[४०]

माहे सुगहा जे भोरवैं कोइलरि देई, चलौ कोइलरि हमरे देश।
अनन्दा वन छाड़ि देव ॥१॥
माहे जो मैं चलौं सुगहा तोरे देश, कवन कवन सुख देवो।
अनन्दा बन छाड़ि देव ॥२॥
माहे आम जे पाके महुआ जे टपकैं, डरिया बैठि सुख लेव।
अनन्दा बन छाड़ि देव ॥३॥
माहे दुलहा जे भोरवैं दुलहिनि का, चलौ दुलहिनि हमरे देश।
बवैया घर छाडि देव ॥४॥
माहे जो मैं चलौं दुलहा तोरे देश, कवन कवन सुख देवौ।
बवैया घर छाडि देव ॥५॥
जोगउब जस घिउ गागरि, हिये बिच राखब।
बवैया घर छाड़ि देव ॥६॥

सुआ कहता है—हे कोयल! हमारे देश को चलो। आनन्द-वन को छोड़ दो ॥१॥

कोयल कहती है—हे सुआ! मैं तुम्हारे देश को चलूँ, तो मुझे तुम क्या-क्या सुख दोगे? मैं आनन्द-वन छोड़ दूँगी ॥२॥

सुआ कहता है—हमारे देश में आम पके हैं। महुआ टपक रहा है। डाल पर बैठकर सुख भोगो। आनन्द-वन छोड़ दो ॥३॥

इसी प्रकार दुल्हा दुलहिन को फुसला रहा है—हे दुलहिन ! हमारे देश को चलो। अपने पिता का घर छोड़ दो ॥४॥

दुलहिन पूछती है—अच्छा, यदि मैं तुम्हारे देश चलूँ, तो हे दुलहा ! तुम मुझे क्या-क्या सुख दोगे ? ॥५॥

दूल्हा कहता है—तुमको इस तरह सँभाल कर रक्खूँगा जैसे घी का घड़ा। और तुमको मैं हृदय में रक्खूँगा। पिता का घर छोड़कर मेरे देश को चलो ॥६॥

घी के घड़े की उपमा देहात के लोगों को बड़ी प्यारी जान पड़ेगी। किसान घी के घड़े को बड़ी सँभाल से रखता है।

[४१]

कहवाँ ते सोना आये कहवाँ ते रूपा आये हो।
एहो कहवाँ ते लाली पलँगिया पलँगिया जगमोहन हो ॥ १ ॥
कासी ते सोना आये गयाजी ते रूपा आये हो।
एहो सैयाँ सँग लाली पलँगिया पलँगिया जगमोहन हो ॥ २ ॥
भितरे ते माया जो रोवइँ अँचलेमाँ आँसू पोंछइँ हो।
एहो मोरी बिटिया चली परदेस कोखिय मोरी सूनी भई ना ॥ ३ ॥
बैठक से बाबू जी रोवइँ पटुके माँ आँसू पोंछैं हो।
मोरी धेरिया चली परदेस भवन मोरा सून भये ना ॥ ४ ॥
भितरे ते भैया जो रोवइँ पगड़िया माँ आँसू पोंछइँ हो।
मोरी बहिनि चली परदेस पिठिया मोरी सून भई ना ॥ ५ ॥
ओबरी ते भौजी जो रोवइँ चुनरिया माँ आँसू पोंछइँ हो।
एहो मोर ननदी चली परदेस रसोइयाँ मोरी सूनि भई ना ॥ ६ ॥

सोना कहाँ से आया ? रूपा कहाँ से आया ? यह लाल पलँग कहाँ से आई ? यह तो ऐसी सुन्दर है कि संसार का मन मोह लेती है ॥१॥

काशी से सोना आया। गयाजी से रूपा आया है। स्वामी के

साथ लाल पलँग आई है, जो संसार का मन मोह लेती है ॥२॥

भीतर माँ रो रही हैं और आँचल से आँसू पोंछ रही हैं। हाय ! मेरी बेटी परदेश चली। मेरी कोख सूनी हो गई है ॥३॥

बैठक में बाबू जी रो रहे हैं। दुपट्टे में आँसू पोंछ रहे हैं। हा ! मेरी कन्या परदेश जा रही है। मेरा घर सूना हो गया ॥४॥

भीतर भैया रो रहे हैं। पगड़ी से आँसू पोंछ रहे हैं। हा ! मेरी बहन परदेश चली। मेरी पीठ सूनी हो गई ॥५॥

भीतर कोठरी में भौजी रो रही हैं। चूँदरी में आँसू पोंछ रही हैं। हा ! मेरी ननद परदेश चली। मेरी रसोई सूनी हो गई ॥६॥

[४२]

सोवत रहिउँ मैया के कोरवाँ निंदिया उचटि गई मोरि।
केकरे दुआरे मैया बाजन बाजै केकर रचा है वियाह ॥ १ ॥
तुहीं बेटी आउरि तुहीं बेटी बाउरि तुहीं बेटी चतुर सयानि।
तुमरे दुआरे बेटी बाजन बाजै तुमरइ रचा है वियाह ॥ २ ॥
नाहीं सिखेन मैया गुन अवगुनवाँ नाहीं सिखेन राम रसोईं।
सासु ननदि मोर मैया गरियावैं मोरे बूते सहि नहिं जाइ ॥ ३ ॥
सिखि लेउ बेटी गुन अवगुनवाँ सिखि लेउ राम रसोईं।
सासु ननदि तोर मैया गरियावैं लै लिहौ अँचरा पसारि ॥ ४ ॥

मैं माँ की गोद में सो रही थी। मेरी नींद उचट गई। हे माँ ! किसके दरवाजे पर बाजा बज रहा है ? किसका विवाह होगा ? ॥१॥

माँ ने कहा—बेटी ! तुम्हीं बावली हो, तुम्हीं सयानी हो। हे बेटी ! तुम्हारे ही दरवाजे पर बाजा बज रहा है। तुम्हारा ही व्याह होगा ॥२॥

बेटी ने कहा—हे माँ ! मैंने कोई गुण सीखा, न अवगुण। और रसोई बनाना सीखा। ससुराल में सास और ननद जब मेरी माँ को गालियाँ देंगी, तब मुझसे तो नहीं सहा जायगा ॥३॥

माँ ने कहा—बेटी ! गुण-अवगुण सब सीख लो। रसोई बनाना भी सीख लो। हे बेटी ! यदि सास और ननद गाली दें, तो आँचल पसार कर ले लेना ॥४॥

क्षमा-शीलता की कैसी मनोहर शिक्षा माता ने पुत्री को दी है ! क्षमा ही गृहस्थी की शान्ति का मूल है।

[४३]

कोठा उठाओ बरोठा उठाओ चौमुख रचहु दुआर।
बड़े बड़े पण्डित रे बेहन ऐहैं निहुरैं न कंत हमार ॥ १ ॥
रोजै तो बेटी रे मोरी चौपरिया आजु काहे मन है उदास।
की तोर बेटी रे अनधन थोर हैं की पायेउ दायेज थोर।
की तोर बेटी रे सुन्दर वर नाहीं काहेक मन है उदास ॥ २ ॥
नाहीं मोर बाबा अनधन थोर भे नाहीं पायउँ दायेज थोर।
नाहीं मोर बाबा सुन्दर वर नाहीं सुनि परैं दारुनि सासु ॥ ३ ॥
राजा कै राज रोज रे बेटी परिजा के छठि मास।
सासु कै राज दसै दिन बेटी आखिर राज तुम्हार ॥ ४ ॥

कोठा उठाओ। बरामदा तैयार करो। चारों ओर द्वार लगाओ। बड़े-बड़े पण्डित विवाह में आयेंगे। देखो, मेरे स्वामी को झुकना न पड़े ॥१॥

हे बेटी ! रोज तो तू मेरी चौपाल में खुश रहती थी। आज तेरा मन उदास क्यों है ? क्या तेरे अन्न-धन की कमी है ? या दहेज कम मिला ? या तेरा वर सुन्दर नहीं ? तू उदास क्यों है ? ॥२॥

बेटी ने कहा—हे बाबा ! न मेरे अन्न-धन की कमी है, न दहेज ही कम मिला और न वर ही कुरूप है। सुनती हूँ, मेरी सास बड़े कठोर स्वभाव की हैं। इसी से मैं उदास हूँ ॥३॥

बाप ने कहा—राजा का राज कभी खाली नहीं रहता। प्रजा का

आवहु कोइरिनि हमारी महलिया रे
पियहु सुरही गाइ के दुध रे।
सोवहु कोइरिनि हमरी सेजरिया
कचरहु मगही ढोली पान रे ॥ ५ ॥
अइसन बोली राजा फेरि जनि बोलेउ
भइलीं धरम कइ बेर रे।
जोहत होइहें मोरीं सासु ननदिया
दुधवा दुहन कइ जूनि रे ॥ ६ ॥
पोहता पोहन कइ टटिया बिनइबैं हो
मुरई के बेवेंड़ा देब रे।
अपनो कोइरी लेइ सुतबों सेजरिया
हँसि खेलि करिबों बिहान हो ॥ ७ ॥

हे बाबा! पाटन नगर ऊँचाई पर बसा हुआ है। उसमें कोइरी और कुम्हार बस गये हैं। महल के आसपास हेला (महतरों की एक शाखा, जो देहात में सूप और डलिया बनाया करते हैं) बस गये हैं, जो अनमोल डलिया बिनते हैं। हे हेला भाई! मेरे लिये एक डलिया बना दो। उसमें साग रखकर बेंचने जाऊँगी ॥ १ ॥

साग बेंचने के लिये वह एक वन में गई। दूसरे वन में गई। तीसरे वन में बाजार लगता था। बाजार के राजा ने अपने महल में से पुकारा—तुम क्या बेंचने जा रही हो? ॥ २ ॥

किस चीज की तुम्हारी डलिया है? उस पर किस कपड़े का ओहार (परदा) पड़ा है? तुम्हारे सिर पर गेंडुली (घड़े के नीचे रखने के लिये गोल बटी हुई घास) किस चीज की है? तुम क्या बेंचने जा रही हो ॥ ३ ॥

कोइरिन ने कहा—मेरी डलिया तो बांस की है। उस पर रेशम का

ओहार पड़ा है। मेरे सिर पर रेशम की गेंडुली है। मैं भाग थेर जा रही हूँ ॥ ४ ॥

राजा ने कहा—हे कोइरिन ! मेरे महल में आओ न? मजे से सुरा गाय का दूध पिओ। मेरी सेज पर सुख से सोओ और मघई (मगध का) पान कचरो (खाओ) ॥ ५ ॥

कोइरिन ने कहा—हे राजा ! एक बार बोल लिया तो बोल लिया, फिर ऐसी बात न बोलना। धर्म की वेला (संध्या) हुई है। मेरी सास और ननद मेरी राह देखती होंगी। अब दूध दूहने की वेला आ गई है ॥ ६ ॥

मुझे तुम्हारा महल नहीं चाहिये। पोस्ते (अफीम के पौधे) की टट्टी बनवाऊँगी। उसमें मूली का बँवड़ा लगवाऊँगी। अपने कोइरी को लेकर सेज पर सोऊँगी और हँस-खेलकर सवेरा कर दूँगी ॥ ७ ॥

ग़रीबिनी अपने झोंपड़े में, अपनी मामूली आमदनी ही में संतुष्ट है। चरित्र बेंचकर वह न सुरा गाय का दूध चाहती है, न महल, और न सुख की सेज। पोस्ते की टट्टी में मूली का बँवड़ा उसे राजमहल से कहीं अधिक मनोहर लगता है। सच है—

टूटि खाट घर टपकत टटिओ टूटि।
पिय कै बाँह सिरहनवाँ सुख कै लूटि ॥

महल में राजा है, पर 'पिय' तो नहीं है। जहाँ 'पिय' है, वहीं सुख है।

[४३]

अरे अरे काला भवँरवा आँगन मोरे आवो।
भवँरा आजु मोरे काज बियाह नेवन दै आवो ॥ १ ॥
नेवत्यों मैं अगन परगन औ ननिआउर।
एक नहिं नेवत्यो बिरन भैया जिनसे मैं रूठिऊँ ॥ २ ॥

सासु भेंटैं आपन भइया ननद आपन बीरन।
कोइलरि छतिया उठी घहराय मैं केहि उठि भेंटौं ॥ ३ ॥
अरे अरे काला भवँरवा आँगन मोरे आवो।
भँवरा फिरि से नेवत दै आवो बीरन मोर आवैं ॥ ४ ॥
अरे अरे जागिनि भाँटिनि जानि कोई गावो।
आजु मोरा जियरा विरोग बीरन नहिं आये ॥ ५ ॥
अरे अरे चेरिया लौंडिया दुवारा झाँकि आवो।
केहकर घोड़ा ठहनाय दुवारे मोरे भीर भये ॥ ६ ॥
अरे अरे रानी कौसिल्या बीरन तुमरे आये।
उनहीं के घोडा ठहनाय दुवारे अति भीर भये ॥ ७ ॥
आगे आगे चौरा चँगेरवा पियरी गहागह।
लिल्ले घोड़े भैया असवार तो डँडिया भावुज मोरी ॥ ८ ॥
अरे अरे जागिनि भाँटिनि सभै कोई गावो।
मोरे जिअरा भये हैं हुलास बिरन मोर आये ॥ ९ ॥
अरे अरे सासु गोसाईं करहिया चढ़ावो।
आजु मोरा जियरा हिलोरै बीरन मोर आये ॥१०॥
अस जिन जानौ बहिनी त भैया दुखित अहै।
बहिनी बेंचबौं मैं फाँडे क कटरिया चौक लइ अइबेउँ ॥११॥
अस जिन जानौ ननदी की भौजी दुखित अहैं।
ननदी बेचबौं मैं नाके क बेसरिया पिअरिया लइके अइबै ॥१२॥
कहवाँ उतारौं चौरा चँगरवा पियरी गहागह।
कहवाँ भेंटौं बीरन भैया तौ कहवाँ भावुज मोर ॥१३॥
ओबरी उतारौ चौरा चँगेरवा पियरी गहागह।
डेवढी भेंटौं बीरन भैया तौ आँगना भावुज मोर ॥१४॥

लहँगा लै आये वीरन भैया पिअरी कुसुम कै।
अँगिया लै आईं मोरि भौजी चौक पर कै चूँदरि ॥१५॥
हँसि हँसि पहिरिन ओढ़िन सुरुज मनाइन।
बढ़इ बवैया तोर बेल मान मोर राखेउ ॥१६॥

हे काले भौंरा! मेरे आँगन में आओ। हे भौंरा! आज मेरे यहाँ विवाह का कार्य है। तुम जाकर निमन्त्रण दे आओ ॥ १ ॥

स्त्री मन में अनुभव करती है—मैंने गाँव और परगने भर को न्योता दिया। पर भाई को नहीं न्योता दिया, जिनसे मैं रूठी हूँ ॥ २ ॥

सास और ननद अपने-अपने भाइयों से भेंट कर रही हैं। मेरी छाती घहरा उठती है। हाय! मेरे भाई नहीं आये। मैं किसको भेंटूं? ॥ ३ ॥

वह पछताती है और कहती है—हे काले भौंरा! मेरे आँगन में आओ। हे भौंरा! भाई को फिर से न्योता दे आओ कि वह आवे ॥ ४ ॥

अरी जागिनो! अरी भाटिनो! कोई गाओ मत। आज मेरे मन में बड़ा दुःख है। मेरा भाई नहीं आया ॥ ५ ॥

अरी दासियो! जाओ, द्वार पर झाँककर देख आओ। किसका घोड़ा हिनहिना रहा है? मेरे द्वार पर किसलिये भीड़ हुई है? ॥ ६ ॥

दासियों ने कहा—हे रानी कौशिल्या? तुम्हारे भाई आ गये। उन्हीं का घोड़ा हिनहिना रहा है और उन्हीं के लिये द्वार पर भीड़ लगी है ॥७॥

आगे आगे चावल से भरा हुआ दँगेरा (काँस या मूँज का बना हुआ बड़ा टोकरा) और गहरे रंग की पीली धोती है। उसके पीछे नीले घोड़े पर सवार मेरा भाई है और पालकी में मेरी भौजाई है ॥८॥

अरी जागिनो! अरी भाटिनो! सभी गाओ। आज मेरे हृदय में हर्ष उमड़ रहा है। मेरा भाई आया है ॥ ९ ॥

अरी मालिकन मामजी! कड़ाही चढ़ाओ। आज मेरे हृदय में आनन्द

उमड़ रहा है। मेरा भाई आया है ॥ १० ॥

भाई ने कहा—हे बहन! ऐसा मत समझना कि भाई ग़रीब है। मैं अपने कमर की कटारी बेंचकर चौक ले आता ॥ ११ ॥

भौजाई ने कहा हे—ननद! ऐसा मत समझना कि भौजाई ग़रीब है। मैं अपने नाक की बेसर बेंचकर पियरी (पीली साड़ी) ले आती ॥१२॥

यह चावल भरा हुआ चगेरा कहाँ उतारूं? और यह पियरी रक्खू? मैं अपने प्यारे भाई से कहाँ भेंट करूं? और अपनी भौजाई से कहाँ मिलू? ॥ १३ ॥

चावल का चँगेरा कोठरी में रख दो। पियरी भी वहीं रखदो। बैठक में भाई से और आँगन में भौजाई से भेंट करो ॥ १४ ॥

भाई लहगा और कुसुमी रङ्ग की पिअरी ले आये हैं। भौजाई चोली और चौक पर पहनने की चूनरी ले आई हैं ॥ १५ ॥

स्त्री ने हँस-हँसकर कपड़े पहने। फिर वह सूर्य को मनाने लगी—हे सूर्य! मेरे बाबा की लता खूब फैले। जिन्होंने आज मेरा मान रख लिया ॥ १३ ॥

इस गीत में भाई से रूठी हुई बहन के मन का उतार-चढ़ाव ऐसा चित्रित किया गया है कि क्या कोई महाकवि वैसा कर सकेगा? ससुराल में बहू को अपने मायके के मान-अपमान का बड़ा ख्याल रहता है। सास और ननद को अपने भाइयों से मिलते देखकर बहू का रूठा हुआ हृदय अपने भाई के लिये छटपटाने लगा। अंत में भाई आया तो बहन ने उसके लिये कितना हर्ष प्रकट किया है, यह एक-एक पंक्ति से छलक रहा है।

भाई का यह कथन भी ध्यान देने योग्य है कि—'मैं गरीब हूँ तो क्या हुआ? मैं अपने कमर की कटारी बेंच कर न्योता लेकर आता।' अहा! कभी कटारी भी हमारा धन था। और वह शरीर और धन की

ही नहीं, सामाजिक अभिमान की भी रक्षा करता था।

[४७]

आधे तलवा माँ हंस चूनैं आधे माँ हंसिनि।
तबहूँ न तलवा सोहावन एक रे कमल बिन रे॥ १॥
आधे बगिया माँ आम बौरैं आधे मा इमली बौरे हो।
तबहूँ न बगिया सोहावनि एक रे कोइलि बिन रे॥ २॥
आधी फुलवरिया गुलबवा आधी म केवड़ा गमकइ।
तबहूँ न फुलवा सोहावन एक रे भँवर बिन॥ ३॥
सोने क सुपवा पछोरैं मोतिया हलोरैं।
तबहूँ न पुरुष सोहावन एक रे सुनार बिन॥ ४॥
आधे माड़ौ माँ गोत बैठै आधे माँ गोतिन बैठैं हो।
तबहूँ न माड़ौ सोहावन एक रे ननद बिन रे॥ ५॥
बेदिया ठाढ़ पण्डितवा कलस कलस करैं हो।
बेदिया ठाढ़ कन्हैया बहिनि गोहरावैं हो॥ ६॥
कहाँ गइउ बहिनी हमार कलस मोर गाँठौ हो।
निचवा से डोलिया ऊँचवा गये पात लहराने हो॥ ७॥
अँगना से भैया भीतर गये भौजी से मत करैं हो।
धनिया आवति हैं बहिनि हमार गरब जिनि बोलेउ
निहुरि पैयाँ लागेउ हो॥ ८॥
आवौ ननदी गोसाँइनि पैयाँ तोरे लागी हो।
बैठो माँझ मड़ावा कलस मोर गाँठौ हो॥ ९॥
भौजी तीनिउ बरन मोर नेग तीनिउ हम लेबै हो।
लेबै भौजी सोरहो सिंगार रहँसि घर जाबै हो॥१०॥
देबिउँ मैं तीनिउ नेग औ सोरहो सिंगारउ।
हमरे हरी जी क परम पियारि बोहार मन राखब॥११॥

आधे ताल मे हस चुन रहे हैं। आधे में हसिनी चुन रही हैं। फिर भी कमल बिना ताल सुन्दर नहीं लगता है ॥ १ ॥

आधे बाग में आम बौरे हैं। आधे में इमली फूल रही है। पर कोयल बिना बाग सुन्दर नहीं लगता है ॥ २ ॥

आधी फुलवारी मे गुलाब खिल रहा है। आधी में केवड़ा महक रहा है। पर बिना भौंरे के फुलवाड़ी सुहावनी नहीं लगती है ॥ ३ ॥

घर में इतना धन है कि सोने के सूप मे मोती पछोरे और हलोरे जाते हैं। पर एक सुन्दरी स्त्री बिना पुरुष शोभायमान नहीं लगता ॥ ४ ॥

आधे माँडौ में गोत्रवाले बैठे हैं, आधे में गोतनियाँ हैं। फिर भी एक ननद बिना माँडौ सूना-सा लगता है ॥ ५ ॥

वेदी पर खड़े-खड़े पण्डित 'कलश लाओ' 'कलश लाओ' की पुकार मचाये हुये हैं। वेदी पर खड़ा हुआ भाई बहन को पुकार रहा है ॥ ६ ॥

मेरी बहन कहाँ है? बहन! आओ और कलश गोंठो (चित्रित करो)। इतने में नीचे से डोली ऊपर आई और पत्ते खड़खड़ाये ॥ ७ ॥

भाई आँगन से अपनी स्त्री की कोठरी में गया और स्त्री को समझाने लगा—हे मेरी प्यारी स्त्री! मेरी बहन आ रही है। देखना, उसके सामने अभिमान की कोई बात न बोलना। झुककर, उसका पैर छूकर, उसे प्रणाम करना ॥ ८ ॥

ननद के आने पर स्त्री ने कहा—हे ननद! आओ। मैं तुमको पैर छूकर प्रणाम करती हूँ। मांड़ो के मध्य मे बैठो और कलश गोंठो ॥ ९ ॥

ननद कहती है—हे भौजी! मेरे तीन नेग हैं। मैं तीनों लूँगी। हे भौजी! मैं सोलहों शृङ्गार की चीजें लूँगी, और प्रसन्न होती हूई घर जाऊँगी ॥ १० ॥

भौजाई ने कहा—हे ननद! मै तुमको तीनों नेग दूँगी और सोलहों शृङ्गार की चीजें भी दूँगी। तुम मेरे प्राणनाथ की परम प्यारी बहन

हो। मैं तुम्हारा मन अवश्य रक्खूँगी ॥ ११ ॥

जान पड़ता है, बहन बेचारी गरीब थी। इसी से भाई ने लपककर अपनी स्त्री को पहले ही से सावधान कर दिया कि बहन के सामने गर्व की कोई बात न बोलना। बल्कि नम्रतापूर्वक झुककर प्रणाम करना। धन में हीन, किन्तु पद में मानी व्यक्ति को धनी कुटुम्बी का अभिमान असह्य हो जाता है। धनी होने पर जो जितना ही नम्र होता है, समाज में उसकी उतनी ही इज्ज़त बढ़ती है।

अन्त में, बहू ने जो यह भाव प्रकट किया है कि "मेरे प्रियतम का जो प्रिय है, मैं उसका मन अवश्य रक्खूँगी।" इसमें प्रियतम के लिये बहू के हृदय में अकृत्रिम और अगाध प्रेम प्रकट होता है। जो अपने को प्रिय है, उसकी प्रत्येक वस्तु प्रिय होने ही से सच्चे प्रेम का आनन्द मिल सकता है।

[४८]

हाथ लेले लोटिया काँधे लेले धोतिया पोथिया लिहले ओरमायजी।
चलले चलल विप्र गइले अयोध्या ठाढ भइले दसरथ द्वार जी।
तोहरा घरे राजा राम दुलरुआ मोरा घरे सीता कुँआरि जी ॥१॥
नौ लाख घोडा नौ लाख हाथी नौ लाख तिलक दहेज जी।
सीता ऐसन वारे दुलहिन देखों जासे होइहैं अवध अँजोर जी ॥२॥
अइसन बोली जनि बोली ये विप्र मोरा बूते सहलो न जाय जी।
सगुने अजोध्या के राम दुलरुआ मोरा बूते कहलो न जाय जी ॥३॥

हाथ में लोटिया ले लिया। कंधे पर धोती और बगल में पुस्तक लटका ली। चलते-चलते ब्राह्मण अयोध्या पहुँचा और दशरथ महाराज के द्वार पर खड़ा हुआ। ब्राह्मण ने कहा—हे राजा! तुम्हारे घर में प्यारे राम हैं और हमारे घर में कुँवारी सीता है ॥१॥

नौ लाख घोड़ा, नौ लाख हाथी, और नौ लाख रुपये तिलक में

दिये जायेंगे। सीता ऐसी दुलहिन दूँगा, जिससे सारे अयोध्या में प्रकाश छा जायगा ॥२॥

महाराज दशरथ ने कहा—हे ब्राह्मण ! ऐसा वचन मत बोलो। मुझ से सहा नहीं जाता। राम सारी अयोध्या के प्यारे हैं। अकेला मैं कुछ कह नहीं सकता ॥३॥

गीत की अन्तिम पंक्ति से मालूम होता है कि गीत रचनेवाले की राय में राजा अपने पुत्र का विवाह भी प्रजा की सम्मति बिना नहीं कर सकता। तुलसीदास ने भी दशरथ के मुँह से ऐसा ही कहलाया है—

जो पाँचहिं मत लागै नीका।
करहु हरषि हिय रामहिं टीका॥

राजाओं को इस गीत पर ध्यान देना चाहिये।

[४६]

अरी अरी कारी कोइलि तोर जतिया भिहावन रे।
कोइलरि बोलिया बोलउ अनमोल त सब जग मोहै रे ॥ १ ॥
अरी अरी कारी कोयलिया आँगन मोरे आवहु रे।
आजु मोरे पहिला बियाहु नेवत दै आवहु रे ॥ २ ॥
नेउतेउँ मैं अरगन परगन अरे ननिआउर रे।
कोइलरि एकु न नेउतेउँ बीरन भइया जिनसे मैं रूठिउँ रे ॥ ३ ॥
अरी अरी सखिया सहेलरि मंगल जनि गावहु रे।
सखिया आजु मोरा जियरा उदास बीरन नाहीं आए रे ॥ ४ ॥
आगे के घोड़वा भइया मोरे डोलिया भउज रानी रे।
एहो बीच मे सोहैं भतिजवा तौ भरिगा हैं माड़उ रे ॥ ५ ॥
कहवाँ उतारौं बीरन भइया कहवाँ भउज रानी रे।
रामा कहवाँ उतारौं भतिजवा तौ भरिगा है आँगनु रे ॥ ६ ॥

द्वारे उतारौ वीरन भइया महले भउज रानी रे।
रामा अँगने माँ खेलै भतिजवा तौ भरिगा है माडउ रे ॥ ७ ॥
अरी अरी सखिया सहेलरी मंगलु अब गावहु रे।
आजु मोरा जियरा हुलास वीरन भइया आये हैं रे ॥ ८ ॥
अरी अरी नाउनि वारिनि नेगु अब माँगहु रे।
आजु मोरा जियरा हुलास वीरन भइया आये हैं रे ॥ ९ ॥

हे काली कोयल ! तुम्हारी जाति देखने में तो बड़ी भयानक लगती है। पर तुम ऐसी मीठी बोली बोलती हो कि उस पर सारा संसार मुग्ध हो जाता है ॥१॥

हे काली कोयल ! मेरे आँगन में आओ। आज मेरे घर में पहला विवाह है। तुम न्योता दे आओ ॥२॥

मैंने परगने भर को, सब सम्बंधियों को न्योता दिया। हे कोयल ! पर मैं अपने भाई से रूठी हूँ। उसको न्योता मत देना ॥३॥

हे सखी सहेलियो ! मंगल-गीत न गाओ। हे सखियो ! आज मेरा मन उदास है। मेरा भाई नहीं आया है ॥४॥

अहा ! आगे के घोड़े पर मेरा भाई और पीछे की डोली में मेरी भावज रानी आ रही है। अहो ! बीच में मेरा भतीजा है। इनसे सारा माड़ो (मंडप) भर गया है ॥५॥

भाई को कहाँ उतारा जाय ? भावज रानी को कहाँ उतारा जाय ? भतीजे को कहाँ उतारा जाय ? जिनसे आँगन भर गया है ॥६॥

भाई को द्वार पर उतारो। भावज रानी को महल में डेरा दो। भतीजा तो आँगन में खेलता रहेगा, जिनसे माड़ो भर गया है ॥७॥

हे सखी सहेलियो ! मंगल गाओ। आज मेरा मन बहुत प्रसन्न है। मेरा भाई आया है ॥८॥

हे नाइनो ! हे बारिनो ! अब मुँह-माँगा नेग लो। आज मेरा मन

बहुत प्रसन्न है। मेरा भाई आया है ॥६॥

[५०]

हे पाँच पान नौ नरियल।
सरगै जे बाटे आजा परपाजा,
दादा औ चाचा तुमरौ नेवता ॥
भुइयाँ भवानी पाटन कै देवी,
बिजलेश्वरी माता काली माई,
डिवहार बावा तुमरौ नेवता ॥
बिंध्याचल कै देवी तुमरौ नेवता ॥
घर क देवी शायर भवानी तुमरौ नेवता ॥
साँप गोजर बीछी कूछी तुमरौ नेवता।
आँधी पानी लड़ाई झगड़ा,
डीमी धींगा तुमरौ नेवता ॥
ओंठ बिचकावनि भौंह सिकोरनि,
तुमरौ नेवता ॥
इसरा बिसरा कन्या कुमारी,
तुमरौ नेवता ॥
हे ओऊ जे अम्मा लाये जे अम्मा
बौरे हैं आजु ॥
पाँच पान नौ नरियल।

यह गीत स्त्रियों का निमंत्रण-गीत है। ब्याह आदि शुभ-अवसरों पर कहीं-कहीं यह गाया जाता है।

इसमें 'ओंठ बिचकावनि' और 'भौंह सिकोरनि' ये दो शब्द ख़ास ध्यान देने योग्य हैं। कुछ स्त्रियों का ऐसा स्वभाव होता है कि वे दूसरे की बढ़ती नहीं सह सकतीं। जब उनसे कोई किसी के यहाँ उत्सव आदि

होने का जिक्र करता है, तब वे बड़ी उपेक्षा से मुँह बिचका देती हैं या भौं मटका देती हैं। ऐसी स्त्रियों को भी इसलिये निमंत्रण दिया गया है कि ये भी सन्तुष्ट रहें और विघ्न न डालें।

[५१]

आखि तोरी देखूँ ये दुलहा अमवा की फँकिया रे
भौंह तोरी चढली कमान रे।
यतनी सुरति तुहूँ पायो दुलरुआ केहि गुन रह्यो कुँआर रे॥ १॥
बाबा मोरे गयनि कमरू के देसवा रे पितिया गयनि
मेवाड़ रे।
जेठ भैया गयनि जीरा की लदनिया यहि गुन
रह्यों कुँआर रे॥ २॥
दखिन के देसवा से लिखि पढि आयूँ चिठिया
लिख्यों समुझाय रे।
आवहु बाबा रे आवहु काका आवहु सग जेठ भाइ रे॥ ३॥
बाबा मोरे लेइ आये मोहरा पचास रे पितिया लेइ
आये हाथी घोड़ रे।
जेठ भैया लायनि झारि पितम्बर अब मोरा रचा है बिआह रे॥ ४॥

हे दूल्हा! आँखें तो तुम्हारी आम की फाँकों की तरह हैं, और भौंहें चढ़ी हुई कमान की तरह। हे प्यारे! तुमने इतनी सुन्दरता पाई है। पर तुम क्वाँरे क्यों रह गये? ॥१॥

वर कहता है—मेरे बाबा कामरूप देश को गये थे। मेरे चचा मेवाड़ गये थे। जेठे भाई जीरा लादने गये थे। इस कारण से मैं क्वाँरा रह गया ॥२॥

मैं दक्खिन देश से पढ़-लिखकर लौटा, तब मैंने सब को चिट्ठियाँ लिखीं कि बाबा आओ, काका आओ, जेठे सगे भाई आओ ॥३॥

मेरे बाबा पचास मोहर लेकर आये। काका हाथी-घोड़ा ले आये। और जेठे भाई पीताम्बर ही पीताम्बर ले आये। अब मेरा विवाह हो रहा है ॥४॥

इस गीत से तो यह स्पष्ट ही मालूम होता है कि वर का विवाह तब हुआ था, जब वह दक्षिण से अच्छी तरह पढ़-लिखकर घर आया था और उसने स्वय पत्र लिखकर अपने बाबा, काका और भाई को बुलाया और अपने विवाह के लिये उनसे कहा। वह आजकल की तरह विवाह का खिलौना नहीं था।

[५२]

लाली तोरी अँखिया ए बाबू काली तोरी केस।
कौने लोभे ऐल्या ए बाबू देसवा के ओर ॥ १ ॥
मोरे देसे बाटीं हो सासू अगुनी बहुत।
गुनिया लोभे ऐलीं ए सासू देसवा के ओर ॥ २ ॥
मैं तौसे पूछौं ए बाबू हिरदै केरी बात।
कैसे कैसे रखब्या ए बाबू गुनिया केरे मोल ॥ ३ ॥
गुनिया के रखबै सासू हिरदैया लगाय।
मीठी मीठी बोलिया सासू मन हरि लेब ॥ ४ ॥

हे बाबू! तुम्हारी आँखे लाल-लाल हैं, केश काले हैं। तुम किस लोभ से इतनी दूर आये हो? ॥ १ ॥

हे सास! मेरे देश में गुणहीन बहुत हैं। मैं गुणवन्ती की खोज में इतनी दूर आया हूँ ॥ २ ॥

हे बाबू! मैं तुमसे हृदय की बात पूछती हूँ—तुम गुणवन्ती को कैसे रक्खोगे? ॥ ३ ॥

हे सास! मैं गुणवन्ती को हृदय से लगाकर रक्खूंगा और मीठी-मीठी बातों से उसका मन हर लूँगा ॥ ४ ॥

वर गुणवन्ती की खोज में दूर-दूर तक फिरा था। वर को समाज में अधिकार था कि वह अपनी पसन्द के अनुसार अपनी जीवन-सहचरी को चुन ले। यह अधिकार न्याययुक्त था और आजकल भी वर और कन्या को ऐसा ही अधिकार मिलना चाहिये।

[५३]

मोरे के अंगना तुलसिया रे अरे पतवन झालरि रे।
तेहिं तर ठाढ़ दुलह रामा दैवा मनावई रे॥ १॥
अरे का तू दैवा गरजौ अरे बिजुली तड़ापड रे।
दैवा भिजतै बिआहन जाब पराई धेरिया वेहि लैबै रे॥ २॥
नदिया के ईरे तीरे दुलहा अरे दुलहा पुकारई रे।
ससुरा पठै देउ नैया नेवरिया मैं तेहि चढ़ि आवउँ रे॥ ३॥
नाहीं मोरे नैया नेवरिया नाहीं मोरे केवट रे।
जो मोरी धेरिया क चाहै पहरि गंगा आवइ रे॥ ४॥
भीजै मोरा अँग कै अँगरखा औ सिर कै पगडिया हो।
ससुरा भीजै मोरा सोरहौ सिंगार तोहरे धेरिया के कारन हो॥ ५॥
देवै मैं अंग कै अंगरखा औ सिर कै पगडिया रे।
दुलरू देवै मैं सोरहौ सिंगार पहरि गंगा आवहु रे॥ ६॥

मेरे आँगन में तुलसी का वृक्ष है, जो पत्तों से खूब हरा भरा हो रहा है। उसके तले वर खड़ा है और दैव से कह रहा है॥ १॥

हे दैव! चाहे कितना ही गरजो और चाहे कितना ही चमको, मैं भीगते ही विवाह करने जाऊंगा और दूसरे की कन्या को ब्याह कर लाऊंगा॥२॥

नदी के किनारे वर पुकार रहा है—हे ससुरजी! नाव भेज दीजिये। मैं उस पर चढ़ कर उस पार आ जाऊं॥ ३॥

ससुर ने कहा— न मेरे नाव है, न केवट। जो मेरी कन्या चाहता है, उसे नदी तैर कर आना चाहिये॥ ४॥

वर कहता है—मेरा अगरखा भीग जायगा। मेरी पगड़ी भीग जायगी। हे ससुर! तुम्हारी कन्या के लिये मेरा सोलहो शृङ्गार भीग जायगा ॥ ५ ॥

ससुर कहता है—भीगने दो। मैं अगरखा दूँगा। पगड़ी दूँगा। हे प्यारे! मैं शृङ्गार की सब सामग्री दूँगा यदि तुम गंगा तैरकर आओगे ॥ ६ ॥

पूर्वकाल में विवाह होने के पहले वर की योग्यता की जाँच की जाती थी। जैसे, रामायण में धनुर्भंग और महाभारत में लक्ष्य-वेध द्वारा जाँच की गई थी। गीतों के काल में वह प्रथा उठ-सी गई जान पड़ती है। उस समय सड़कें बहुत कम थीं और नदी पार करने के लिये हरएक व्यक्ति को तैरना जानना बहुत ज़रूरी समझा जाता रहा होगा। इसी लिये जनेऊ और विवाह के गीतों में तैरने की कला में निपुण होने की ओर संकेत किया गया है। इसी गीत में भी वही है।

[५४]

बाजत आवै ककरहिली के बाजन घुमरत आवै निसान।
राम लखन दूनौं पूछत आवैं कौके जनक दरवाज ॥ १ ॥
जनक दुवारे चनन बड़ रुखवा हथिनी बाँधी सब साठ।
भितिया तौ उनके रे चित्र उरेहे उहै जनक दरवाज ॥ २ ॥
भितराँ से निकरी है जनक कहारिन हाथे घइला मुख पान रे।
पनिया भरउँ मैं सब के रे रजवा बतिया न कहहुँ तुम्हारि ॥ ३ ॥
मैं तुमसे पूँछौ जनक कहारिन किन यह चित्र उरेहु।
जवनी सीतल देई क ब्याहन आओ तिने यह चित्र उरेहु ॥ ४ ॥
उठहु न दादुलि उठहु न राजा उठहु न कुँवर कँधाइ।
ऐसी सितल देई क हमना सो ब्याहउ करहिं बरइली क कारु ॥ ५ ॥

ककरसिली (?) का बाजा बजता आ रहा है। झूमता हुआ झण्डा

आ रहा है। राम-लक्ष्मण दोनों पूछते आ रहे हैं, कि जनक का द्वार कौन-सा है ॥ १ ॥

जनक के दरवाजे पर चन्दन का बड़ा वृक्ष है। साठ हथिनियां बंधी हैं। दीवारों पर चित्र अंकित हैं। वही जनक का द्वार है ॥ २ ॥

भीतर से जनक की कहारिन निकली, जिसके हाथ में घड़ा और मुंह में पान है। वह कहती है—मैं इस राजा के कई पीढ़ी से पानी भरती आ रही हूं। पर मैं इस घर की बात किसी से कहती नहीं ॥ ३ ॥

राम ने पूछा—हे जनक की कहारिन! मैं तुम से पूछता हूं कि यह चित्र किसने लिखा है? कहारिन ने कहा—जिस सीता देवी को तुम ब्याहने आये हो, उसी ने यह चित्र लिखा है ॥ ४ ॥

राम कहते हैं—हे पिता! उठो। हे राजा! उठो। हे कुंवर कन्हैया! उठो। ऐसी सीता का विवाह मुझसे करो ॥ ५ ॥

इस गीत में दो बातें विशेष उल्लेखनीय हैं। एक तो कहारिन की दृढ़ता—वह कई पीढ़ियों से पानी भरती आ रही है। घर का सब भेद जानती है, पर किसी से कहती नहीं। इस गीत में अच्छे नौकरों का यह एक बड़ा सुन्दर लक्षण वर्णित है। चित्रकला का आदर—पूर्वकाल में चित्रकला का ऐसा महत्त्व था कि जो कन्या अच्छा चित्र खींचना जानती थी, उसके अन्य गुणों के देखने की आवश्यकता नहीं समझी जाती थी। चित्राङ्कार देखकर ही लोग उस पर मुग्ध हो जाते थे।

[४४]

बाजत आवै ककरैला कै बाजन घुमड़त आवैं निस्सान।
राम लखन दूनों पूछत आवैं कवन जनक दरबार ॥ १ ॥
गौवों के ग्वासे पासे घन बँसवरिया आँगन नेबुला अनार।
भितिया तौ उनके पुतरी उरेही उई होय जनक दुवार ॥ २ ॥

भितराँ से निकरी हैं जनका कहारिन राम लिहिनि बुलवाय।
के यह पुतरी उरेहा कहारिन हमसे कहउ अरथाय ॥ ३ ॥
घर घर जनकजी पनियाँ भरावैं हमसे दुतैया नाहीं होय।
आवति हैं राजा जनका कै बारिनि उनसे पूँछेव अरथाय ॥ ४ ॥
भितराँ से निकसी हैं जनक कै बारिन राम लिहिन बुलवाय।
के यह पुतरी उरेहा है बारिन हमसे कहौ अरथाय ॥ ५ ॥
घर घर जनकजी पनरी देवावैं हमसे दुतैया नाहीं होय।
आवति हैं राजा जनका कै नाउनि उनसे पूँछेव अरथाय ॥ ६ ॥
भितरा से निकसी हैं जनक कै नाउनि राम लिहिन बुलवाय।
के यह पुतरी उरेहा है नाउनि हमसे कहौ अरथाय ॥ ७ ॥
घर घर जनकजी विजय करावैं हमसे दुतैया नाहीं होय।
जौने रानीयवाँ का व्याहन आयौ ते यह पुतरी उरेह ॥ ८ ॥

ककरैला (?) का बाजा बजता आ रहा है और झंडा लहराता आ रहा है। राम-लक्ष्मण दोनों भाई पूछते आ रहे हैं कि जनक का द्वार कौनसा है? ॥१॥

गाँव के आसपास घनी बँसवारी (बाँसो का कुञ्ज) है। आँगन में नीबू और अनार लगे हैं। दीवारों पर चित्र बने हुये हैं। वही जनक का घर है ॥२॥

भीतर से जनक की कहारिन निकली। राम ने उसे बुलवा लिया और पूछा—हे कहारिन! यह चित्र किसने बनाया है? मुझे समझाकर कहो ॥३॥

कहारिन ने कहा—हे कुँवरजो! मैं तो राजा जनक के घर में पानी भरती हूँ। मुझे इधर की बात उधर लगानी नहीं आती। राजा जनक की वारिन आती है। उससे अच्छी तरह पूछ-लीजिये ॥४॥

भीतर से जनक की बारिन निकली। राम ने उसे बुलवाकर पूछा—

हे बारिन ! यह चित्र किसने बनाया है ? ॥५॥

बारिन ने कहा—मैं तो राजा जनक के घर में पत्तल देने का काम करती हूँ। मुझसे दूती का काम नहीं हो सकता। आप राजा जनक की नाइन से पूछ लीजिये। वह आ रही है ॥६॥

भीतर से राजा जनक की नाइन निकली। राम ने उसे बुलवाकर पूछा—हे नाइन ! यह चित्र किसने बनाया है ? ॥७॥

नाइन ने कहा—मैं राजा जनक के घर में रसोई जिमाने का काम करती हूँ। मुझसे दूती का काम नहीं हो सकता। आप जिस रानी को ब्याहने आये हैं, उसी ने यह चित्र बनाया है ॥८॥

कहारिन ने नहीं बताया, बारिन ने नहीं बताया, पर नाइन ने बता दिया। नाइन के पेट में बात नहीं पचती। नाई-नाइन के इस स्वभाव से घबराकर चाणक्य को लिखना पड़ा था—

नराणां नापितो धूर्त.

अर्थात् मनुष्यों में नाई धूर्त होता है।

इस गीत में एक ओर तो नाइन कही जाती है कि मुझसे दूती का काम नहीं हो सकता। दूसरी ओर धीरे से बताती भी जाती है कि किसने चित्र बनाया है।

मुख्य बात जो इस गीत से हमें मिलती है, वह है स्त्रियों में चित्र-कला का प्रचार। पूर्वकाल में चित्रकला हिन्दुओं के घर-घर में थी। विवाह होने के पूर्व ही कन्या को इस कला में दक्ष हो जाना पड़ता था।

[५६]

नदिया के ईरे तीरे दुलहे पुकारेल केवट नइया लेइ आउ रे।
केवट हो तू त यार हमारा रे हाली नेवरिआ लेइ आउ रे ॥१॥
अपटि झपटि केवटा नइआ ले आवेला झटपट पार उतारु रे।
तुहु त मोरे बाबू पार उतरी गइल के हमरे दाम चुकाइ रे ॥२॥

मतली हथिनिआ हमरे बाबा जे आवेले उहे तोहरे दाम चुकाइ रे।
अल्हरे बछेड़वा हमरे भइआ जे आवेलें उहे तोहरे दाम चुकाइ रे॥३॥
कब हम देखब बाग बगइचा रे कब हम देखब ससुरारि रे।
कब हम देखब रानी दुलहिनिआ हो नयना जइहैं जुडाइ रे॥४॥
गोंईडे देखब बाबू बाग बगइचा हो दुअरे देखब ससुरार रे।
मड़वे देखब बाबू रानी दुलहिनिआ हो जेहि देखी हृदया जुड़ाइ रे॥५॥
मँड़ये मे धीरे धीरे पुछेला कवन दुलहे सुन धन बचन हमारि रे।
कवनी है साली रे कवनी है सरहज कवनी हइ सासु हमारि रे॥६॥
लाल ओढन लाल डासन लाल परेला ओहार रे।
जेकरे लिलारे प्रभू सोने क टिकुलिआ हो उहे हइ भउजी हमारि रे॥७॥
हरिअर ओढन हरिअर डासन हरिअर परल ओहार रे।
जेकरे ही दांतें प्रभु सोने क बतिसिआ हो उहें हैं बहिनी हमारि रे॥८॥
पीअर ओढ़न पीअर डासन पीअर परेला ओहार रे।
जेकरे ही नैना प्रभु नीर ढुरतु हैं उहे है अम्माँ हमारि रे॥९॥

नदी के किनारे दुल्हा पुकार रहा है—हे केवट! नाव ले आओ। जल्दी तैयार होकर नाव ले आओ॥१॥

हे केवट! झपटकर नाव ले आओ और मुझे पार उतार दो। केवट ने दूल्हे को पार उतारकर कहा—हे बाबू! आप तो पार उतर गये, अब मेरी उतराई कौन देगा?॥२॥

दूल्हे ने कहा—मदमाती हथिनी पर मेरे पिता आ रहे हैं, वे उतराई देंगे। अल्हड़ बछेड़े पर मेरे भाई आ रहे हैं, वे उतराई देंगे॥३॥

दूल्हा सोच रहा है—मैं बाग-बगीचे कब देखूँगा? अपनी ससुराल कब देखूँगा? दुलहिन रानी को कब देखूँगा? जिसे देखकर मेरे नेत्र शीतल होंगे॥४॥

किसी ने कहा—हे बाबू! गांव के पास पहुंचकर तुम बाग-बगीचा

देखोगे। घर के द्वार पर पहुँचकर ससुराल देखोगे। मंडप के नीचे दुलहिन रानी को देखोगे। जिसे देखकर तुम्हारा हृदय शीतल होगा ॥५॥

मंडप में दूल्हा धीरे-धीरे दुलहिन से पूछने लगा—हे प्यारी स्त्री! मेरी बात सुन। मेरी साली कौन है? सरहज कौन है? और मेरी सास कौन है? ॥६॥

दुलहिन कहती है—जो लाल रंग की ओढ़नी ओढ़े है, लाल ही जिसका बिछौना है, जिसके आगे लाल रंग का परदा पड़ा है और जिसके माथे पर लाल रंग की टिकुली (टीकी, बिन्दी) है, वह मेरी भौजी है ॥७॥

जो हरे रंग की ओढ़नी ओढ़े है, हरे रंग का जिसका बिछौना है, जिसके आगे हरे रंग का परदा पड़ा है, और जिसके बत्तीसों दाँत सोने से मढ़े हैं, वह मेरी बहन है ॥८॥

और जो पीला ओढ़े है, पीला बिछाये है, जिसके आगे पीला परदा पड़ा है और जिसकी आँखों से आँसू बह रहे हैं, वही मेरी माँ है ॥९॥

गीतों की दुनिया में विवाह इतनी बड़ी अवस्था में होता था कि वर-कन्या मंडप के नीचे निस्संकोच होकर बातें कर सकते थे। इस गीत में माँ का जो वर्णन कन्या ने किया है, वह बहुत ही स्वाभाविक है। बेटी के लिए माँ का प्रेम अद्भुत होता है।

[५७]

उवहु सुरुज मन उवहु सुरुज मन तुमहिं बिन जग अँधियार।
तुमहिं बिन गौवों खरिकवा न लेहैं अहिरा दुहन नाहीं जाय॥ १ ॥
उठौ भैया साहेब उठौ भैया साहेब तुमहिं बिन माड़ो सून।
तुमहिं बिन दुलहा चौक नाहीं बैठैं तुमहिं बिन माड़ो सून॥ २ ॥
तुमहिं बिन हथिया हौदवा न लेहैं तुमहिं बिन माड़ो सून।
उठौ बप्पा साहेब उठौ बप्पा साहेब तुमहिं बिन माड़ो सून॥ ३ ॥

तुमहिं बिन दुलहा चौक नाहीं बैठैं तुमहिं बिन माड़ौ सून।
तुमहिं बिन हथिया हौदवा न लेहैं तुमहिं बिन माड़ौ सून ॥ ४ ॥
उठौ फूफा साहेब उठौ फूफा साहेब तुमहिं बिन माड़ौ सून।
तुमहिं बिन दुलहा चौक नाहीं बैठैं तुमहिं बिन माड़ौ सून ॥ ५ ॥

हे सूर्यमणि! उदय हो, उदय हो। तुम्हारे बिना सारा ससार अंधकारमय है। तुम्हारे बिना गायें खरके (गोष्टी) में न आयेंगी, और न अहीर उन्हें दुहने जायगा ॥ १ ॥

हे भाई साहब! उठो, उठो। तुम्हारे बिना माड़ौ सूना है। तुम्हारे बिना दुलहा चौक में नहीं बैठेगा और न हाथी पर हौद रक्खा जायगा। तुम्हारे बिना माड़ौ सूना है ॥ २ ॥

यही पिता और फूफा के नाम से बार-बार दुहराया जाता है।

[५८]

दुअरे हे आवत दुलहा पुकारें सुनहु नउनी मोरी बात।
अरे के हईं सासु रे के सगि सरहजि कवनी हईं कामिन हमारि ॥ १ ॥

हाथी जे रँगल गोड़ जे रँगल-रँगल बतिसवो दाँत।
अरे सारी राती सोहागे क मातलि उहे हईं कामिन तुहारि ॥ २ ॥
सोने के थार में आरति साजें उहे हईं सासु तुहारि।
अरे पनवाँ हिं फुलवा क सेजिआ बिछावें उहे हईं सरहज तुहारि ॥ ३ ॥

कोहवर आवत दुलहा पुकारें सुन सरहज मोरी बात।
अरे बारी ननदिआ क यह गति देखिहु ठाढ़ी रहेले मुरुझाय ॥ ४ ॥
तब जाइ भउजी रे ननदी सिखवलीं सुनहु ननद मोरी बात।
अरे पुरुपु भँवरवा के बेनिआ डोलावौ अंचरन करहु बयारि ॥ ५ ॥

तूँ भौजी भैया क जाइ, सिखावहु भउजि न करहु ढुताइ।
अरे जैसे हैं फूल फले फुलवरिश्रों भँवरा रहँसि रस लेइ।
वैसहीं भउजि रे तोर ननदोइआ विहँसत विरश्रो न लेइ॥ ६॥

द्वार पर आकर दूल्हे ने कहा—हे नाइन! मेरी बात सुन। ससुराल में मेरी सगी सरहज कौन है? और मेरी कामिनी कौन है॥ १॥

नाइन ने कहा—जिसके हाथ मेहँदी से रँगे हैं, जिसके पैर महावर से रँगे हैं, और जिसके बत्तीसो दाँत रँगे हैं, जो सारी रात सोहाग के मद से मतवाली थी, वही तुम्हारी कामिनी है॥ २॥

सोने के थाल में जो आरती सजा रही हैं, वे तुम्हारी सास हैं। और जो पान और फूल की सेज बिछा रही हैं, वह तुम्हारी सरहज (साले की स्त्री) है॥ ३॥

कोहबर में आकर दूल्हे ने कहा—हे सरहज! मेरी बात सुनो। अपनी किशोरी उमरवाली ननद का हाल तो देखो, खड़ी-खड़ी मुरझा रही है॥ ४॥

तब सरहज ने ननद को जाकर समझाया। हे ननद! मेरी बात सुनो। भ्रमररूपी पति को पखा हाँको और आँचल से हवा करो॥ ५॥

ननद ने कहा—हे भौजी! बहुत ढुताई (कुटनीपन) मत करो। जाकर भैया को सिखाओ। जैसे फल फुलवाड़ी में फूलता है और भौंरा आनंद से रस लेता है, वैसे ही हे भौजी! तेरा यह ननदोई हँसता है, और बीड़ा देती हूँ, तो नहीं लेता॥ ६॥

यह विनोद है। प्रेमरस से पूर्ण है। इसमें युवावस्था में विवाहित स्त्री-पुरुष का वाग्विलास है।

[५६]

पाने क पात झलामिल बाबा सासु निहारैं दमाद।
कौन दुलहा कौन जेठ भैया रचन दुलहा जी के बाप॥ १॥

छोटी मोटी ह्थिनी माह्वत बाबा सोनवाँ मिढल दूनौं दाँत।
सोने कै छत्र बिराजति आवै वै होयँ दुल्हाजी के बाप॥ २॥
पातल घोड़वा पतल असवारा बाँधे सतरँगिया कै पाग।
दाते बतिसिया गले मोहनमाला वई होयँ दुलहा जिव कै
जेठ भाय॥ ३॥
छोट मोट डँडिया चनन केर बाबा छोटै छोट चारि कहाँर।
माथे पर मौर झलाकत आवै वई होयँ दुलरू दमाद
देखि लेव दुलरू दमाद॥ ४॥

झिलमिलाते हुए पान के पत्ते की ओट से सासु दामाद को देख रही हैं और पूछती हैं—दूल्हा कौन है? दूल्हे का जेठा भाई कौन है? और दूल्हे का बाप कौन है?॥ १॥

छोटी सी मतवाली हथिनी है। उसके दोनों दाँत सोने से मढ़े हुये हैं। उस पर जो सवार हैं और जिनके ऊपर सोने का छत्र सुशोभित है, वही दूल्हाजी के पिता हैं॥ २॥

पतले घोड़े पर जो पतला सवार है और जो सतरंगी पाग बाँधे हैं, जिसके दाँतों में बतीसी लगी है, जिसके गले में मोहन माला लटक रही है, वही दूल्हाजी के जेठे भाई हैं॥ ३॥

छोटी सी पालकी को चार छोटे-छोटे कहार उठाये हुए हैं। उसमें जो सवार हैं, और जिनके माथे पर मौर झलक रहा है, वही प्यारे दामाद हैं। प्यारे दामाद को देख लो॥ ४॥

इसमें दूल्हा, उसके बाप और जेठे भाई की शोभा का वर्णन है।

[६०]

हाथी मैं साजौं घोडा मैं साजौं साजिले मुलुक पचास हे।
एक मैं सजिले राजा दुलह बाबू जैसे दुजी के चाँद हे॥१॥

बाट मिलिये गैली मालिनि बिटिया कहु मालिन साँची
बात हे।
कौन हई साासु कवन हई सरहज कौन हई कामिनी हमार हे ॥२॥
सोने के मुसरा जिनहीं घुमावेली उहे हई सासु तोहार हे।
पान के बीड़ा जिनहीं खियावेली सेहि हई सरहज तोहार हे ॥३॥
हाथ मेहदी पाँव मेहँदी दाँत बतीसो लाल हे।
सिर पर ओढ़े कुसुम रँग चादर सेहि हई कामिनी तोहार हे ॥४॥

मैंने हाथी सजाया, घोड़ा सजाया, पचासों देशों के लोगों से बारात सजाई, तथा अपने एक दूल्हे राजा को सजाया जो द्वितीया के चन्द्रमा की तरह सुन्दर हैं ॥ १ ॥

रास्ते में मालिन की कन्या मिली। दूल्हे ने पूछा—हे मालिन! सच बता, कौन मेरी सास है? कौन मेरी सरहज (साले की स्त्री)? और कौन मेरी कामिनी है? ॥ २ ॥

मालिन की कन्या ने कहा—सोने का मुसल हाथ में लेकर जो घुमा रही है, वही आपकी सास है। जो पान का बीड़ा खिला रही है, वह आपकी सरहज है ॥ ३ ॥

जिनके हाथ-पाँव मेहँदी से लाल हैं, जिनके बत्तीसो दाँत लाल हैं, और जो सिर पर कुसुम्भी रंग की चादर ओढ़े है, वही आपकी कामिनी है ॥ ४ ॥

द्वार-पूजा के समय सास मुसल लेकर वर के ऊपर से घुमाती है, इसे परछन करना कहते हैं।

दाँत रंगने की प्रथा स्त्रियों में बहुत पुरानी जान पड़ती है। युक्तप्रान्त में ही यह रिवाज ज्यादा है।

[६१]

सोने के पिढ़वाँ रे राम नहइलेनी झटकीला लम्बी हीं केस रे।
निकली न आवहु माई कवसिल्या देई राम क अरती उतारु रे ॥१॥
का मैं राम क अरती उतारउँ मन मोर बहुत उदास रे।
आजु क रतियाँ मैं कैसे बितइबई राम चलेन ससुरार रे ॥२॥
जिन माई ऊमिल जिन माई धूमिल जिन मन करहु उदास रे।
आजु की रतियाँ जनक के दुअरवाँ काल होवै दास तोहार रे ॥३॥
जब राजा राम बिआहन चललेन माता सूरुज माथ नाव रे।
राम बिअही जब घर के लवटिहैं तोहैं देबै दुधवा क धार रे ॥४॥
भइल बिआह परल सिर सेन्दुर हाथ जोड़ी सीता ठाढ रे।
अइसन आसीष दीहेउ मोरे बाबा लेलसों अजोध्या क राज रे ॥५॥
दुधवा नहायो बेटी पुतवन फलेऊ कोखियन झालर लागु रे।
बरह बरिस राम बन के सिधरिहैं तोहके रवन हर लेइ रे ॥६॥
बाउर भइल तू बाबा जनक रिखि के तोर हरला गेयान रे।
इहई बचन बाबा अगुमन बोलतेउ मरतिउँ जहर बिष खाइ रे ॥७॥
बाउर भइलू तू बेटी रे सीता देई केन तोर हरला गेयान रे।
जो कुछ लिखल बेटी तोहरे लिलरवाँ से कैसे मेटल जाइ रे ॥८॥
जब बरिअतिया अवधपुर में आइली माता सूरुज माथ नाव रे।
पुतवा पतोहिया नयन भर देखेउँ धन धन भाग हमार रे ॥९॥
मिलहु न सखिया रे मिलहु सहेलरि मिलहु सकल रनवास रे।
जस जस मोरे माता अरती उतारई राम नयन ढूरै आँसु रे ॥१०॥
किया तोहैं राम जनक गरियवलें किया तोर दायज थोर रे।
किया तोर राम सीता नाहीं सुन्दर काहे नयन ढूरै आँसु रे ॥११॥
नाहीं मोरी माता जनक गरियवलें नाहीं मोर दायज थोर रे।
नाहीं मोर माता सीता नाहीं सुन्दर समुझि नयन ढूरै आँसु रे ॥१२॥

सोने के सिंघोरवॉ माई सीता चिग्रहलीं डायज मिलल तीन लोक रे।
लछमी सीता रानी मोर घर आइनि हमके लिखल बनवास रे ॥१३॥

सोने के पीढ़े (पाटे, छोटी चौकी) पर राम ने स्नान किया है। वह अपने लंबे बालों को झटक रहे हैं। हे कौशिल्या माता ! तुम निकल क्यों नहीं आती? आकर राम की आरती उतारो ॥ १ ॥

कौशिल्या कहती है—मैं राम की आरती क्या उतारूँ ? आज मेरा मन बहुत ही उदास है। हाय ! मैं आज की रात कैसे बिताऊँगी ? आज राम सुसराल जायेंगे ॥ २ ॥

राम कहते हैं—हे माँ ! मन को धूमिल न करो। उदास मत हो। आज की रात तो मैं जनक के द्वार पर बिताऊँगा और कल तुम्हारी सेवा में हाज़िर रहूँगा ॥ ३ ॥

राम जब ब्याह करने चले, तब माता ने सूर्य देवता को माथ नवाया और कहा—हे सूर्य ! राम विवाह करके सकुशल घर लौट आयेंगे तो मैं तुमको दूध की धार चढ़ाऊँगी ॥ ४ ॥

ब्याह हो गया। सिर में सिंदूर पड़ गया। सीता हाथ जोड़कर खड़ी हुईं और अपने पिता जनक से प्रार्थना करने लगीं—हे पिता ! ऐसा आशीर्वाद देना, जिससे मैं अयोध्या का राज सुख से भोगूँ ॥५॥

जनक ने कहा—हे बेटी ! दूध से नहाओ, पुत्रों से फलो, बहुत संतानवाली होओ। पर बारह वर्ष के बाद राम बनको जायँगे और तुमको रावण हर ले जायगा ॥ ६ ॥

सीता ने कहा—हे पिता जनक राजर्षि ! तुम भोले हुये हो क्या ? किसने तुम्हारा ज्ञान हर लिया है ? तुम यही बात पहले बोलते तो मैं विष खाकर मर जाती न ? ॥ ७ ॥

जनक ने कहा—बेटी ! तू बावली हुई है क्या ? तेरी बुद्धि किसने हर ली है ? अरी बेटी ! जो कुछ तेरे ललाट पर लिखा है, वह कैसे

मेटा जा सकता है ? ॥ ८ ॥

जब बारात अयोध्या में आयी, तब माता ने सूर्य को सिर नवाया और कहा—मैंने आँख भरकर अपने पुत्र और पतोहू को देखा, मेरा भाग्य धन्य है ॥ ९ ॥

हे सखियो ! आओ न ? सब रनिवास मिलकर आओ न ? देखो ! माता जैसे-जैसे आरती उतार रही हैं, वैसे-वैसे राम के आँसू ढुर रहे हैं ॥ १० ॥

कौशिल्या ने पूछा—बेटा ! क्या तुमको जनक ने गाली दी है ? या दहेज कम मिला है ? या तुम्हारी सीता सुन्दरी नहीं है ? आँसू क्यों ढुर रहे हैं ? ॥ ११ ॥

राम ने कहा—हे माता ! न तो जनक ने गाली दी, न दहेज ही कम मिला और न सीता ही कुरूपा है। एक बात याद करके आँखो से आँसू गिर रहे हैं ॥ १२ ॥

सीता का विवाह सोने के सिंधोरे (सिंदूर रखने का पात्र) से हुआ। तीनों लोक मुझे दहेज में मिले। और लछमी के सामान रानी सीता मेरे घर आईं। पर मुझे बनवास लिखा है ॥ १३ ॥

[६२]

कोइली जे बोले अमवा केरा बगिया भौंरा बोलले कचनार जी।
दुलरइता दुलहा ससुर जी के बगिया,
हाथे धनुष मुख पान जी ॥ १ ॥
काहे लोभ गैलो बबुआ अमवा की बगिया,
काहे लोभ गैलो ससुरार जी।
अमवा लोभे गइलूँ अम्मा अमवा की बगिया
धनी लोभे गैलूँ ससुरार जी ॥ २ ॥
क्या क्या खैलो बाबू अमवा की बगिया

क्या क्या खैलो ससुरार जी ।
अमवा फलल खैलूँ अमवा की वगिया
खाँड दूध खैलूँ ससुरार जी ॥ ३ ॥
नवईं महीना तोहिं वावू कोखिया रखवूँ
अवरू दस दुधवा पिलाय जी ।
दूध पानी वावू एको न दिहले कइसे चिन्हल ससुरार जी ॥ ४ ॥
दूध पानी अम्मा जवै हम दीहब जवै धनी लैवौं लिआय जी ।
हमहूँ जे होइवों अम्मा वावू जी सेवकिया
धनी होइवों दासी तोहार जी ॥ ५ ॥

कोयल आम के बाग मे बोल रही है और भौंरा कचनार के वृक्ष पर बोल रहा है। प्यारे दूल्हा ससुर जी के बाग मे बोल रहे है, जिनके हाथ मे धनुष और मुँह में पान है ॥ १ ॥

हे बेटा ! तुम किस लोभ से आम के बाग मे गये थे ? और किस लोभ से सुसराल गये थे ? पुत्र ने कहा—हे माँ ! आम के लिये मैं बाग गया था और स्त्री के लिये ससुराल गया था ॥ २ ॥

माँ ने पूछा—हे बेटा ! आम की बाग मे क्या खाया ? और ससुराल में क्या खाया ? बेटे ने कहा—आम के बाग मे आम फले थे, वहाँ आम खाया । और ससुराल में दूध और खाँड़ खाया ॥ ३ ॥

माँ ने कहा—हे बेटा ! नौ महीने मैंने तुमको पेट मे रक्खा और दस महीने दूध पिलाया। तुमने बदले मे न हमको दूध ही दिया, न पानी ही। तुमने ससुराल को कैसे पहचाना ? ॥ ४ ॥

पुत्र ने कहा—हे माँ ! मै तुमको दूध और पानी देने के लिये ही स्त्री को लिया लाना चाहता हूँ। मै पिताजी की सेवा करूँगा और मेरी स्त्री तुम्हारी दासी होकर रहेगी ॥ ५ ॥

पुत्र का लक्ष्य कितना सुन्दर है !

[६३]

केथुवन छाइला अरइल खरइल केथुवन छाइला प्रयाग हो।
केथुन छाइला इहे गज ओवरि भॅवरा पइठि मननाइ हो ॥ १ ॥
पनवन छाइला अरइला खरइल फुलवन छाइला प्रयाग हो।
बेतवन छाइला इहे गज ओवरि भॅवरा पइठि मननाइ हो ॥ २ ॥
तहुँ पईठी सुतेल दुलरू कवन रामा पयते कवनि देई रानि हो।
मोही तोसे पुछेलों ससुरजी के धेरिया हो काहें तोर वदन मलीन हो ॥ ३ ॥
माई तोहारि प्रभु मारे गरियावे वहिनी बोलेंली बिरही बोल हो।
लहुरा देवर मारेला लाली छरियवा वोही गुन वदन मलीन हो ॥ ४ ॥
माई के बेंचवों धनी हाटी बजरिया बहिनी बिदेसिआ के हाथ हो।
भइया के मारौं धनी रतुली कमनियाॅ हम तुहुँ बेल-सब राज हो ॥ ५ ॥
माई तोहार प्रभु जी सिर कै पछेवड़ा हो बहिनी तोहारि सिर पाग हो।
भइया तोहार साहेब दाहिनि वॅहियाॅ हम तरवा कइ धूरि हो ॥ ६ ॥

अरैल (प्रयाग के निकट एक स्थान) किससे छाया है ? प्रयाग किससे छाया है ? और यह कोठरी किससे छाई है ? जिसमें भौंरा प्रवेश कर के गुञ्जार करता है ॥१॥

अरैल पान से छाया है। प्रयाग फूल से छाया है। और यह कोठरी बेंतों से छाई है, जिसमें भौंरा प्रवेश करके गुञ्जार करता है ॥२॥

उस कोठरी में प्रवेश करके दुलारे अमुकराम सोते हैं। जिनके पैरों

के पास अमुकदेवी बैठकर सेवा कर रही है। पति पूछता है—हे मेरे ससुरजी की कन्या ! मैं तुमसे पूछता हूँ—तेरा मुँह उदास क्यों है ? ॥३॥

स्त्री ने कहा—हे प्रियतम ! तुम्हारी माँ मारती है और गाली देती है। तुम्हारी बहन ताने मारती है। तुम्हारा छोटा भाई लाल छड़ी से मारता है। इसी कारण से मैं उदास रहती हूँ ॥४॥

पति ने कहा—हे प्यारी स्त्री ! मैं माँ को बाजार में बेंच दूँगा। बहन को किसी परदेशी को दे डालूँगा। भाई को लाल कमान से मार डालूँगा और हम तुम सुख से राज भोगेंगे ॥५॥

स्त्री ने कहा—हे प्रियतम ! माँ तो तुम्हारे सिर की पट्टेवडा (?) है। बहन तुम्हारे सिर की पगड़ी है। और भाई तो हे मेरे मालिक ! तुम्हारी दाहिनी भुजा है। मैं तुम्हारे पैरों की धूल हूँ ॥६॥

उत्तेजित पति को बहू ने कैसी नम्रता से शांत किया है। ऐसी ही बहुओं से गृहस्थी की शोभा है।

[६५]

बना मेरो कुञ्जन मे बनि आये—बना मेरो !
सिरे सोहै मलमल की पगिया मौरा मे छवि आई—बना मेरो ॥१॥
माथे सोहै मलयागिरि चन्दन सुरमा में छवि आई—बना मेरो ॥२॥
काने सोहै सूरत को मोती चुन्नी मे छवि आई—बना मेरो ॥३॥
अंगे सोहै ग्यासे का जोड़ा नीमा मे छवि आई—बना मेरो ॥४॥
फांडे सोहै गुजराती फेटा लरिया मे छवि आई—बना मेरो ॥५॥
पायँ सोहै सफलानी जूता मोजे मे छवि आई—बना मेरो ॥६॥

आज मेरा दूल्हा कुंज में से शृङ्गार करके आया है।

दूल्हे के सिर पर मलमल की पगड़ी सुशोभित है। मौर में छवि आ गई है ॥१॥

माथे पर मलयगिरि का चंदन सुशोभित है। सुर्मे में शोभा आई हुई है ॥२॥

कान में सूरत का मोती सुशोभित है। चुन्नी में रूपा खिल पड़ा है ॥३॥

कमर में गुजराती फेंटा सुशोभित है। दुपट्टे में सौन्दर्य उमड़ पड़ा है ॥४॥

बदन में खासे का जोड़ा सुशोभित है। नीमा में मनोहरता है ॥५॥

पैर में मखमल का जूता सुशोभित है। मोजे में लावण्य आ गया है ॥६॥

इस गीत में दो तीन बातें विशेष ध्यान देने की हैं। एक तो उन स्थानों के नाम, जहाँ की ख़ास-ख़ास चीज़ें मशहूर थीं। जैसे गुजरात का फेंटा और सूरत का मोती। गीतों के ज़माने में युक्तप्रांत में गुजरात से फेंटे बनकर आते होंगे और गाँव-गाँव में प्रसिद्धि पाये होंगे। सूरत के जौहरी तो अब भी प्रसिद्ध हैं। वहाँ से मोती इधर आते रहे होंगे। दूसरे सकलाती शब्द। यह शब्द बहुत पुराना है। पृथीराजरासो में इस शब्द का प्रयोग मिलता है। जैसे—

तिनं पक्खरं पीठ हय जीन सालं।
फिरंगी कती पास सुकलात लालं॥

अर्थात् उनके घोड़ों की काठियों के जीन ऊनी शाल के थे। कितने ही फिरंगियों के पास लाल मखमल के जीन थे।

सकलात अंग्रेज़ी के Scarlet Cloth का अपभ्रंश जान पड़ता है। विलायती लाल रंग का मख़मल, जान पड़ता है, जो भारत में रासो की रचना के समय ही से आने लगा था और गाँव-गाँव में अपने अपभ्रंश-रूप 'सकलात' के नाम से प्रसिद्ध हुआ था। ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी के कागज़ों में Scarlet Cloth का ज़िक्र बारबार आया है। कम्पनी

का राज गया, पर गीतों में उसका यह शब्द अभी तक पाया जाता है।

[६५]

जाने न देवँ वर पकड़ि रखौंगी।
मैं तेरे दिल मे वसौंगी॥
हाँ हाँ रे वने तेरे सिर के पगिया होंगी।
पेंचा होइके रहँसि रहौंगी—मैं तेरे दिल मे वसौंगी॥
जाने न देवँ वर पकड़ि रखौंगी॥ १॥
हाँ हाँ रे वने तेरे माथे के चन्दन होंगी।
सुर्मा होइ के रहँसि रहौंगी—मैं तेरे दिल मे वसौंगी॥
जाने न देवँ वर पकड़ि रखौंगी॥ २॥
हाँ हाँ रे वने तेरे काने के मोती होंगी।
चुन्नी होइ के रहँसि रहौंगी—मैं तेरे दिल मे वसौंगी॥
जाने न देवँ वर पकड़ि रखौंगी॥ ३॥
हाँ हाँ वने तेरे फाड़े के फेंटा होंगी।
पटुका होइ के रहँसि रहौंगी—मैं तेरे दिल मे वसौंगी॥
जाने न देवँ वर पकड़ि रखौंगी॥ ४॥
हाँ हाँ रे वने तेरे पाँयें के मोजा होंगी।
मेंहदी होइ के रहँसि रहौंगी—मैं तेरे दिल में वसौंगी॥
जाने न देवँ वर पकड़ि रखौंगी॥ ५॥
हाँ हाँ रे वने तेरे सेज के चन्दा होंगी।
चन्दा होइ के छिटकि रहौंगी—मैं तेरे दिल मे वसौंगी॥
जाने न देवँ वर पकड़ि रखौंगी॥ ६॥

मैं वर को जाने न दूँगी; पकड़कर रक्खूँगी। हे वर! मैं तेरे दिल में बसूँगी।

हे वर! मैं तेरे सिर की पगड़ी होऊँगी और पगड़ी को पेंच होकर

माथे पर मलयगिरि का चंदन सुशोभित है। सुर्मे में शोभा आई हुई है ॥२॥

कान में सूरत का मोती सुशोभित है। खुशी में रूपा खिल पड़ा है ॥३॥

कमर में गुजराती फेंटा सुशोभित है। दुपट्टे में सौन्दर्य उमड़ पड़ा है ॥४॥

बदन में खासे का जोड़ा सुशोभित है। नीमा में मनोहरता है ॥५॥

पैर में मखमल का जूता सुशोभित है। मोजे में लावण्य आ गया है ॥६॥

इस गीत में दो तीन बातें विशेष ध्यान देने की हैं। एक तो उन स्थानों के नाम, जहाँ की ख़ास-ख़ास चीज़ें मशहूर थीं। जैसे गुजरात का फेंटा और सूरत का मोती। गीतों के ज़माने में गुजरात में गुजरात से फेंटे बनकर आते होंगे और गाँव-गाँव में प्रसिद्धि पाये होंगे। सूरत के जौहरी तो अब भी प्रसिद्ध हैं। वहाँ से मोती इधर आते रहे होंगे। दूसरे सकलाती शब्द। यह शब्द बहुत पुराना है। पृथीराजरासो में इस शब्द का प्रयोग मिलता है। जैसे—

तिन पक्खरं पीठ हय जीन सालं।
फिरंगी कती पास सुकलात लालं॥

अर्थात् उनके घोड़ों की काठियों के जीन ऊनी शाल के थे। कितने ही फिरंगियों के पास लाल मखमल के जीन थे।

सकलात अंग्रेज़ी के Scarlet Cloth का अपभ्रंश जान पड़ता है। विलायती लाल रंग का मख़मल, जान पड़ता है, जो भारत में रासो की रचना के समय ही से आने लगा था और गाँव-गाँव में अपने अपभ्रंश-रूप 'सकलात' के नाम से प्रसिद्ध हुआ था। ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी के काग़ज़ों में Scarlet Cloth का ज़िक्र बारंबार आया है। कम्पनी

का राज गया, पर गीतों मे उसका यह शब्द अभी तक पाया जाता है।

[६५]

जाने न देवँ वर पकड़ि रखौंगी।
मैं तेरे दिल मे वसौंगी॥
हाँ हाँ रे वने तेरे सिर कै पगिया होंगी।
पेंचा होइके रहँसि रहोंगी—मैं तेरे दिल मे वसौंगी॥
जाने न देवँ वर पकड़ि रखौंगी॥१॥
हाँ हाँ रे वने तेरे माथे कै चन्दन होंगी।
सुर्मा होइ कै रहँसि रहौंगी—मैं तेरे दिल में वसौंगी॥
जाने न देवँ वर पकड़ि रखौंगी॥२॥
हाँ हाँ रे वने तेरे काने कै मोती होंगी।
चुन्नी होइ कै रहँसि रहौंगी—मैं तेरे दिल मे वसौंगी॥
जाने न देवँ वर पकड़ि रखौंगी॥३॥
हाँ हाँ वने तेरे फांडे कै फेंटा होंगी।
पटुका होइ कै रहँसि रहौंगी—मैं तेरे दिल मे वसौंगी॥
जाने न देवँ वर पकड़ि रखौंगी॥४॥
हाँ हाँ रे वने तेरे पाँयँ कै मोजा होंगी।
मेंहँदी होइ कै रहँसि रहौंगी—मैं तेरे दिल मे वसौंगी॥
जाने न देवँ वर पकड़ि रखौंगी॥५॥
हाँ हाँ रे वने तेरे सेज कै चन्दा होंगी।
चन्दा होइ कै छिटकि रहौंगी—मैं तेरे दिल मे वसौंगी॥
जाने न देवँ वर पकड़ि रखौंगी॥६॥

मैं वर को जाने न दूँगी, पकड़कर रक्खूँगी। हे वर! मैं तेरे दिल में बसूँगी।

हे वर! मैं तेरे सिर की पगड़ी होऊँगी और पगड़ी का पेंच होकर

न रहूँगी। मैं तेरे दिल में बसूँगी ॥१॥

हे वर ! मैं तेरे माथे का चन्दन होकर रहूँगी। मैं तेरी आँखों में सुर्मा होकर रहूगी। तेरे दिल में बसूँगी ॥२॥

हे वर ! मैं तेरे कान का मोती होऊँगी। मैं चुन्नी होकर मगन रहूँगी। मैं तेरे दिल में बसूँगी ॥३॥

तेरे वर ! मैं तेरे फाँड़ का फेंटा होऊँगी। दुपट्टा होकर मैं मगन रहूँगी। मैं तेरे दिल में बसूँगी ॥४॥

हे वर ! मैं तेरे पैर का मोज़ा होऊँगी। मैं मेहँदी होकर मगन रहूँगी। मैं तेरे दिल में बसूँगी ॥५॥

हे वर ! मैं तेरे सेज को चाँद होऊँगी। चाँद होकर मैं छिटक रहूँगी। मैं तेरे दिल में बसूँगी ॥६॥

दुलहिन की कैसी सुन्दर भावना है !

[६६]

आज सोहाग कै रात चंदा तुम उइहौ।
चंदा तुम उइहो सुरुज मति उइहौ ॥ १ ॥
मोर हिरदा बिरस जनि किहेउ मुरुग मति बोलेउ।
मोर छतिया बिहरि जनि जाइ तु पह जिनि फाटेउ ॥ २ ॥
आजु करहु वड़ी राति चदा तुम उइहौ।
धिरे धिरे चलि मोरा सुरुज बिलम करि अइहौ ॥ ३ ॥

आज सोहाग की रात है। हे चन्द्र ! तुम उदय होना। पर हे सूर्य ! तुम उदय मत होना ॥ १ ॥

हे मुर्गे ! तुम आज न बोलना। बोलकर मेरे हृदय को विरस मत करना। हे पौ ! तुम आज न फटना। कहीं मेरी छाती न फट जाय ॥ २ ॥

हे चाँद ! तुम आज बड़ी रात करना और उदय होना। हे मेरे सूर्य ! तुम आज धीरे-धीरे चलकर देर से आना ॥ ३ ॥

इसे लिखते समय मुझे 'प्रवीण राय' का यह कवित्त याद आया था—

कूर कुरकुट कोटि कोठरी निवारि राखौं,
चुनि दै चिरैयन को मूँदि राखौं जलियों।
सारँग में सारँग सुनाइ के 'प्रवीन' वीना
सारँग दै सारँग की जोति करौं थलियों॥
बैठि परयंक पै निसंक ह्वै कै अंक भरौं
करौंगी अधर पान मैन मत्त मिलियो।
मोहि मिले इन्द्रजीत धीरज नरिन्द्र राय
एहो चंद आज नेकु मंदगति चलियो॥

[६७]

नाहक गौन दिहे मोर बाबा बालक कंत हमार रे।
चीलर अस दुइ देवर हमरे बलमा मुसे अनुहार रे॥ १॥
तेलवा लगायउँ बुकउवा लगायउँ खटिया पढ़िहेउँ ओलारि रे।
नेपे नेपे आइ बिलरिया सवतिया लै गई बलमा हमार रे॥ २॥
सासु मोरी रोवैं ननद मोरि रोवैं रोवइ हमारि बलाइ रे।
कोठवा मैं हूँढ़ेउँ अटरिया मैं हूँढेउँ खटिया तरे रिरिआइ रे॥ ३॥

मेरे बाबा ने मेरा गौना नाहक ही किया। मेरा पति तो अभी बिल्कुल बालक है। मेरे दो देवर हैं, जो चीलर (कपड़े की सफेद जूँ) जैसे हैं, और मेरा पति चूहे की तरह है॥ १॥

मैंने पति को उबटन लगाया, तेल लगाया और खाट पर सुला दिया। हाय! बिल्ली सौत की तरह चुपके-चुपके आई और मेरे पति को उठा ले गई॥ २॥

मेरी सास रो रही है। मेरी ननद रो रही है। मैं क्यों रोऊँ? मेरी बला रोवे। अंत में मैंने भी कोठे पर ढूँढ़ा, अटा पर खोजा तो देखा कि पति खाट के नीचे पड़ा रिरिया रहा है॥ ३॥

राम! राम! पति का इससे अधिक वीभत्स चित्र कोई क्या खींचेगा? इस गीत की स्त्री युवती है, पति बालक। ऐसे अनमेल विवाह का जो परिणाम होना चाहिये, वह 'रोवइ हमारि बलाय' में साफ़-साफ उतर आया है। पति के लिये स्त्री के हृदय मे कोई सहानुभूति नहीं है। ऐसे बेमेल विवाहों मे धर्म की रक्षा धर्म-शास्त्र कहाँ तक कर सकेगा? यह विचारणीय है।

[६८]

पाँच वरिसवा कै मोरि रँगरैली असिया बरिस क दमाद।
निकरि न आवै तू मोरि रँगरैली अजगर ठाढ़ दुवार॥ १॥
आँगन किचकिच भीतर किचकिच बुढऊ गिरे मुँह बाय।
सात सखी मिलि बुढऊ उचावैं बुढऊ सेंदुर पहिराव॥ २॥

पाँच बरस की प्यार में पली हुई मेरी कन्या है और अस्सी वर्ष का दामाद है। ऐ प्यार मे पली हुई मेरी बेटी! बाहर निकल आओ न? देखो, द्वार पर अजगर खड़ा है॥१॥

आँगन में कीचड़, भीतर भी कीचड़। बुड्ढा दामाद मुँह बाकर गिर पड़ा। सात सखियाँ मिलकर उस बुड्ढे को ऊँचा कर रही हैं। और कहती है, बुड्ढे! कन्या के सिर मे सिंदूर तो लगा दे॥२॥

इस गीत में वृद्ध विवाह का मजाक उड़ाया गया है। बुड्ढे को अजगर बताना बड़ा सरस और अर्थ-पूर्ण है। जैसे अजगर चल फिर नहीं सकता वैसे बुड्ढा भी। जैसे अजगर शिकार को निगल जाता है। वैसे ही बुड्ढा भी अबोध कन्या के जीवन को निगल जायगा।

[६९]

वनवारी हो, हमरा के लरिका भतार॥
लरिका भतार लेके सुतलीं ओसरवाँ।
वनवारी हो, रहरी मे बोलेला सियार॥ १॥

खोले के तो चोली बंद खोले ला केवार।
बनवारी हो, जरि गैले एंड़ी से कपार ॥ २ ॥
रहरी मे सुनि के सियरा कै बोलिया।
बनवारी हो, रोवें लगले लरिका भतार ॥ ३ ॥
अँगना से माई अइलीं, दुअरा से बहिना।
बनवारी हो, के मारल बबुआ हमार ॥ ४ ॥

हे बनवारी! मेरा स्वामी लड़का है। ओसारे में मैं उसे लेकर सोई। उसी समय सियार अरहर के खेत मे बोला ॥१॥

खोलना तो था चोली का बंद। वह खोलने लगा केवाड़ा। मेरा तो एँड़ी से कपाल तक जल उठा ॥२॥

अरहर के खेत में सियार की बोली सुनकर वह तो रोने लगा ॥३॥

आँगन से माँ दौड़ी, बाहर से बहन, किसने मेरे बबुआ को मारा है ॥४॥

यह बालक पति के साथ एक युवती बहू की मनो-वेदना का चित्र है।

[७०]

मोरे पिछवरवाँ बांस बसेरी कोइली लीन्ह बसेर।
छोड़ड न कोइली मोरा पिछवरवा जाव नदन बन लेउ ॥ १ ॥
मंडवन मंड़वन घूमे दूलहे राम बाप कोइल हम लेव।
कोइली बेटे न माटी की मिलिहैं ना चढ़ि हाट बिकायँ ॥ २ ॥
कोइली नो होइहैं समधीजी के मँड़यें जिन्न घर कन्या कुवारि।
गलियन गलियन घूमैं दुलहे राम कौन है ससुर दुवार।
सोने के कलस पर दियना जरत है वह देखो ससुर दुवार ॥ ३ ॥
मँडवे की थूनी लागे ठाढ़ि दुलहिन देई दुलहे जो पूछत बात।
तुम्हरे दादुलिजी के सोने धौराहर हमहूँ का देव बसेर ॥ ४ ॥

(मुरादाबाद)

मेरे पिछवाड़े बँसवारी है, जिसमें कोयल ने बसेरा लिया है। हे कोयल! तुम मेरा पिछवाड़ा छोड़कर जाकर नंदनवन में बसेरा लो न? ॥१॥

अमुक राम (वर का नाम) माँड़ौ माँड़ौ घूम रहे हैं। हे बाप! मैं कोयल लूँगा। बेटा! कोयल न मिट्टी की बनती है, न बाज़ार में बिकती है। कोयल तो समधीजी के माँड़ौ के नीचे मिलेगी, जिनके घर में कन्या कुमारी है ॥२॥

दूल्हाराम गली-गली में घूम रहे हैं, और पूछ रहे हैं कि ससुरजी का द्वार कौन है?

सोने के मुँडेर पर दिया जल रहा है, वही ससुरजी का द्वार है ॥३॥

माँड़ौ की थून से लगकर दुलहिन खड़ी है। दूल्हे ने कहा—तुम्हारे पिता के घर का धौराहर सोने का है, उसमें मुझे भी बसेरा लेने दो ॥४॥

इस गीत में दूल्हा दुलहिन स्वयं अपनी जोड़ी चुन रहे हैं।

[७१]

कनक ढियट दियना बरै, दियना बरा है आकास।
आहो दूलह दूलही गज चौकी।
दूलह के चीरा सोनहूला जैसे सझा पलास कै टेसू,
अहो रँगहु न बाबुल खिचड़िया ॥ १ ॥
ससुर मनावन वै चले बाबुल लेहु न गजवा पचास
से हाथ उठायहू न।
गज धरि राखउ गजसार मे हमरे गज हैं अनेक
बाबा नाहीं भूखल हाथी हउद के ॥ २ ॥
सार मनावन वै चले जीजा लेहु न तुरङ्ग पचास
आहो हाथ उठावहू भई देर से।

धरि राखउ घोड घोडसार मे हमरे घोड़े हैं अनेक
बाबू भूखे नहीं हम घोडे जीन को ॥ ३ ॥
सासु मनावन चैं चली बाबुल लेहु न मानिक मुंदरिया
मे हथवा उठावहु न ।
धरि राखउ हीरा मोती सासु जी हीरन भरा है अमार
आहो नहीं भूखे मुंदरी माल के ॥ ४ ॥
सरहज मनावन चै चली बाबुल लेहु न हथना बिजायट
से हाथ उठावहु न ।
धरि राखउ अपना बिजायट, गहनन भरी है सदूक
बीबी नाहीं बिजायट साथ है ॥ ५ ॥
सारी मनावन चै चली जीजा हमरे न फुटही कउडिया
का तोहरे भेट दे ।
जीजा आपन याद देइ जाहु आहो जीजा अपने परेम
भेट देऊँ मे हथवा उठावहु न ॥ ६ ॥
इतना बचन जौंसे सुनलै आहो सुनहु न पवले
मे चौकी बइठ जेवना से जेवलैं मे पान लेइ द्वारे गये ॥ ७ ॥
(पीलीभीत)

सोने की दीयटि पर दिया जल रहा है । दिया आकाश मे जल रहा है । अहो ! दूल्हा दुलहिन गज-चौकी पर है ।

दूल्हे के सिर का चीरा सुनहले रंग का है, जैसे शाम के वक्त ढाक का फूल । हे पिता ! उसे निछावरो रुक मे रख दो न ? ॥२॥

ससुर मनाने चले । हे बेटा ! पचास हाथी लेलो और हाथ उठा लो ।

हे बाबा ! हाथी को हाथी-शाला मे रख छोड़ो । मैं हाथी और घोड़े का भूखा नही हूँ ।

साला मनाने आये। हे जीजा! पचास घोड़े लो और हाथ उठाओ बड़ी देर हो रही है।

हे बाबू! अपने घोड़े घोड़ेसाल में रख छोड़ो। हमारे यहाँ बहुत-से घोड़े हैं। मैं घोड़े और जीन का भूखा नहीं हूँ ॥३॥

सास मनाने आई। हे बेटा! मानिक की अँगूठी लो और हाथ उठाओ।

हे सासजी! अपने हीरे-मोती अपने पास रख छोड़ो। हीरों का तो हमारे यहाँ अम्बार लगा है। मैं अँगूठी और धन-दौलत का भूखा नहीं हूँ ॥४॥

सरहज मनाने आई। हे बाबू! हाथ का बिजायठ लो और हाथ उठाओ।

अपने बिजायठ रख छोड़ो। गहनों से सदूक भरा है। हे बीबी! बिजायठ की मुझे साध नहीं ॥५॥

साली मनाने आई। हे जीजा! हमारे पास फूटी कौड़ी भी नहीं है। तुमको भेंट क्या दूँ? अपनी याद छोड़ जाओ। अपने प्रेम से जो भेंट हम दें, सो लो और हाथ उठाओ ॥६॥

दुल्हे ने इतना वचन सुना। सुनने भी न पाये कि चौकी पर बैठ गये। भोजन किया और पान खाकर बाहर गये ॥७॥

इस गीत मे धन के मुकाबले में प्रेम और नम्रता का महत्त्व दिखाया गया है।

[७२]

मेरी लाडो सोवे अटारियाँ, तले झूमर ऊपर बालियाँ ॥ १ ॥
लाडो सोय-साय जब जागिये,
अपने दादल से वर माँगिये।
दादल एक कहा मेरा मानियो, साँवरा वर मत ढूँढियो ॥ २ ॥

पोती मत करै मन पछतावला,

तेरी दादी गोरी दादा साँवला ॥ ३ ॥

बेटी सोय-साय जब जागिये, अपने पीता से वर माँगिये।

पिता एक कहा मेरा मानियो, साँवरला वर मत ढूँढियो ॥ ४ ॥

बेटी मत करै मन पछतावला,

तेरी अम्मा गोरी पिता साँवला ॥ ५ ॥

बेटी सोय-साय जब जागिये, अपने भाई से वर माँगिये।

भैया एक कहा मेरा मानियो साँवरला वर मत ढूँढियो ॥ ६ ॥

बहन मत करै मन पछतावला,

तेरी भाभी गोरी भैया साँवला ॥ ७ ॥

(मुज़फ्फरनगर)

मेरी लाडली बेटी अटारी पर सोती है। उसके कान से नीचे झूमर लटक रही हैं, ऊपर बालियाँ हैं ॥ १ ॥

सो-साकर बेटी जगी, तब उसने अपने दादा से वर माँगा। हे दादा ! मेरा एक कहना मानना कि साँवला वर न ढूँढना ॥ २ ॥

हे बेटी ! मन में पछता न, तेरी दादी गोरी है और दादा साँवला ॥ ३ ॥

बेटी सो-साकर जगी, तब उसने अपने पिता से वर माँगा। हे पिता ! मेरा एक कहना मानना कि साँवला वर न ढूँढना ॥ ४ ॥

हे बेटी ! मन में पछता न तेरी माँ गोरी है और पिता साँवला ॥ ५ ॥

बेटी सो साकर जब जगी, तब उसने अपने भाई से वर माँगा। हे भाई ! मेरा एक कहना मानना, मेरे लिये साँवला वर न ढूँढना ॥ ६ ॥

हे बहन ! मन में पछता न, तेरी भाभी गोरी है और भैया साँवला ॥ ७ ॥

सारा खान्दान ही साँवला था, तब बेटी के साथ सहानुभूति तो किसकी होती ? पर इस गीत से कन्या के मन की थाह तो मिल ही जाती है कि कन्या गोरे रंग के वर को विशेष पसन्द करती है।

[७३]

पाँच पंडा बोल बाबुल उन घर कन्या न औतरैं।
एक निर्धनि ह जिन देउ बाबुल, रहन देउ कुवाँरी।
निधनी जब तड़प बोलै अनुख मेरे जिय को सहै॥ १॥
एक हरजोतिया जिन देउ बाबुल रहन देउ कुवाँरी।
हरजोतिया हर जोत आवै, माँगे नौ दस रोटियाँ।
भरके कठौता छाछ माँगे अनुख मेरे जिय को सहै॥ २॥
एक जुआरिहिं जिन देउ बाबुल, रहन देउ कुवाँरी।
इब हारे द्रव्य हारे कबहूँ की बेरा हमें हारे,
लाज तुम्हें आय है॥ ३॥
एक पढे पंडित देउ बाबुल जासें महा सुख पाय हैं।
हाथ धोती बगल पोथी
देखि सब जग सीस नवाय है॥ ४॥

(इटावा)

हे बाबा! पाँच पांडवों या पंडों को सुमिरो। उनके घर कन्या नहीं पैदा होती।

हे बाबा! धनहीन को कन्या न देना, बल्कि क्वाँरी रहने देना। धनहीन जब तड़पकर बोलेगा तब झुँझलाहट कौन सहेगा ?॥ १॥

हल जोतनेवाले को भी कन्या न देना, बल्कि कुमारी रहने देना। वह हल जोतकर आयेगा नौ-दस रोटियाँ माँगेगा। कठौता भरकर मट्ठा मागेगा। झुँझलाहट कौन सहेगा ?॥ २॥

जुआरी को भी कन्या न देना, चाहे कुमारी रहने देना। लाजशरम

हारेगा, धन-दौलत हारेगा, कभी मुझे भी हार देगा, तुमको लज्जा आयेगी ॥ ३ ॥

अच्छे पढ़े-लिखे पंडित को देना, जिससे खूब सुख पाऊँगी। जिसके हाथ में धोती और बगल में पोथी होगी, सारा संसार उसे देखकर सिर झुकायेगा ॥ ४ ॥

कन्या की इच्छा कितनी सुन्दर है?

[७४]

लाडो की अम्मा अरज करे हो मेरा लायक सा,
समधी ढूँडियो, कुलकी मेरी समधिन ढूँडियो।
चन्द्र-बदन से लडका ढूँडो मेरे कान्हा की उन्हार ॥ १ ॥
जो तुम ढूँडो भोंडी सूरत के बुरैली सूरत के,
मरूँगी ज़हर विष खाय।
मरूँगी आक धतूरा खाय तोरी सेजों न दूँगी पैर ॥ २ ॥
(मेरठ)

दुलारी बेटी की माँ उसके पिता से विनती करती है कि योग्य समधी ढूँढना। कुलवन्ती समधिन ढूँढना। चंद्रमा के समान मुँह वाला वर ढूँढना, जैसा मेरा कान्ह (कृष्ण या पुत्र) है ॥ १ ॥

यदि तुम भोंडी सूरत-शकल का, भद्दे रूप-रंग का वर ढूँढोगे तो मैं विष खाकर, मदार और धतूरा खाकर मर जाऊँगी और तुम्हारी सेज पर कभी पैर न रक्खूँगी ॥ २ ॥

माता को भी कन्या के वर के बारे में कितनी चिंता रहती है, इस गीत से यह दिखाया गया है। सेज पर पैर न रखने की सज़ा साधारण नहीं है।

सारा खान्दान ही साँवला था, तब बेटी के साथ सहानुभूति तो किसकी होती ? पर इस गीत से कन्या के मन की थाह तो मिल ही जाती है कि कन्या गोरे रंग के वर को विशेष पसन्द करती है।

[७३]

पाँच पडा बोल बाबुल उन घर कन्या न औतरैं।
एक निर्धनि ह जिन देउ बाबुल, रहन देउ कुवाँरी।
निधनी जब तडप बोलै अनुख मेरे जिय को सहै॥ १॥
एक हरजोतिया जिन देउ बाबूल रहन देउ कुवाँरी।
हरजोतिया हर जोत आवै, माँगे नौ दस रोटियाँ।
भरके कठौता छाछ माँगे अनुख मेरे जिय को सहै॥ २॥
एक जुआरिहिं जिन देउ बाबुल, रहन देउ कुवाँरी।
इब हारे द्रव्य हारे कबहूँ की बेरा हमें हारे,
लाज तुम्हें आय है॥ ३॥
एक पढे पंडित देउ बाबुल जासें महा सुख पाय हैं।
हाथ धोती बगल पोथी
देखि सब जग सीस नवाय है॥ ४॥

(इटावा)

हे बाबा! पाँच पांडवों या पडों को सुमिरो। उनके घर कन्या नहीं पैदा होती।

हे बाबा! धनहीन को कन्या न देना, बल्कि क्वाँरी रहने देना। धनहीन जब तड़पकर बोलेगा तब झुँझलाहट कौन सहेगा ?॥ १॥

हल जोतनेवाले को भी कन्या न देना, बल्कि कुमारी रहने देना। वह हल जोतकर आयेगा नौ-दस रोटियाँ माँगेगा। कठौता भरकर मट्ठा मांगेगा। झुँझलाहट कौन सहेगा ?॥ २॥

जुआरी को भी कन्या न देना, चाहे कुमारी रहने देना। लाजशरम

हारेगा, धन-दौलत हारेगा, कभी मुझे भी हार देगा, तुमको लज्जा आयेगी ॥ ३ ॥

अच्छे पढ़े-लिखे पंडित को देना, जिससे खूब सुख पाऊँगी। जिसके हाथ में धोती और बगल में पोथी होगी, सारा संसार उसे देखकर सिर झुकायेगा ॥ ४ ॥

कन्या की इच्छा कितनी सुन्दर है?

[७४]

लाडो की अम्मा अरज करे हो मेरा लायक सा,
समधी ढूँडियो, कुलकी मेरी समधिन ढूँडियो।
चन्द्र-वदन से लड़का ढूँडो मेरे कान्हा की उन्हार ॥ १ ॥
जो तुम ढूँडो भोंडी सूरत के बुरैली सूरत के,
मरूँगी ज़हर विप खाय।
मरूँगी आख धनूरा खाय तोरी सेजों न दूँगी पैर ॥ २ ॥
(मेरठ)

दुलारी बेटी की माँ उसके पिता से विनती करती है कि योग्य समधी ढूँढ़ना। कुलवन्ती समधिन ढूँढ़ना। चंद्रमा के समान मुँह वाला वर ढूँढ़ना, जैसा मेरा कान्ह (कृष्ण या पुत्र) है ॥ १ ॥

यदि तुम भोंडी सूरत-शकल का, भद्दे रूप-रंग का वर ढूँढोगे तो मैं विष खाकर, मदार और धतूरा खाकर मर जाऊंगी और तुम्हारी सेज पर कभी पैर न रक्खूँगी ॥ २ ॥

माता को भी कन्या के वर के बारे में कितनी चिंता रहती है, इस गीत में यह दिखाया गया है। सेज पर पैर न रखने की सज़ा साधारण नहीं है।

कन्यायें हों ॥ १ ॥

हाथी तो अनगिनती आये। साठ सौ घोड़े आये। बरातियों क
कमसम ने राह नहीं दिखाई पड़ रही है। उनके पैरों मे बहुत धूल उ
रही है ॥ २ ॥

सवेरा होते-होते कन्या की माँग मे सिन्दूर पड़ा, तब नौ लाख दहे
भी कम समझा गया। माता ने भीतर का लोटा भी बाहर पटक दि
और कहा—शत्रु के भी कन्या न हो ॥ ३ ॥

समधी लाल पलँग पर बैठे हैं। मेरे प्रभु (कन्या के पिता) चटा
बिछाकर बैठे हैं। समधी लम्बी-लम्बी बातें छाँट रहे है, मेरे प्रभु सि
नवाये बैठे है ॥ ४ ॥

यह कन्या मेरी बैरिन है। इसने मेरा नगर लुटवा लिया और मे
सुध-बुध भी हर ली ॥ ५ ॥

विवाह की धूम-धाम और दहेज की कुप्रथा से कन्या की माता
हृदय में जो उतार-चढ़ाव होता है, इस गीत मे उसका सच्चा चि
खींचा गया है।

[७६]

बाबल तेरा सींकों का घरबारे, बाबल चिड़ियाँ तोड़ गईं।
बेटी और छवाय लूँगा री, लाडो घर जाओ आपने ॥ १
बाबल तेरा चौका जो सूना रे, बाबल तेरी धीय बिना।
बेटी बामनी लगाय लूँगा री लाडो घर जाओ आपने ॥ २
बाबल तेरा पानी जो भिनकै रे, बाबल तेरी धीय बिना।
बेटी कहारी लगा लूँगा री, लाडो घर जाओ आपने ॥ ३
बाबल मेरा डोला जो अटका रे, बाबल तेरे महल मे।
बेटी दो ईंट खिंचाय दूँगा री, लाडो घर जाओ आपने ॥ ४

[७५]

लील लील घोडवा कँवर असवरवा रे,
कुरखेते उठ गइली धूर रे।
चन्द्र झरोखवन ठाढ़ी रे माता नीहारेली,
धीया दस आवर होय रे ॥ १ ॥
हथिया त आवेले अनती से गनती रे,
घोडवा जे आये सौ साठि।
मारे वरतिया के कसमस रहीवो न सूझै,
पावन खेह उधीराय रे ॥ २ ॥
होत विहान परल सोरो सेनुर,
नव लाख दाहेज थोर रे।
भीतरी कै गेड़ुंवा वहर दै मरली,
सतरू के धीया जनी होइ हो ॥ ३ ॥
समधी जे वइठैलें लाली पलॅगिया हो,
आप प्रभु सथरी विछाइ रे।
समधी जे छॉटै लै लमी लमी वतीया रे,
आप प्रभु सीर नवाइ रे ॥ ४ ॥
ई धीअवा मोरी अयेरनी वयेरनी,
ई धीया, सत्रू हमारि रे।
ई धीअवा मोर नग्र लुटावली,
अवरो हरली मोर गयान रे ॥ ५ ॥

(गाजीपुर)

कुँवर (वर) नीले घोड़े पर असवार है। घोड़े की टापों से ऐसी धूल उड़ी, जैसी कुरुक्षेत्र मे उड़ी थी। माता चन्द्राकार झरोखे पर खड़ी होकर देख रही है। वह प्रसन्न होकर कहती है कि और भी दस

कन्यायें हों ॥ १ ॥

हाथी तो अनगिनती आये। साठ सौ घोड़े आये। बरातियों की कसमस मे राह नहीं दिखाई पड़ रही है। उनके पैरों से बहुत धूल उठ रही है ॥ २ ॥

सवेरा होते-होते कन्या की माँग मे सिन्दूर पड़ा, तब नौ लाख दहेज भी कम समझा गया। माता ने भीतर का लोटा भी बाहर पटक दिया और कहा—शत्रु के भी कन्या न हो ॥ ३ ॥

समधी लाल पलँग पर बैठे हैं। मेरे प्रभु (कन्या के पिता) चटाई बिछाकर बैठे है। समधी लम्बी-लम्बी बाते छाँट रहे है, मेरे प्रभु सिर नवाये बैठे हैं ॥ ४ ॥

यह कन्या मेरी बैरिन है। इसने मेरा नगर लुटवा लिया और मेरी सुध-बुध भी हर ली ॥ ५ ॥

विवाह की धूम-धाम और दहेज की कुप्रथा से कन्या की माता के हृदय मे जो उतार-चढ़ाव होता है, इस गीत मे उसका सच्चा चित्र खींचा गया है।

[७६]

बाबल तेरा सींकों का घरबा रे, बाबल चिड़ियाँ तोड गईं।
बेटी और छवाय लूगा री, लाडो घर जाओ आपने ॥ १ ॥
बाबल तेरा चौका जो सूना रे, बाबल तेरी धीय बिना।
बेटी बामनी लगाय लूँगा री, लाडो घर जाओ आपने ॥ २ ॥
बाबल तेरा पानी जो भिनकै रे, बाबल तेरी धीय बिना।
बेटी कहारी लगा लूँगा री, लाडो घर जाओ आपने ॥ ३ ॥
बाबल मेरा डोला जो अटका रे, बाबल तेरे महल मे।
बेटी दो ईंट खिचाय दूँगा री, लाडो घर जाओ आपने ॥ ४ ॥

मेरी गुड़िया जो सूनी रे, पिताजी तुमरी बेटी बिना।
बेटी मेरी पोती जो खेलें री, लाडो घर जाओ आपने ॥ ५ ॥
(मेरठ)

हे बाबा! तेरा घर सींकों का बना है। उसे चिड़ियाँ तोड़ गईं। हे बेटी! दूसरा छवा लूँगा, तुम अपने घर जाओ ॥ १ ॥

हे बाबा! तेरी कन्या के बिना तेरी रसोई सूनी है। हे बेटी! ब्राह्मणी लगा लूँगा, तुम अपने घर जाओ ॥ २ ॥

हे बाबा! तेरी कन्या के बिना तेरा पानी-घर भिनक रहा है। हे बेटी! कहारिन लगा लूँगा, तुम अपने घर जाओ ॥ ३ ॥

हे बाबा! तेरे महलों में मेरा डोला अटक गया है। हे बेटी! दो ईंटे और जुड़वा लूँगा? तुम अपने घर जाओ ॥ ४ ॥

हे पिताजी! तेरी बेटी बिना गुड़ियाँ सूनी हो जायँगी। हे बेटी! मेरी पोती खेलेगी। तुम अपने घर जाओ ॥ ५ ॥

कन्या विवाह के बाद पराई हो जाती है। पिता उसे घर में नहीं रख सकता।

[७७]

हरो हरो गुबरा पीअरो है माटी,
रनीओं ने महल लीपाओ।
महलन उपर कागा जो बोलैं, कागा के बचन सुहाउनें॥ १ ॥
उड़ो न कागा तुम्है दिहै धागा,
सोनवा मढ़ईयौं तोरी चोंच।
जो रे वीरन घर आवैरे रूपा मढ़इयौं तोरी पाँख ॥ २ ॥
कागा विचारे जनौं न पाये वीरन ठाढ़े हैं दुआर।
वीरन आये कुछ न लाये सासु ननद मन रूठी ॥ ३ ॥

जेठानी नीसो दिन बोला रे बोले वीर मोर चले हैं रिसाय।
हाथन मेंहदी पायेन जेहरी कैसे मनामै राजा वीर॥ ४॥
सासु ननदिआ पैइओं तोरी लागौं,
तुमहीं मनावो राजा वीर।
हाथा की मेहदी धोई तुम डारो पायेन डारो उतार
झपट मनावो राजा वीर॥ ५॥
घोडन की वाघा पकरे बेटी जो रोमै,
वीर मोरे धूपे नवारो।
धूप नेवारौं वहिनी वागा बगीचा, और दढुली केरे देस॥ ६॥
ऊँचे चढ़ि चढ़ि माया जो हेरैं अवत वहिन औ भाय।
छूछे डोलीआ छूछे कहरवा, रूठे पूत घर आमै॥ ७॥
वैठो न पूत मोरे लाले पलिंग पर, कहो वहिन केरी बात।
वहिनी के रोवे मॅं छतीआ फटत है, वरसत वड़े वड़े मेघ॥ ८॥
कैसे उपजे पूत सपूत वहिनी रोवत कैसे छाड़ी।
करो न माया मोरी पूरीआ कचोरीआ,
वहिनी चलन हम जान॥ ९॥
करो न भौजा मोरी डवीआ पोटरीया, वहिनी चलन हमजान।
उचे चढ़ि चढ़ि वहिनी जो हेरैं, आवत्त वीर हमार॥१०॥
वीर आये चीर लाये, सासु ननद हँसि वोलीं।
सासु का हरो ननद का पीअरो, हमका दखिन केरो चीर॥११॥
मैलो कुचैलो छोरो न वहिनी, पहिरो दखिन वाली चीर।
ऊँचे पलिंग पर जनि वैठो वीर, पूछौ न सजन हमार॥१२॥
पठवौ न साजन वहिनी हमारी, सामन रहे दिन चार।
सामन सब बेटी झूला जो झूलैं, भादों गरुये गंभीर॥१३॥

कुआँर सबै बेटी नेवरता जो खेलैं, कातिक गौरी सेरामैं।
अगहन सबै बेटी गौने जो जहियैं,
तब हम बहिन पठासैं ॥१४॥
(आगरा)

ताज़ा गोबर और पीली मिट्टी, दोनों मिलाकर बहू रानी ने महल लिपवाया। महल के ऊपर कौवा बोल रहा है। कौवे के बचन बड़े सुहावने हैं ॥ १ ॥

हे कौवा! उड़कर जाओ न? तुमको धागा (रेशम का तागा गले में बांधने के लिये) दूँगी, सोने से तुम्हारी चोंच मढ़ाऊँगी, मेरे भैया घर आयेंगे तो तुम्हारे पंख चाँदी से मढ़ाऊँगी ॥ २ ॥

कौवा अच्छी तरह बोल भी न पाया था कि भाई दरवाज़े पर खड़े हैं। भाई आये, और कुछ नहीं लाये, इससे सास और ननद मन में रूठ गई हैं ॥ ३ ॥

निठुर जेठानी ने बोली मारी। मेरे भाई नाराज होकर चले गये। मेरे हाथों में मेंहदी लगी है, पैरों में जेहरी (एक गहना) है, बाहर जा नहीं सकती। मैं भाई को कैसे मनाऊँ? ॥ ४ ॥

हे सासजी और ननदजी! तुम्हारे पैर लगती हूँ, तुम्हीं राजा भाई को मना लो। दोनों ने कहा—हाथों की मेंहदी धो डालो और जेहरी उतार डालो, झपटकर राजा भाई को मना लो न? ॥ ५ ॥

घोड़े की बाग पकड़कर बहन रोने लगी कि हे भाई! धूप में न जाओ। भाई ने कहा—हे बहन! (रास्ते के) बाग-बगीचों में और अपने बाप के देश में धूप मिटा लूँगा ॥ ६ ॥

ऊँचे पर चढ़कर माँ देखने लगी कि बहन और भाई आ रहे हैं। पर उसने देखा कि छूँछी डोली, छूँछे कहार और रूठे पुत्र घर आ रहे हैं ॥ ७ ॥

हे पुत्र ! मेरी लाल पलँग पर वैठो और वहन की वात सुनाओ। हे माँ ! वहन का रोना सुन कर तो छाती फटती है, जैसे वडे-बड़े वादल वरसते है ॥ ८ ॥

हे पुत्र ! तुम कैसे सपूत उपजे, जो रोती हुई वहन को छोड़ आये ? हे माँ ! पूरी और कचौड़ी वना दो, मैं वहन को लाने जाऊँगा ॥ ९ ॥

हे मेरी भावज ! डिबिया और पोटरी (गठरी) तैयार कर दो, मैं वहन को लाने जाऊँगा। ऊँचे पर खड़ी होकर वहन देख रही है कि मेरे भाई आ रहे हैं ॥ १० ॥

भाई आये, चीर लाये। सास और ननँद ने हँस कर वात की। सास को हरे रंग की, ननँद को पीले रंग की साड़ी और मेरे लिए दक्खिनी चीर लाये ॥ ११ ॥

हे वहन ! मैला-कुचैला कपड़ा उतार डालो न ? दक्खिनी चीर पहनो। हे भाई ! ऊँची पलँग पर अव चढ़कर न बैठो और मेरी विदाई के लिये मेरे सजन को पूछो ॥ १२ ॥

हे सजन ! मेरी वहन को विदा कर दो। अव सावन के चार ही दिन रह गये हैं। सावन मे सव वेटियाँ झूला झूलती हैं। भादों मे वड़ी वरसात होती है ॥ १३ ॥

क्वार में सव वेटियाँ नेवरत्ता (?) खेलती हैं और कातिक में गौरी (गोवर की वनी पार्वती) की मूर्ति सीराती हैं। अगहन में जव सव वेटियाँ गौने जाने लगेंगी, तव मैं वहन को भेज दूँगा ॥ १४ ॥

पहली वार वहन को घर ले जाने के लिये उसका भाई आया था, पर कुछ ले नहीं आया था, इससे वहन की ससुराल में उसकी कुछ क़दर नहीं हुई। लेकिन दूसरी वार जव साड़ियाँ और कुछ खाने-पीने की चीज़ें लेकर आया, तव उसकी वड़ी आवभगत हुई।

[७८]

एक ही घरवा के बत्तीस दुआर हो,
बत्तीसों दुअरवा पर मरिच के गाॅछ।
सेर भर मरिच हो सासू सिलवटी धरी देइ हो
मरिच पीसत हो सासू घूपे आठो अग हो ॥ १ ॥
जेहू तोरा बहुआ रे धूपल आठो अग हो।
अपना बाबा घर से चेरिया बोलाउ ॥ २ ॥
हमरा बाबाजी के का करबू जोर हो।
नाचेला नचनियाॅ रे, भइया बकसले घोड ॥ ३ ॥
मोरा पिछुअरवा कहॅरवा हित भइया हो।
अइसनी लोलारी बहुअवा नइहर पहुँचाव ॥ ४ ॥
झररे झरोखा चढ़ी अम्मा निरेखे हो।
कस देखो बेटी के डडिया झलकत आवे हो ॥ ५ ॥
किया बेटी चोरिनी रे, किया बेटी चटनी हो।
किया बेटी दीहलु हो सासु के जवाब ॥ ६ ॥
नाहीं बेटी चोरनी हो नाहीं बेटी चटनी हो।
इन बेटी दीहली हो सासू के जवाब ॥ ७ ॥
एक भर अइलु हो बेटी दुई भर जाहू हो।
ढॅकले ओहारल बेटी सासुर जाहू ॥ ८ ॥

(आज़मगढ़)

एक घर के बत्तीस दरवाज़े हैं। बत्तीसों दरवाज़ो पर मिर्च के पेड़ हैं। सेर भर मिर्च पीसने के लिये सास ने सिल पर रख दिया। हे सासजी ! मिर्च पीसते-पीसते आठो अंग बेदम हो जाते हैं ॥१॥

हे बहू ! मिर्च पीसने से तुम्हारे आठों अग थक जाते हैं तो नैहर से दासी बुलाओ ॥२॥

पासजी ! मेरे पिता पर तुम्हारा क्या ज़ोर है ? उनके यहाँ
' नाचते हैं और मेरा भाई उनको घोड़ा इनाम देता है ॥३॥
मेरे पिछवाड़े बसे हुये कहार भाई ! ऐसो लड़का बहू को नैहर
दो ॥४॥
ऊपर झरोखे पर से माँ देख रही हैं। बेटी की यह पालकी कैसी
ो आ रही है ॥५॥
बेटी ! तुम चोरी करती हो ? या चटोरी हो ? या तुमने सास
ाब दिया है ? ॥६॥
बेटी चोर है, न चटोरी। हे माँ ! इस बेटी ने सास को जवाब
ै ॥७॥
बेटी ! जिस तेज़ी से आई हो, उससे दूनी तेज़ी से वापस जाओ।
खोले बिना ही ससुराल वापस जाओ ॥८॥
स गीत में यह दिखाया गया है कि कन्या यदि ससुराल से अपने
दोष-वश आई हो तो माता उसका आदर नहीं करती।

[७६]

जुगुति से परसौ जी ज्योनार—करि करि के सतकार।
बरफी और अमिरती, खाजे खुरमा घेवर परसो, गुप-
सोहन हलुआ परसौ, कलाकन्द की बरफी परसौ,
खन बरा जलेबी परसौ, पेठा और इन्दरसे परसौ, बूँदी
र बतासे परसौ, खुर्चन और मलाई परसौ, खोया बालू-
ी परसौ, खुरमा लडुआ सब के परसौ, दालमोठ अरु
ी परसौ, तरे तिकोना सब के परसौ, बूरा मिश्री जल्दी
ौ, रबड़ी दही सबी के परसौ, सिखरिन दूध लाय के
ौ, पुड़ी कचौड़ी लुचुई परसौ, खरी कचौड़ी सब के
ौ बेसन बरा पकौड़ी परसौ, छापड के तुम पापड़

[७८]

एक ही घरवा के बत्तीस दुआर हो,
बत्तीसों दुअरवा पर मरिच के गाॅछ।
सेर भर मरिच हो सासू सिलवटी धरी देइ हो
मरिच पीसत हो सासू धूपे आठो अग हो॥ १।
जेहूॅ तोरा बहुआ रे धूपल आठो अंग हो।
अपना बावा घर से चेरिया बोलाउ॥ २।
हमरा बाबाजी के का करवू जोर हो।
नाचेला नचनियाॅ रे, भइया बकसले घोड़॥ ३
मोरा पिछुअरवा कहॅरवा हित भइया हो।
अइसनी लोलारी बहुअवा नइहर पहुँचाव॥ ४
झरे झरोखा चढ़ी अम्मा निरेखे हो।
कस देखो बेटी के डंडिया झलकत आवे हो॥ ५॥
किया बेटी चोरिनी रे, किया बेटी चटनी हो।
किया बेटी दीहलु हो सासू के जवाब॥ ६॥
नाहीं बेटी चोरनी हो नाहीं बेटी चटनी हो।
इन बेटी दीहली हो सासू के जवाब॥ ७॥
एक भर अइलु हो बेटी दुई भर जाहू हो।
ढॅकले ओहारल बेटी सासुर जाहू॥ ८॥
(आजमगढ़)

एक घर के बत्तीस दरवाज़े हैं। बत्तीसों दरवाज़ों पर मिर्च के पेड़ हैं। सेर भर मिर्च पीसने के लिये सास ने सिल पर रख दिया। हे सासजी! मिर्च पीसते-पीसते आठो अंग बेदम हो जाते हैं॥१॥

हे बहू! मिर्च पीसने से तुम्हारे आठों अंग थक जाते हैं तो नैहर से दासी बुलाओ॥२॥

सजी ! मेरे पिता पर तुम्हारा क्या ज़ोर है ? उनके यहाँ
ताचते हैं और मेरा भाई उनको घोड़ा इनाम देता है ॥३॥
रे पिछवाड़े बसे हुये कहार भाई ! ऐसो लड़का बहू को नैहर
॥४॥
र झरोखे पर से माँ देख रही हैं। बेटी की यह पालकी कैसी
आ रही है ॥५॥
टी ! तुम चोरी करती हो ? या चटोरी हो ? या तुमने सास
। दिया है ? ॥६॥
टी चोर है, न चटोरी। हे माँ ! इस बेटी ने सास को जवाब
॥७॥
टी ! जिस तेज़ी से आई हो, उससे दूनी तेज़ी से वापस जाओ।
बोले बिना ही ससुराल वापस जाओ ॥८॥
गीत में यह दिखाया गया है कि कन्या यदि ससुराल से अपने
ष-वश आई हो तो मता उसका आदर नहीं करती।

[७९]

जुगुति से परसौ जी ज्योनार—करि करि के सतकार।
बरफी और अमिरती, खाजे खुरमा घेवर परसो, गुप-
सोहन हलुआ परसौ, कलाकन्द की बरफी परसौ,
न बरा जलेबी परसौ, पेठा और इन्दरसे परसौ, बूँदी
बतासे परसौ, खुर्चन और मलाई परसौ, खोया बालू-
परसौ, खुरमा लड्डुआ सब के परसौ, दालमौठ अरु
। परसौ, तरे तिकोना सब के परसौ, बूरा मिश्री जल्दी
ौ, रबड़ी दही सबी के परसौ, सिखरिन दूध लाय के
ौ, पुड़ी कचौड़ी लुचुई परसौ, खरी कचौड़ी सब के
ौ बेसन बरा पकौड़ी परसौ, हापड़ के तुम पापड़

परसौ, मालपुआ अरु पूआ परसौ, दाल भात सब
परसौ, मूँग समूची सब के परसौ, कढ़ी करायल रौ
परसौ, खट्टे मिट्ठे बरा परोसौ, सुरभी को घिउ • डु
परसौ, रसगुल्ला रसदार।

जुगुति से परसौ जी ज्योनार॥'

सोया मेथी मरसो परसौ, सरसौं अरु चौरय्या परस
पालक पोय भसूँडे परसौ, मूरी मिरचैं सब के परसौ, हरी
तुम धनियाँ परसौ, कटहर बड़हर लौकी परसौ, कद्दू अ
करेल परसौ, रायलभेरा भाटा परसौ, भिंडी घिआ तुरै
परसौ, पेठा की तरकारी परसौ, आलू और रतालू परस
पृथ्वीकन्द चचेंड़ा परसौ, अदरख की तरकारी परसौ, के
की तरकारी परसौ, धनियाँ की तुम चटनी परसौ, बथु
की तरकारी परसौ, पोदीना की चटनी परसौ, छिरि
गलका अमरस परसौ, आम अचारी सूखा परसौ, द
मुरब्बा सब के परसौ, अदरख कमरख सब के पर
सबी खटाई सब के परसौ, हा हा करि करि जल्दी पर
सत्य भाव से सब के परसौ, करि करि के सतकार।

जुगति से परसौ जी ज्योंनार॥

सिलहट की नारगी परसौ, फरुखाबादी मिठवा पर
सेव तूत सहतूत चिरौंजी चिलगोजा अखरोटन पर
प्रागराज की सकड़ी परसौ, गरी छुहारे पिस्ता पर
नरम मखाने सब के परसौ, खिन्नी और लुकाठन पर
अनन्नास अगूरन परसौ, जल्द चिरौंजी सब के पर
मूँगफली भरि दोना परसौ, किसमिस आम टिकारी पर
नौधा अरु तरबुजवा परसौ, चपटा और मालदहा पर

न भोग वम्बई परसौ, गोला आमुनि जामुनि परसौ,
बुजवा तुम सब के परसौ, सोया हिंगहा जुगिया परसौ,
ो आम सबी के परसौं, कंचन भरि भरि थार। पुरोहित
रे कार के सतकार। परसौ सब नर बारंबार।

जुगति से परसौं जी जेवनार ॥३॥

गा जल जमुना जल परसौ, नदी नरबदा को जलु परसौ,
रजू का जलु सब के परसौ, सिंध सरसुती को जलु परसौ,
ावेरी कृष्ना जलु परसौ. मानसरोवर को जलु परसौ, नदी
ाभीरी को जलु परसौ, फल्गू महानदी को परसौ, ठंडे जल
सब ही के परसौ, हा हा करि करि सब के परसौ, विनती
करि करि भोजन परसौ, हाथ जोरि के सब के परसौ, प्रेम
प्यार करि सब के परसौ, छोटे बड़े सबी के परसौ, आदर
करि करि सब के परसौ समधी समधी के ढिग परसौं,
चारों भाइन के ढिग परसौं, गुरु वशिष्ठ तर जल्दी परसौं,
ऋषि मुनियो तर जल्दी परसौ, सबै देवतन के ढिग परसौं,
ाथ धुलाओ पान खवाओ, आभूषण वस्तर पहिरावौ,
जनवासे सब को पहुँचावो, करि करि बाहन त्यार। गावैं
तुलसीदास गँवार, जुगति से परसौ, जी ज्योंनार ॥४॥

इस गीत में भोजन के गोरस, चर्व्य, लेह्य, पेय, सब प्रकार के
दार्थों के नाम गिनाये हैं। पता नहीं, इसके रचयिता "तुलसीदास
ंवार" वही सुप्रसिद्ध तुलसीदास हैं, या गीत को प्रचलित करने के
ेिये किसी चतुर ने यह 'गँवारपन' किया है। गीत में जिन पदार्थों के
ाम आये हैं, वे ये हैं—

पेड़ा, बरफ़ी, अमिरती, खाजा, खुरमा, घेवर, गुलगुल, मोहन-हलुआ,
र, मक्खन, घी, मठा, दूध, इन्दरसा, सूतफेनी, कलाकन्द, खुर्चन,

मलाई, खोवा, बालूशाही, लड्डू, दालमोट, मठरी, तिकोना (समोसा), बूरा, मिश्री, रबड़ी, दही, सिखरन, दूध, पूरी, कचौड़ी, लुचुई, खस्ता, कचौड़ी, बेसन का बरा, पकौड़ी, हापड़ के पापड़, मालपुआ, पूआ, दाल, भात, मूँग, कढ़ी, रायता, खट्टे मीठे बरे, गाय का घी, रसगुल्ला, सोआ-मेथी-मरसे का साग, सरसों, चौराई का साग, पालक-पोई का साग भसींड़, मूरी, मिर्च, हरी धनियाँ, कटहर, बड़हर, लौकी, कद्दू, करैला, भाँटा, भिंडी, घिया-तुरोई, कोहँड़ा, आलू, रतालू, जमींकन्द, चचेंड़ा, अदरक, केला, बथुआ, पोदीना, अमरस, आम का अचार,-दाख का मुरब्बा कमरख, सिलहट की नारंगी, फरुखाबाद की मिठाई, सेब, शहतूत, चिरौंजी, चिलगोज़ा अखरोट, प्रयाग की सकड़ी गड़ी, छुहारा, पिस्ता, मखाना, खिन्नी, लुकाट, अनन्नास, अँगूर, मूँगफली, किसमिस, आम, तरबूज, गोल-चपटा-मालदह-मोहनभोग और बम्बई आम, जामुन, खरबूजा, हिंगहा, ? जुगिया, ? गङ्गा, जमना, नर्मदा, सरयू, सिन्धु, सरस्वती, कावेरी, कृष्णा मानसरोवर, गंभीरी, फलगू, महानदी आदि नदियों का ठंडा जल।

इस गीत में खाने-पीने की प्राय सभी ख़ास ख़ास चीज़ों के नाम आ गये हैं। साथ ही हिन्दुस्तान भर की सुप्रसिद्ध नदियों के नाम भी आ गये हैं। गानेवालियों को खाने-पीने की चीज़ों के नाम ही नहीं, बल्कि भूगोल की यह शिक्षा भी गीतों के द्वारा मिलती रहती है।

अनुक्रमणिका